**CCP-01**

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## फसल उत्पादन(Crop Production)

**CCP-01**

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

# फसल उत्पादन Crop Production

## पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

**अध्यक्ष**

**प्रो. (डॉ.) एल. आर. गुर्जर**
निदेशक, संकाय विभाग
**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)**

## समन्वयक / सदस्य

**समन्वयक**

**प्रो. (डॉ.) बी. अरुण कुमार**
आचार्य राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

**सदस्य**

1. **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार**
   सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
2. **प्रो. (डॉ.) ए.पी. सिंह**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) इन्दिरा गांधी
   कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर(छ.ग.)
3. **डॉ. एस.एस. तोमर**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
4. **श्रीमती श्वेता गुप्ता**
   गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
5. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी**
   सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र कोटा

## सम्पादक एवं पाठ लेखक

**सम्पादक**

**श्रीमती श्वेता गुप्ता**
गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

| इकाई | लेखक | इकाई संख्या |
|---|---|---|
| 1. | **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार**<br>सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक<br>कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 4 |
| 2. | **डॉ. एस.एस. तोमर**<br>आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,<br>कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 1 |
| 3. | **डॉ. प्रताप सिंह**<br>आचार्य(सस्य विज्ञान),कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 14 |
| 4. | **डॉ. पुष्पेन्द्र सिंह**<br>आचार्य(सस्य विज्ञान),<br>महाराणा प्रताप कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, उदयपुर | 9 |
| 5. | **डॉ. अरुण शर्मा**<br>आचार्य(सस्य विज्ञान),कृषि अनुसंधान केन्द्र,कोटा | 11 |
| 6. | **डॉ. सी.पी. सिंह**<br>सह आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 5 |
| 7. | **डॉ. डी.एस. मीणा**<br>सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 6 |
| 8. | **डॉ. बलदेव राम**<br>सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 8,16 |
| 9. | **डॉ. आर.के. शिवरन**<br>सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान),कृषि अनुसंधान केन्द्र,कोटा | 2,12 |
| 10. | **डॉ. जे.पी. तेतरवाल**<br>सहायक आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा | 3,7 |
| 11. | **श्रीमती श्वेता गुप्ता**<br>गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान<br>वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा | 10,13 |
| 12. | **श्रीमती रश्मि मोदी**<br>सहायक संचालक,कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास<br>भोपाल (म.प्र.) | 15 |

**अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था**

| | | |
|---|---|---|
| **प्रो. (डॉ.) विनय पाठक**<br>कुलपति<br>वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा | **प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर**<br>निदेशक,संकाय विभाग<br>वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा | **प्रो. (डॉ.) पी.के. शर्मा**<br>निदेशक, क्षेत्रीय सेवाएं<br>वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा |

**पाठ्यक्रम उत्पादन**

**योगेन्द्र गोयल**

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

**उत्पादन 2013**

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

**व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित**

CCP-01

# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## विषय सूची

फसल उत्पादन(Crop Production)


| इकाई संख्या | इकाई का नाम | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| इकाई – 1 | वैज्ञानिक कृषि एवं विकास की संभावनाएं | 8–22 |
| इकाई – 2 | फसलों का वर्गीकरण | 23–29 |
| इकाई – 3 | मृदा संरचना, संगठन | 30–46 |
| इकाई – 4 | पौधों के आवश्यक पोषक तत्व | 47–57 |
| इकाई – 5 | धान | 58–79 |
| इकाई – 6 | सोयाबीन | 80–101 |
| इकाई – 7 | बाजरा | 102–116 |
| इकाई – 8 | बरसीम | 117–130 |
| इकाई – 9 | मक्का | 131–147 |
| इकाई – 10 | मूंगफली | 148–161 |
| इकाई – 11 | गेहूँ | 162–177 |
| इकाई – 12 | चना | 178–195 |
| इकाई – 13 | गन्ना | 196–222 |
| इकाई – 14 | कपास | 223–235 |
| इकाई – 15 | तिलहनी फसलें | 236–246 |
| इकाई – 16 | दलहनी फसलें | 247–271 |

# इकाई 1

# वैज्ञानिक कृषि एवं विकास की संभावनाए

**इकाई की रूपरेखा**


1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वैज्ञानिक कृषि में कृषि शिक्षा का योगदान

1.3 कृषि अनुसंधान और प्रसार के बढ़ते कदम

1.4 कृषि क्षैत्र में निवेश प्रणाली

1.5 कृषि पर्यटन आज कि आवश्यकता : अर्थ और अपेक्षाएं

1.6 कृषि विश्व व्यापार में प्रतिस्पर्धा

1.7 कृषि विकास की संभावनाए

1.8 सांराश

1.9 बहु चयनात्मक प्रश्न

1.10 सन्दर्भ


## 1.0 उद्देश्य:

- वैज्ञानिक कृषि में कृषि शिक्षा का योगदान।
- कृषि क्षैत्र में अधिक निवेश, अनुसंधान और प्रसार की आवश्यकता ।
- विश्व व्यापार में कृषि उत्पाद प्रतिस्पर्धा के बारे में जानकारी।
- कृषि पर्यटन से अर्थ और अपेक्षाएं।
- देश में वैज्ञानिक कृषि एवं विकास की संभावनाए ।

## 1.1 प्रस्तावना:

स्वतंत्रता के बाद 50 वर्ष की अल्पावधि में भारत खाद्यान की कमी के स्तर से निकलकर न केवल आत्मनिर्भर बना है, बल्कि प्राकृतिक आपदाओं की अज्ञात कठिनाइयों से निपटने के लिए अपार भंडार सुरक्षित कर लिए है और कुछ जिन्सों के निर्यात की क्षमता भी बना ली है। यह परिवर्तन समेकित प्रणाली की संकल्पना से ही संभव हो पाया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ - साथ राष्ट्रीय स्रोतों के अवश्रेणीकरण, गैर - पुनर्नवीकरण ऊर्जा स्रोतों के निर्माण खेती के लिए प्रतिव्यक्ति उपलब्ध भूमि संबंधी चुनौतियों का सामना करने की क्षमता और योग्यता के साथ साथ कृषि प्रणाली को सुदृढ़ और स्थिर करने में भारत का विश्वास बढ़ा है।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद जहां हमें कृषि का निर्यात बढ़ाने की अनेक सुविधायें और अवसर प्राप्त है, वहीं हमें अनेक चुनौतियों का भी सामना करना है। विश्व व्यापार की बदली हुई परिस्थितियों में भारत के सामने बाहर से आयात कम करने और अपना निर्यात बढ़ाने की गंभीर चुनौतियां होगी। भारत की प्रमुख फसल गेहूं विदेशी बाजार में अपनी लागत और औसत किस्म के कारण टिक नही पायेगी। भारत की पीली क्रान्ति का रंग फीका पड़ रहा है

क्योकि बाहर से आयात तेलों की लागत मूल्य देश में उत्पादित तेलों की तुलना में काफी कम है। अतः नई चुनौतियों का सामना करने और व्यापार में भारत के कृषि उत्पादों की भागेदारी बढ़ाने के अवसरों का अधिक लाभ देने के लिये हमें उपयुक्त उपाय करने होगें, जिसमें कृषि उत्पादो की प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी करना और उनको विश्वस्तरीय गुणवत्ता पर लाना, कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी में भारी पूंजी निवेश, फसल विविधीकरण को बढ़ावा और ढांचा एवं नीतिगत बदलाव प्रमुख है।

## 1.2 वैज्ञानिक कृषि में कृषि षिक्षा का योगदान :

कृषि शिक्षा यू जी स्तर पर अनेकों कृषि महाविद्यालयों के रुप में संगठित की गई थी। ये महाविद्यालय सामान्य विश्वविद्यालयों से संबद्ध किए गए थे और शिक्षा मंत्रालय के दायरे के अधीन आए। प्रारंभ में अनुसंधान और प्रसार के लिए अधिदेश काफी सीमित था। इन महाविद्यालयों में से पांच महाविद्यालय कोयम्बटूर (1905), कानपुर (1905), लायलपुर (1905), पुणे (1907) और सेबौर (1907) में स्वतंत्रतापूर्व में स्थापित किए गए। निजी महाविद्यालयों सहित महाविद्यालयों की संख्या जहां 1947 में 17 थी वह 1962 में बढ़कर 50 हो गई। कृषि विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षा अधिकतर आई ए आर आई तक सीमित थी जिसने मास्टर उपाधि के समकक्ष 2 वर्षीय डिप्लोमा कोर्स प्रस्तुत किया।

राष्ट्रीय कृषि विश्वविद्यालय प्रणाली में 50 से अधिक राज्य विश्वविद्यालय, एक केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (जिसमें से 4 भा.कृ.अ.प. के राष्ट्रीय संस्थान) सुदृढ़ कृषि संकाय वाले 3 केन्द्रीय विश्वविद्यालय शामिल हैं। इसके अलावा निजी क्षेत्र, सामान्य विश्वविद्यालय से जुड़े सरकारी संस्थाओं से वित्त पोषित लगभग 50 महाविद्यालय है। भा.कृ.अ.प. एक ऐसा शीर्षस्थ संगठन है जो अपने संस्थानों के नेटवर्क से अनुसंधान कार्य करने, बढ़ावा देने तथा समन्वयन के कार्य की जिम्मेदारी निभाता है। भा.कृ.अ.प. के 45 अनुसंधान संस्थान है जिनमें से 4 का स्तर मानद विश्वविद्यालय का है, 6 ब्यूरो, एक कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, 25 परियोजना निदेशालय, 17 राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र, 82 अ.भा.स.अ. परियोजनाएं है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का एक सशक्त प्रौद्योगिकी हस्तांतरण नेटवर्क (प्रयोगशाला से खेत और खेत से प्रयोगशाला) है जिसमें कृषि विज्ञान के केन्द्र (262 कृ.वि.के.), संस्थान ग्राम सम्पर्क कार्यक्रम (17) और 40 कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक) शामिल है। ये सभी केन्द्र किसानों के खेतों में स्थानान्तरण से पहले कृषि प्रौद्योगिकी मूल्यांकन और परिशोधन पर बल देते है। औपचारिक तंत्र जैसे अ.भा.स.अ.प. तद्रर्थ परियोजना, क्षेत्रीय समितियां और एन ए टी पी के माध्यम से भा.कृ.अ.प. और रा.कृ.वि.वि. के बीज अनुसंधान के लिए कार्यात्मक सम्पर्क है। इसी तरह विस्तार के लिए भा.कृ.अ.प. और रा.कृ.वि.वि. विभिन्न नवीन कार्यक्रमों जैसे राष्ट्रीय प्रदर्शन, व्यावहारिक अनुसंधान परियोजना, कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रशिक्षक केन्द्र, प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम और संस्थान ग्राम सम्पर्क कार्यकक्रमों में हाथ से हाथ मिलाकर कार्य करते है।

वैश्वीकरण से कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए कृषि शिक्षा में सुधार लाने हेतु निम्न पर बल देते हुए नीतियां बनानी होगी:-

- उच्च शिक्षा के लिए पुनः माडल।
- संस्थागत सम्पर्क।
- सुधार की प्रक्रिया में स्टेकहोलडर का शामिल होना।
- देश भर में प्रत्यायन कार्यक्रम।

## 1.3 कृषि अनुसंधान और प्रसार के बढ़ते कदम:

किसानों के लाभ के लिए राष्ट्र ने तीव्र प्रौद्योगिकियों की वैज्ञानिक नवीनता, उत्पादन, प्रसंस्करण और विकास के प्रभावशाली प्रयोग के जरिए कृषि उत्पादन और इसके प्रसार में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। इस प्रकार, शिक्षण, अनुसंधान और प्रसार की समन्वित विधि घरेलू खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रोत्तर युग के मुख्य तत्व रहे है। ऐसी उपलब्धि अनेक देशों के इतिहास में अद्वितीय है। खाद्यान्न उत्पादन जों 1950-51 में केवल 51 मिलियन टन था, बढ़कर 2000 में 200 मिलियन टन को पार कर गया। इस अवधि में भारत विश्व स्तर पर गेहूँ, चावल और ज्वार उत्पादन में दूसरे, कपास उत्पादन में चैथे और गन्ना उत्पादन में तीसरे स्थान पर पहुंच चुका हैं। सब्जी उत्पादन में भारत चीन के साथ पहले स्थान पर सहभागी है। इसी प्रकार पशुपालन और डेयरी क्षेत्र में भी काफी प्रभावशाली रहा है, यह 1950-51 में 17 मिलि. टन से 2000-01 में दूध का उत्पादन 75 मिलियन टन हो गया (संसार में सर्वाधिक)। अंडा उत्पादन 1950-51 में 5 मिलियन था जो 1996-97 में बढ़कर 28162 मिलियन हो गया। मांस और ऊन उत्पादन में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखी गई।

भारत ने दुनिया में राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एन ए आर एस) का सबसे बड़ा नेटवर्क निर्माण किया है। एन ए आर एस द्वारा विकसित मानव संसाधन ने हरित, पीत, नील और श्वेत क्रांतियों से कृषि कायापलट करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और किसानांे तक खुशहाली लाने में सहायता पहुंचाई है। एक ओर शिक्षण, अनुसंधान और प्रसार के समाकलन की प्रणाली और दूसरी ओर भा.कृ.अ.प. के संस्थानों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिक संस्थानों, कृषि विज्ञान केन्द्रों, एन जी ओ., पंचायतराज तथा ग्रामीण आधारित संगठनों के मध्य संबंध विकसित करने के कारण काफी लाभ प्राप्त हुआ है। आगे, हमारे कृषि विश्वविद्यालयों में फसल का समन्वित विकास, पशुपालन, मत्स्य पालन, वानिकी में बहुत अधिक लाभ हुआ है।

शिक्षण, अनुसंधान और प्रसार प्रणाली के समन्वित, अतंरबद्ध और अटूट अवयव है। प्रत्येक एक दूसरे की गतिविधियों को उत्प्रेरण और सहयोग दे रहा है। मूलतः शिक्षा ज्ञान प्राप्त करने और इसका ज्ञान, व्यवसाय या व्यापार का प्रयोग करने की प्रक्रिया है। अनुसंधान परीक्षित परिकल्पना और खोज तथा तथ्यों का निरुपण, नवीनता, परिष्करण और तकनीकों का उत्पादन और प्रौद्योगिकियों और प्रसार, वास्तव में विभिन्न परिस्थितियों में प्रौद्योगिकियों का विस्तृत प्रयोग को बढ़ावा देना है। शिक्षण, अनुसंधान और प्रसार के समन्वय की प्रक्रिया में केन्द्रीय कोर

कृषि शिक्षा है। यह कहा जाता है कि शिक्षा अच्छा अनुसंधान और प्रसार करने के लिए एक पूर्व आवश्यकता है।

## 1.4 कृषि क्षैत्र में निवेश प्रणाली:

इस तथ्य के बावजूद कि फसलों में आन्तरिक आय दर (आई आर आर) अलग - अलग यानि कि 40-60 प्रतिशत तक है जबकि अनुसंधान की कुल आन्तरिक आय दर 87 प्रतिशत और विस्तार की कुल आन्तरिक आय दर 61 प्रतिशत है। कृषि क्षेत्र में निवेश दर वांदित दर से कम है। अनुसंधान और शिक्षा में औसत सार्वजनिक निवेश 1960 से 5.4 प्रतिशत है। उत्साहवर्धक वृद्धि दर होने के बावजूद भी कृषि सकल घरेलू उत्पाद इसके आर एंड डी का केवल 0.46 प्रतिशत है जबकि यह अन्य विकासशील देशों में 2.4 है। विस्तार में यह स्थिति और भी चिन्ताजनक है। हालांकि इसमें बढ़ता हुआ रुख था जो छटे दशक के शुरु में कृषि सकल घरेलू उत्पाद का0.09 प्रतिशत था जो नब्बे के दशक में बढ़कर 0.15 प्रतिशत हो गया था। भारत कृषि अनुसंधान परिषद का योजना आवंटन नवीं योजना से जोकि IV और V वीं योजना के दौरान 66 प्रतिशत हुआ करता था, छठी योजना से बढ़कर 75 प्रतिशत हो गया। यह विडम्बना है कि IV व V वी योजना के दौरान शिक्षा को 35 प्रतिशत सहायता मिलती थी जाकि आठवीं योजना के बाद घटकर 12 प्रतिशत रह गई। शुरु की योजनाओं के दौरान विस्तार को केवल 2.5 प्रतिशत सहायता हुआ करती थी जोकि 7 वीं पंचवर्षीय योजना तक बढ़कर 13 प्रतिशत हो गई ।

समेकित संकल्पनाओं के माध्यम से कृषि में प्राप्त की गई उपलब्धियां उल्लेखनीय है और इससे हरित, श्वेत, पीत, नील क्रान्तियां प्राप्त करने में सहायता मिली है। अब हमें सदैव हरित क्रान्ति लाने के प्रयास करने होगें। विज्ञान के लाभ कृषि क्षेत्र को भी प्राप्त होते रहें इसके लिए ये क्रान्तियां चुनौतियों से भरी है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों के निम्नीकरण, जलवायु संबंधी परिवर्तनों, विश्वव्यापीकरण तथा उदारीकरण से संबंधित समस्याओं का समाधान करने में शिक्षा और अनुसंधान की भी महत्वपूर्ण भूमिका तय करनी होगी। परन्तु थोड़ी सी मेहनत के बाद हमें अपनी पीठ थपथपाने की आदत हो गई है इसलिए आवश्यकताओं के अनुरुप हम लक्ष्यों को प्राप्त नही कर पाए है। हालांकि उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है तथापि उत्पादन की उच्च लागत के साथ - साथ हमारा उत्पादकता स्तर बहुत नीचा है तथा खाद्यानों की अतिरिक्तता का प्रमुख कारण उत्पादन की अनिवार्य लागत तथा अनियंत्रित आर्थिक कार्यप्रणालियों का होना है जिनके कारण लाभ का बड़ा हिस्सा बिचैलिए खा जाते है इन्ही के कारण आज भी घरेलू पोषण सुरक्षा एक पेचीदा समस्या बनी हुई है।

अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा किए गये दावों और किसान के खेतों पर वास्तविक उपज के बीज की खाई को पाटने की दृष्टि से प्रौद्योगिकी के उत्पादकों (अनुसंधानकत्ताओं) तथा प्रौद्योगिकीविदों (प्रसार कार्यकर्त्ता) के स्थानान्तरण के बीच बेहतर समन्वय और सम्पर्क विकसित किया जाना चाहिए। अध्यापन के प्रभावी एकीकरण, अनुसंधान तथा विस्तार के लिए प्रणाली में कुछ विधियों को विकसित किया जाना है किन्तु इन संस्थाओं की कार्यक्षमता और प्रभावोत्पादकता से संबंधित कुछ तकनीकी मुद्दे है। 'नार्म' की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता लगता है कि मुश्किल से

एक तिहाई प्रौद्योगिकियां ही वास्तविक रुप से किसानों तक पहुंच पाती है। बारानी कृषि में तो स्थिति और भी विकट है।

परिणामजनक उत्पादन कार्य, मूल्यवर्धन, हमारे उत्पाद के आर्थिक पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए हमें अपनी कार्यनीतियों और प्रयास में व्यापक परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। कृषि तथा कृषि व्यापार में उद्यमिता के विकास के लिए छात्रों को तैयार करने हेतु शिक्षा में परिवर्तन लाने की जरुरत है, इसलिए पाठ्यक्रमों को लचीला बनाना होगा, शिक्षण में भागीदार हो तथा संकाय आदि के लिए उपयुक्त मानव संसाधन विकास को विकसित करना होगा। इस समय डिग्री कार्यक्रमों को इस तरीके से तैयार किये जाने की आवश्यकता है कि पहले दो वर्ष के लिए विज्ञान और कृषि विज्ञान से संबंधित किसी आम पाठ्यक्रम को पढ़ने के बाद इन कार्यक्रमों को दो मुख्य धाराओं अर्थात् शैक्षिक तथा व्यावसायिक रुप में विभाजित किया जाए। छात्रों की रुचि और उसके कार्य - निष्पादन के अनुसार उसको विशिष्ट धारा में नामांकित किया जाना चाहिए, उच्च शिक्षा के उद्देश्य को इस तरीके से पुनर्परिभाषित व संरचित किया जाए कि हमारे शैक्षिक और अनुसंधान कार्यक्रम टिकाऊ कृषि और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का मुकाबला कर सके।

अनुसंधान के मोर्चे पर प्रौद्योगिकियों को इस ढंग से विकसित करने की आवश्यकता है कि उनमें किसानों की भागीदारी, खेती से उपभोग किए जाने तक समस्याओं के समाधान का प्रयास, बहुविषयी लाभ लेने के प्रयास रहें तथा प्रौद्योगिकीयों को विकसित करने में लागत कम आए, विस्तार कार्यक्रम को दो (वैज्ञानिक और किसान के बीच आदान प्रदान) संचार व्यवस्था बनाए जाने की आवश्यकता है तथा खेती की पद्धति विस्तार पर आधारित हो। कार्यनीतियों को तैयार करते समय किसान के केन्द्र - बिन्दु में रखा जाना चाहिए। हमारे प्रयास अनुसंधान की ओर विविध रुपों में चलने चाहिए जिनका उद्देश्य मुख्यतः समस्या का समाधान करना तथा केन्द्र - बिन्दु किसानों को स्वीकार्य प्रौद्योगिकियों की खोज करना हो और जिनसें बहुत अच्छी उपज प्राप्त की जा सके ताकि किसान को भरपूर लाभ मिल सके।

## 1.5 कृषि पर्यटन आज कि आवष्यकता: अर्थ और अपेक्षाएं:

आजकल 'कृषि पर्यटन' पर चर्चा हो रही है। प्रसार माध्यम भी इस विषय पर बहस करते नजर आते है। कृषि पर्यटन वास्तव में क्या है ? क्या होना चाहिये। इस संज्ञा का अर्थ क्या है ?

खेत में रहना, बैलगाड़ी में घूमना, ग्रामीण परिधान पहनकर चलना, या फिर ट्रेक्टर चलाना (याने केवल फोटो के लिए वैसी पोज देना) ग्रामीण टेस्ट के खानपान का आस्वाद लेना, इत्यादि को 'कृषि पर्यटन' कहना, क्या उचित होगा ? ऐसे कृषि पर्यटन की सुविधाएं आज जगह जगह उपलब्ध है और लोग भी उसका अच्छा लुफ्त उठाते नजर आते है। इसे अगर कृषि पर्यटन कहें तो उससे शहरी सैलानियों का कुछ पैसा आवश्यक ही ग्रामीण भारत में आता है, तथा रोजगार के कुछ अवसर भी अवश्य पैदा होते है। परन्तु मेरी राय में यह बहुत ही सतही तौरवाली बात हुई। जैसे यदि हम हिमाचल प्रदेश जाते है, तो वहां के परिधान और आभूषणों में अपनी तस्वीर

खिंचवाते है, केवल उसी क्षेत्र में पायें जाने वाले, याक नामक पशु के साथ फोटो खिंचवाते है या राजस्थान जाये तो ऊँट के साथ सरपर बडीसी राजस्थानी पगड़ी रखकर फोटो खिंचवाते है। यह बात जितनी सतही तौर की है उसी तरह उपरनिर्दिष्ट कृषि पर्यटन भी एकदम उपराउपरी प्रकारवाला है, ऐसी मेरी धारणा है। ग्रामीण पोशाक, खानपान, वहां के संगीत, गायन और लोककला इत्यादि का आनंद लेना एक चेंज के नाते सभी को भायेगा। परन्तु केवल इन्ही बातों को कृषि पर्यटन समझना ठीक नहीं। कृषि पर्यटन का अर्थ एवं अपेक्षाएं कुछ ऐसी है।

- कृषि पर्यटन द्वारा सैलानियों को कृषि संस्कृति का अच्छा और सखोल आकलन है।
- कृषि व्यवसाय एक परिश्रम भरा, जोखम भरा व्यवसाय है, इससें भारी मात्रा में अंग मेहनत की आवश्यकता है, यह बात पर्यटकों के समझ में आये।
- ग्रामीण जीवन कहानियां, किताबों या फिल्मों के परदे पर नजर आता है। वैसा रोमांटिक या आराम भरा नहीं है। बिजली, पीने के पानी का अभाव, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, सड़के तथा सम्पर्क सुविधाओं का अभाव तथा अन्य कई तरह की असुविधाएं और समस्याओं वाला है, इसका अहसास पर्यटकों को कृषि पर्यटन के माध्यम से हो।
- कृषि क्षेत्र में कठिनाइयां बहुत है परन्तु अनुसंधान विकास की संभावनायें भी अपार है, यह बात युवा पीढ़ी समझे और उन्हे अपनी शक्ति बुद्धि का प्रयोग ग्रामीण विकास के लिए करने की प्रेरणा कृषि पर्यटन द्वारा मिले।
- काश्तकारों के बारे में शहरी और महानगरीय सफेदपोश लोगों में कई तरह की गलतफहमियां पायी जाती है। जैसे काश्तकार आलसी है, इन्हे किसी प्रकार का टेक्स देना नही पड़ता, इन्हें सरकार बहुत रियायतें देती है, सब्सिडी और आर्थिक मदद देती है, काश्तकार अंध श्रद्धालु है, ये कुछ नया सीखना या करना नही चाहते इत्यादि। इसका वास्तविक चित्र क्या है, वो कृषि पर्यटन समाज के सामने आना चाहिए।
- संक्षेप में, कृषि पर्यटन शहरी और ग्रामीण भारत संवाद बढ़े, जो सद्भावना और सहकार्य बढ़ाने के लिए आवश्यक है। इस देश की पैंसठ प्रतिशत आबादी ग्रामीण भारत में रहती है, वो कैसे रहती है, उसकी जीवन शैली और संस्कृति क्या है। यह बात व्यापक रुप से समझ में आना चाहिए। ग्रामीण शहरी भारत दूरी को भी कृषि पर्यटन कम कर सकता है। पाठक अपने विचार भी इस विषय पर प्रकट कर सकते है।

## 1.6 कृषि विष्व व्यापार में प्रतिस्पदा:

विश्व व्यापार संगठन (डब्लू. टी. ओ) द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात व्यापारिक स्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए सन् 1948 में गठित किये गए व्यापार एवं सीमा शुल्क के समान्य समझौते (जी.ए.टी.टी.) का एक नवीन रुपांतरण है। 1945 से आरम्भ होकर कई दौर की बातचीत के बाद उरगवे चक्र की बैठक के बाद विश्व व्यापार संगठन और उसके तहत विश्व व्यापार को सरल बनाने और बढ़ावा देने वाले अनेक समझौतों को अपनाया गया।

कृषि से सम्बन्धित समझौतों मसलन कृषि व्यापार समझौता, सेनिटरी और फाइटोसेनिटरी समझौत और बौद्धिक संपदा अधिकार समझौता को एक जनवरी 1995 से आंशिक रुप से अपनाया गया, साथ ही इनको पूर्ण रुप से लागू करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम बनाया गया है। भारत सरकार ने भी इन समझौतों के ऊपर अपनी स्वीकृति दी है। विश्व व्यापार संगठन के कृषि से सम्बन्धित इन समझौतों के लागू हो जाने पर विकासशील देशों को अपना कृषि सम्बन्धी निर्यात बढ़ाने की काफी सम्भावनाएं है। विश्व व्यापार संगठन के कृषि से सम्बन्धित इन समझौतों से विकासशील देशों की आशायें कहां तक पूरी होती है और कृषि विश्व व्यापार में कितनी वृद्धि होती है, इसकी सफलता इन आधार बिन्दुओं की सफलता पर निर्भर करती है।

- निश्चित समय सीमा में कृषि व्यापार को चुंगी/करों और मात्रात्मक प्रतिबंध से मुक्त करना।
- कृषि उत्पादन के लिये किसानों को दिये जाने वाले अनुदानों में कटौती करके न्यूनतम स्तर तक लाना।
- अन्तर्राष्ट्रीय माप दण्डों के अनुरुप जिन्सों की गुणवत्ता में सुधार और जीवनाशी रसायनों के अवशेष को कम करना।
- कृषि निर्यात को बढ़ावा देने वाले अनुदानों में कमी लाना।
- बौद्धिक संपदा अधिकार को पूर्ण रुप से लागू करना।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद जहां हमें कृषि का निर्यात बढ़ाने की अनेक सुविधायें और अवसर प्राप्त है, वहीं हमें अनेक चुनौतियों का भी सामना करना है। विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते के कुछ प्रावधान और वर्तमान स्थितियां भारत व अन्य विकासशील देशों को कृषि विश्व व्यापार में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिये अनुकूल नही है, उदारणार्थ

- भारत में कृषि अनुदानों की मात्रा पहले से ही न्यूनतम से काफी कम है और भारत सरकार के बजट घाटे को देखते हुये इसको और कम करने पर विचार कर रही है। भारत की तुलना में अमेरिका और यूरोपीय देशों में कृषि अनुदानों की राशि बहुत अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1998 में प्रति किसान और प्रति हैक्टर अनुदानों की राशि क्रमशः 30655 और 5457 यू. एस. डालर थी। अमेरिका की 1988 की कुल अनुदानों की राशि (97.3 बिलियन यू. एस. डालर) भारत के कुल कृषि उत्पादक के मूल्य से अधिक थी। इसके अतिरिक्त, विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों से बचने के लिये अमेरिका ने कृषि अनुदानों के स्वरुप को भी बदल दिया है। विकासशील देशों की इन नीतियों और कृषि अनुदानों में समझोते के अनुसार कमी न करने के विरुद्ध, हाल ही के पृथ्वी सम्मेलन में विकसित देशों ने जोर - शोर से रोष प्रकट किया है।
- विकसित देशों ने आपस में व्यापार को बढ़ावा देने और विकासशील देशों के सामान को नकारने के लिये भी आपस में समझौते किये है उदारणार्थ जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा और यूरोपीय यूनियन के मध्य व्यापार समझौता। इन देशों के बीच आपस में व्यापार करों की मात्रा बहुत कम है।
- सेनिटरी और फाइटोसेनिटरी समझौते के प्रावधानों से विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों को अधिक लाभ होगा। इस समझौते के तहत प्रावधानों को लागू करने के

लिए अधिकतर विकासशील देश तकनीकी जानकारी और उपकरणों के लिए विकसित देशों पर निर्भर है।

- लागत मूल्य के अतिरिक्त जिन्सों की गुणवत्ता के आधार पर प्रतिस्पर्था में भी भारत व अन्य विकासशील देशों को अधिक लाभ नही मिलेगा।
- बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते के प्रावधानों से भी विकसित देशों को अधिक लाभ होगा क्योकि बौद्धिक संपदा अधिकार समझौते के तहत अपनी संपदा को कानूनी संरक्षण प्रदान करने में विकासशील देश बहुत ही पीछे है। जैव प्रौद्योगिकी के विकास के स्तर में अधिक अन्तर होने से विकसित देश विकासशील देशों का आसानी से शोषण कर सकते है।
- हमारे अधिकतर कृषि उत्पादों की प्रति हैक्टर औसत उपज विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। इस अनतर के कारण भारत में प्रति इकाई उत्पादन लागत इन देशों की तुलना में अधिक है, जिसके कारण लागत के आधार पर प्रतिस्पर्धा में भारत कमजोर पड़ जाता है।

## 1.7 कृषि विकास की संभावनाए:

स्वतंत्रता के बाद 50 वर्ष की अल्पावधि में भारत खाद्यान की कमी के स्तर से निकलकर न केवल आत्मनिर्भर बना है, बल्कि प्राकृतिक आपदाओं की अज्ञात कठिनाइयों से निपटने के लिए अपार भंडार सुरक्षित कर लिए है और कुछ जिन्सों के निर्यात की क्षमता भी बना ली है। यह परिवर्तन समेकित प्रणाली की संकल्पना से ही संभव हो पाया है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद जहां हमें कृषि का निर्यात बढ़ाने की अनेक सुविधायें और अवसर प्राप्त है, वहीं हमें अनेक चुनौतियों का भी सामना करना है। विश्व व्यापार की बदली हुई परिस्थितियों में भारत के सामने बाहर से आयात कम करने और अपना निर्यात बढ़ाने की गंभीर चुनौतियां होगी। अतः नई चुनौतियों का सामना करने और व्यापार में भारत के कृषि उत्पादों की भागेदारी बढ़ाने के अवसरों का अधिक लाभ देने के लिये हमें उपयुक्त उपाय करने होगें, जिसमें कृषि उत्पादो की प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी करना और उनको विश्वस्तरीय गुणवत्ता पर लाना, कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी में भारी पूंजी निवेश, फसल विविधीकरण को बढ़ावा और ढांचा एवं नीतिगत बदलाव प्रमुख है।

### 1.7.1 कृषि विविधीकरण को बढ़ावा:

इसमें दो राय नही कि भारतीय किसानों को गैहूँ व अन्य अन्न वाले उत्पादों को विदेशी उत्पादों के मुकाबले देश व विदेश में बेच पाना मुश्किल होगा । मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर बुरा प्रभाव, उर्वराशक्ति का हास, लागत प्रतिफल में गिरावट और फसल की पैदावार में धीरे धीरे कमी अन्न वाली फसलों की सतत खेती की देन है । वशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हम फसल विविधीकरण से कर सकते है। इसमें किसानों को अन्न वाली फसलों पर आधारित फसल प्रणालियों में दालों, तिलहनों, चारा, रेशे, मसाले, औषधीय, सब्जियों एवं व्यावसायिक फसलों का समावेश करना है। फसल विविधीकरण से अधिक आय, मृदा की उत्पादन क्षमता में

बढोत्तरी, उत्पादन लागत में कमी एवं उत्पादन पद्धति में टिकाऊपन संभव है। अन्तः खेती से फसल विविधीकरण आसानी से अपनाया जा सकता है। इस प्रकार उपलब्ध स्रोतों का समुचित उपयोग कर सीमांत एवं तघु कृषकों का आर्थिक स्तर बढ़ाया जा सकता है।

### 1.7.2 जैविक खेती को प्रोत्साहन:

देश में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां पर संश्लिष्ट यौगिक उर्वरकों, कीट, व्याधि एवं खरपतवार नाशकों और नियामकों का नाममात्र ही प्रयोग किया जाता है। इन क्षेत्रों में किसानों को उन कृषि उत्पादों की जैविक खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिनकी विदेशों में काफी मांग है।

### 1.7.3 भौगोलिक संकेतांक का सदुपयोग:

विश्व व्यापार समझौते के अधिनियमों में यह प्रावधान है कि कोई वस्तु या उत्पाद किसी विशेष भू - भाग से संबन्धित है अथवा उसको विशेष क्षेत्र की ओर इंगित करते हैं तो एक विशेष वस्तुओं व उत्पादों का संरक्षण किया जा सकता है। भारत में भी भौगोलिक संकेताक उपलब्ध है जैसे कि बासमती धान, दार्जिलिंग चाय, आम (महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले का अलफांसो, आन्ध्रप्रदेश में बेगानपल्ली और उत्तर प्रदेश में दशहरी), कश्मीर का सेब, मसाले इत्यादि जिन का संरक्षण प्राप्त करने तथा उपज और गुणवत्ता बढ़ाने की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा करने से हम विश्व की मंडियों में बिना स्पर्धा से इन उत्पादों का व्यापार कर सकते है।

### 1.7.4 जलवायु, धरातल और पादप आनुवंषिक विविधता का सही उपयोग:

विश्व के अधिकांश देशों की तुलना में भारत के पास जलवायु और धरातल की विविधता बहुत अधिक है, जिसके कारण भारत में अनेक प्रकार की फसलें और पेड़ पाये जाते है। एक ही फसल को पूरे वर्ष देश के एक या दूसरे भाग में पैदा कर सकते है। आज हमें प्रकृति की इस देन को उन देशों की कृषि उत्पादों की मांग की पूर्ति के लिये दोहन करना होगा जहां वर्ष भर खेती नही की जा सकती है या जहां की जलवायु सभी प्रकार की फसलों की खेती के लिये उपयुक्त नही है। भारत में मौसम विविधता इतनी है कि सारा वर्ष पुष्प उत्पादन किया जा सकता है, इस के विपरीत यूरोप में केवल अप्रैल से अगस्त ही पुष्प उत्पादन हो पाता है जिसके उपरान्त उस को फूलों के लिये आयात पर निर्भर रहना पड़ता है।

### 1.7.5 कृषि सूचना प्रौद्योगिकी का विकास:

परिवर्तनशील समय में प्रौद्योगिकी सूचना आधार, विकसित प्रौद्योगिकी का आंकलन और प्रौद्योगिकी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ण सूचना आवश्यक है। हमें अपनी कृषि सूचना प्रौद्योगिकी को अधिक कारगर व सक्षम बनाना होगा। हमारे देश में अल्प, मध्यम और दीर्घकालिक अवधि के आधार पर मौसम की सूचना देने का प्रावधान है। इस सूचना प्रणाली को अधिक से अधिक सत्यता प्रदान करनी होगी साथ ही क्षेत्रीय सीमा को भी कम करना होगा। तीनों प्रकार की सूचना से अनुकूल मौसम का लाभ उठाकर उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि और लागत में कमी की जा सकती है। प्रतिकूल मौसम की अवस्था में फसलों में फेर बदल करते हुये

कृषि की उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाकर फसलों पर प्रतिकूल परिस्थितियों के असर को कम करते हुये उत्पादकता में टिकाऊपन लाया जा सकता है। मौसम की सही सूचना होने पर फसल पद्धितियों में बदलाव, फसल की समय पर और उचित ढंग से बुआई, सिचांई के पानी में बचत, उर्वरकों की मात्रा, प्रयोग विधि और प्रयोग के समय में फेर बदल कर उर्वरकों की दक्षता में सुधार तथा खरपतवार, कीट व व्याधि नाशक रसायनों का उचित उपयोग संभव है।

मौसम की अग्रिम सूचना के साथ - साथ हमें कीटों और व्याधियों के फैलने की अग्रिम सूचना को भी अधिक प्रभावशाली और कारगर बनाना होगा। ऐसा करने से पर्यावरण विरोधी रासायनों के प्रयोग को कम करते हुये उत्पादकता में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

### 1.7.6 कटाई उपरान्त की प्रौद्योगिकी को बढ़ावा:

प्रतिवर्ष लगभग 67,000 करोड़ रुपये के बराबर कटाई उपरान्त खाद्यान उपभोग से पहले ही नष्ट हो जाता है, खाद्यानों में लगभग 10 प्रतिशत, फलों एवं सब्जियों में 20-30 प्रतिशत व दूध, मांस, मछली एवं अंडे में 12 प्रतिशत की क्षति अनुमानित है। फसल कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकि के प्रयोग से इसको हम सुगमता से आधा कर सकते है। पाश्चात्य देशों के रहन-सहन और दिनचर्या की तरफ झुकाव को देखते हुए भविष्य में भारत में व विश्व के अन्य देशों में प्रोसेस्ड या रेडी टू ईट उत्पादों की बहुत मांग होगी यह सुनिश्चित करने के लिये कि हमारी कृषि विश्व में प्रतिस्पर्धात्मक हो, प्रसंस्करण, उत्पादन संवर्धन, मूल्यवर्धन, पैकेजिंग, विपणन, स्थानान्तरण, भंडारण, गैर मौसम आपूर्ति आदि पर ध्यान देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उत्पाद को कच्चे माल के रुप में न बेचकर प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन उपरान्त बेचने से न केवल विश्व व्यापार में कृषि उत्पादों की बढ़ोत्तरी होगी बल्कि किसानों को आर्थिक लाभ के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजी रोटी के साधन उपलब्ध होंगे, नगरीय क्षेत्रों की तरफ पलायन कम होगा औश्र ग्रामीण समाज में उद्यमशीलता का विकास होगा होगा। कटाई पश्चात् की प्रौद्योगिकी के विकास और इस के प्रयोग के लिये सरकार ने अनेक परियोजनायें लागू की है, जिनके कारण कृषि निर्यात खासकर बागवानी तथा मात्स्यिकी के क्षेत्र में संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुये है। कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश और अनुसंधान प्रयासों की आवश्यकता है।

### 1.7.7 कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार:

जहां विश्व व्यापार समझोते के तहत विदेशों में माल बेचने के अवसर खुल गये है वही विकासशील देशों को न केवल उत्पादन लागत के आधार पर बल्कि उत्पादों की गुणवत्ता के आधार पर भी विकसित देशों में मुकाबला करने के लिये अपने आप को सक्षम करना होगा। गुणवत्ता में हमें कृषि उत्पादों में पीड़कनाशी अवशेष के बढ़ते हुए अंश को कम करना होगा। इसके लिए किसानों को पर्यावरण मित्र व लागत प्रभावी समेकित पीड़क प्रबन्ध को अपनाना होगा। प्रजनकों, सस्यविज्ञानियों, पादप सुरक्षा विशेषज्ञों तथा अन्य क्षेत्रों के वैज्ञानिकों को साथ बैठकर कृषि प्रौद्योगिकी के विशिष्ट घटकों को एकीकृत करके वास्तविक, व्यवहार्य, अपनाये जाने योग्य और सक्षम समेकित पीड़क प्रबन्ध (आई. पी. एम) का विकास करना होगा और समय - समय पर

अनुसंधान के आधार पर इस में सुधार करना होगा। जैव पौद्योगिकी का प्रयोग करते हुये अधिक उपज देने वाली रोगरोधी, कीटरोधी, तथा अन्य अजैविक प्रतिरोधी किस्मों के विकास पर अधिक ध्यान देना होगा। भारत जैव विविधता का विश्व में एक प्रमुख केन्द्र है। एक समय था जब कृषक खेतों में कई फसलों के साथ - साथ एक ही फसल की विविधापूर्ण जनन द्रव्य का समावेश करता था, जो अब अधिक उपज देने वाली कुछ ही फसलों की सीमित किस्मों तक ही रह गया है। हमारा यह परम्परागत जनन द्रव्य न केवल प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखता है बल्कि अन्तराष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता से भी भरपूर है। जनन द्रव्य का कुछ अंश अभी भी उपलब्ध है। अतः गुणवत्ता के आधार पर कृषि उत्पादों की मांग करने वाले देशों में इन जनन द्रव्य से उत्पादित कृषि उत्पादों के व्यापार की संभावनाओं की तलाश करनी चाहिये। गुणवत्ता से भरपूर परम्परागत जनन द्रव्यों का हमें अधिक उपज देने वाली किस्मों में भी समावेश करना होगा। हमारी कुछ कृषि उत्पादों की गुणवत्ता के आधार पर पहले से ही विश्व की मंडियों में प्रभुत्व बना हुआ है।

### 1.7.8 प्रौद्योगिक हस्तांतरण की मजबूत व्यवस्था:

भारत में अधिकतर कृषि उत्पादों की औसतन उपज विकासशील देशों की तुलना में कम है। परन्तु हमारे पास उपलब्ध प्रौद्योगिकी में उत्पादन और उत्पादकता को दुगना और कुछ क्षेत्रों में तिगुना करने की क्षमता है। अतः इस प्रौद्योगिकी को किसानों तक ले जाने और इसके पूर्ण रुप एवं सही तरीके से अपनाने के लिए एक प्रभावशाली एवं मजबूत सूचना तंत्र की आवश्यकता है। प्रौद्योगिकी के सही प्रयोग से अपनी औसतन उपज और विकसित देशों की औसतन उपज के अन्तर को कम किया जा सकता है, जिस से हम खाद्य सुरक्षा के साथ - साथ विदेशों की मांग की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादों का उत्पादन कर सकते है।

### 1.7.9 कृषि प्रौद्योगिकी से जुड़े उत्पादन कारकों की समय पर उपलब्धता:

कृषि प्रौद्योगिकी के उचित हस्तान्तरण के साथ - साथ सरकार को उत्पादन कारकों (बीज, पानी बिजली, कृषि की दवाईयां, उपकरण आदि) की समय पर उपलब्धता को सुनिश्चित करना होगा। फसलों से भरपूर उपज और कारकों की अधिक दक्षता के लिये यह जरुरी है कि कृषि उत्पादन से जुड़े सभी कार्य भी एक निश्चित समय पर पूर्ण हों। समय बीत जाने पर उपज में होने वाली कमी की किसी भी तरह भरपाई करना संभव नही है। कारकों की समय पर उपलब्धता के साथ - साथ सरकार को इनकी गुणवत्ता पर भी अधिक ध्यान देना होगा।

### 1.7.10 प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी:

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो के अनुसार विश्व व्यापार का आधार है उत्पादन में तुलनात्मक लाभ। विश्व व्यापार में अपने कृषि उत्पादों का हिस्सा बढ़ानें के लिये हमें प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी करते हुये अपनी उत्पादकता को बढ़ाना होगा। निम्नलिखित उन्नत सस्य प्रौद्योगिकी में कारकोें की उपयोग दक्षता बढ़ाने की क्षमता है। अतः इसको अपनाने से लागत में थोड़ी सी बढ़ोत्तरी से उत्पादकता के स्तर को दुगना किया जा सकता है।

i. **सही समय पर बुआई:** फसल की उपयुक्त समय पर बुआई करने से फसल की पैदावार पर उपयुक्त प्रभाव पड़ता है। प्रयोगों में ऐसा पाया गया है कि गेहूं की बुआई में प्रति एक दिन की देरी से उत्तरी भारत में औसत 50 किलोग्राम प्रति हैक्टर पैदावार में कमी आ जाती है। धान - गेहूं फसल चक्र में धान की कटाई के बाद, खेत तैयार करने में 15 - 30 दिन लग जाते है और गेहूं की बुआई में देरी हो जाती है। इस समस्या के निदान के लिए जुताई रहित, फर्टी - सीड ड्रिल के उपयोग को बढ़ावा देना होगा। अरहर - गेहूं प्रणाली में, अरहर की अप्रैल के अन्त में बुआई करने से अरहर की अधिक उपज मिलती है साथ ही गेहूं की भी समय से बुआई हो जाती है। समय से बुआई न करने पर फसल में उपयोग होने वाले संसाधनों की दक्षता में कमी आती है। अतः भरपूर पैदावार लेने के लिए यह अत्यन्त जरुरी है कि हर फसल की समय पर बुआई हो जाये।

ii. **समुचित पौध संख्या:** फसल से अच्छी पैदावार प्राप्त करने की एक बुनियाद शर्त यह है कि खेत में पौधों की उचित संख्या हो। सर्वेक्षण बताते है कि किसानों के खेतों पर प्रायः सभी फसलों में पौधों की संख्या बहुत ही कम होती है, जिसके कारण खाद और पानी का सही उपयोग संभव नही है। पौध संख्या, बुआई समय, फसल की प्रजाति, फसल के मौसम और मृदा में जल उपलब्धता पर भी निर्भर करती है। बुआई में देरी की अवस्था में बीज की मात्रा 25 प्रतिशत बढ़ा दे परन्तु बारानी अवस्था में बीज दर में 25 प्रतिशत की कमी कर दें। इसी तरह ऊसर भूमि में बुआई या रोपाई करते समय बीज/पौध की मात्रा सामान्य से 10 - 15 प्रतिशत अधिक रखें।

iii. **बुआई सही ढंग से हो:** बुआई की छिटकवां विधि, कम उपज के साथ बीज की अधिक मात्रा के उपयोग, निराई - गुड़ाई में अधिक समय लगना तथा सिंचाई में अधिक पानी की जरुरत आदि कमियों से ग्रस्त है। अधिक उपज प्राप्ति और संसाधनों के सही उपयोग के लिये सभी फसलों में बुआई की कतार विधि को अपनाएं। कतारों में बुआई करने के लिए पहले केरा या पोरा विधि का उपयोग किया जाता था जिसकी जगह अब सीड - ड्रिल ने ले ली है। बीज महंगा होने की अवस्था में डिबलिंग विधि का प्रयोग करें। बारानी क्षेत्रों में चना, सरसों, मूंग, उड़द, मसूर, मक्का, कपास, अरहर आदि की केरा या पोरा विधि से नाली में बुआई करें। ऐसा करने से वर्षो के सीमित जल का उचित उपयोग होता है और अधिक उपज मिलती है। इसके विपरीत सिंचित और अधिक वर्षा वालें क्षेत्रों में अरहर, मक्का, कपास, मूंगफली, आलू और गन्ना की रिज - फरो (नाली मेंड़) विधि में, मेंड़ के ऊपर बुआई करें। इस विधि में मेंड़ की ढलान और चैड़ी रिज - फरो विधि में मेंड़ के किनारों पर बुआई या रोपाई करें। अंतः फसलीकरण की अवस्था में दुहरी पंक्ति बुआई अपना कर जैसा कि अरहर में 30/70 से.मी., गन्ना में 60/90 से.मी., कपास में 40/100 से.मी. और राई - सरसों में 30/60 से.मी. को अधिक उपयोगी पाया गया है। बुआई की दिशा, फसल की बढ़वार व पैदावार पर अपेक्षित प्रभाव डालती है। आमतौर पर रबी फसलों में उत्त्री - दक्षिण दिशा में बुआई करना लाभप्रद पाया गया है। गेहूं में दो तरफा (क्रिस - क्रास) बुआई करके 2 से 3 क्विंटल प्रति है, अधिक पैदावार प्राप्त हो सकती है।

iv. **फसल प्रजाति और फसल प्रणाली चुनाव:** कृषि वैज्ञानिकों ने जलवायु तथा मिट्टी विशेष, देर से बुआई के लिये, कम अवधि वाली, ऊसर, क्षारीय तथा अम्लीय परिस्थितियों के लिये, पानी

की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुये, व्याधि रोधी तथा अन्य विपरीत, जैविक और अजैविक स्थितियों के लिये फसलों की किस्मों और फसल प्रणालियों को विकसित किया है। अतः अधिक उपज लेने तथा संसाधनों का समुचित उपयोग करने के लिये, आज यह जरुरी है कि किसान स्थिति विशेष को ध्यान में रखते हुये किस्मों और फसल प्रणालियों का चयन करें।

**v. पोषक तत्वों का सुप्रबन्ध:** पोषक तत्वों के सुप्रबन्ध में पोषक तत्वों का सन्तुलित उपयोग, नाइट्रोजन व पोटेशियम की मात्रा को फसल की अवधि और मिट्टी के प्रकार को ध्यान में रखते हुए दो या तीन भागों में बांट कर फसल की उचित अवस्था पर देना, फास्फोरस का बुआई से पहले मिट्टी की सतह के नीचे प्रयोग, बारानी क्षेत्रों में पोषक तत्वों को फसल की सही अवस्था में छिड़ककर प्रयोग करना, स्लो रिलीज (मन्द निस्तार) नाइट्रोजन उर्वरकों को बढ़ावा देना, कम घुलनशील सल्फर स्रोतों और तत्व सल्फर को फसल की बुआई से 25 से 30 दिन पहले नमी युक्त भूमि में डालना, मिट्टी की जांच के आधार पर सूक्ष्म तत्वों में रखते हुए उर्वरकों का सही चुनाव प्रमुख है।

**vi. समेकित पोषक तत्व प्रबंध:** कृषि की उत्पादकता के टिकाऊपन के लिए यह अति आवश्यक है कि मुद्रा के अन्दर पोषक तत्वों की उचित मात्रा संतुलित अवस्था में उपलब्ध हो। यह केवल समेकित पोषक तत्व प्रबंध प्रणाली को अपनाने पर ही संभव हो सकता है। समेकित पोषक आपूर्ति प्रणाली के प्रमुख घटक ये है - संतुलित उर्वरक उपयोग, उर्वरकों के साथ कार्बनिक व हरी खादों का समावेश, दलहनी फसलों का फसल प्रणालियों में समावेश, फसल अवशेषों और पुनः चक्रीय अवशिष्टों का प्रयोग एवं जैव उर्वरकों का प्रयोग।

**vii. फार्म जल का सुप्रबंध:** फार्म पर उपलब्ध जल का समुचित प्रबंध न होने के कारण सिंचाई की दक्षता काफी कम है। उपलब्ध जल के समुचित प्रयोग के लिए फसल की सर्वाधिक संवदेनशील अवस्थाओं पर सिंचाई, नाली विधि से सिंचाई, स्प्रिंकलर (फव्वारा) व ड्रिप (बूंद - बूंद) विधि से सिंचाई को अधिक बढ़ावा देना होगा।

### 1.7.11 कोन्ट्रेक्ट और सहकारी खेती को बढ़ावा:

अधिकतर किसानों की जोत 10 एकड़ से भी कम है। छोटी और मध्यम जोत वाले कृषक विश्व व्यापार के समझौते के तहत प्राप्त अवसरों से लाभ उठाने में असमर्थ है। इन किसानों को कोन्ट्रेक्ट खेती का सहारा लेना चाहिए। कोन्ट्रेक्ट खेती में बड़े किसान या उद्योगपति या संस्था या सरकार छोटे किसानों को विश्व की मण्डियों की मांग और गुणवत्ता मापदण्डों के अनुसार कृषि उत्पादों को पैदा करने के लिये प्रोत्साहन और सहायता देते है और पैदावार को उचित दाम पर खरीदकर विश्व की मण्डियों में बिक्री के लिये ले जाते है। देश में बासमती धान, सब्जियों एवं फूलों की कोन्टेक्ट खेती के ऊपर अब तक हुये प्रयोगों में काफी सफलता मिली है। कोन्ट्रेक्ट खेती के अतिरिक्त सहकारी खेती के द्वारा कृषि उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, भंडारण और विपणन से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिये भी हमें गंभीरता से शुरुआत करनी होगी।

### 1.7.12 कृषि उत्पाद गुणवत्ता की जांच का प्रबन्ध:

कृषि उत्पादों का अन्तराष्ट्रीय मापदंडो के आधार पर गुणवत्ता का पता लगाने के लिये देश भर में गुणवत्ता मापक प्रयोगशालाओं की स्थापना की अविलम्ब आवश्यकता है। इन प्रयोगशालाओं में किसान अपनी कृषि उत्पादों की गुणवत्ता का पता लगा कर निर्यात योग्य कृषि उत्पादों का निर्यात करके उचित मूल्य प्राप्त कर सकता है।

### 1.7.13 अन्य जरूरी बदलाव:

भविष्य में निर्यात की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुये, निर्यात से जुड़े मानव संसाधनों के विकास की ओर अधिक ध्यान देना होगा। डब्ल्यू टी. ओ. के द्वारा अनुमोदित आयात शुल्क और कृषि अनुदानों की ऊपरी सीमा का प्रयोग करते हुये हमें किसानों को अधिक से अधिक संरक्षण प्रदान करना होगा। कृषि में अप्रत्यक्ष अनुदानों को जैसे कि बिना मूल्य की बिजली और पानी की समीक्षा करनी होगी। इन अनुदानों से संसाधनों की दक्षता में कमी आई है और साथ ही पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ा है। इन अनुदानों के प्रारुप को बदलकर इन्हें न्यायसंगत बनाना होगा।

## 1.8 सारांश :

कृषि में शिक्षा, अनुसंधान और प्रसार प्रणाली के समन्वित, अतंरबद्ध और अटूट अवयव है। प्रत्येक एक दूसरे की गतिविधियों को उत्प्रेरण और सहयोग दे रहा है। शिक्षण, अनुसंधान और प्रसार के समन्वय की प्रक्रिया में केन्द्रीय कोर कृषि शिक्षा है। यह कहा जाता है कि शिक्षा अच्छा अनुसंधान और प्रसार करने के लिए एक पूर्व आवश्यकता है। भारत खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भर बना है, यह परिवर्तन समेकित कृषि प्रणाली की संकल्पना से ही संभव हो पाया है। किसानों के लाभ के लिए राष्ट्र ने तीव्र प्रौद्योगिकियों की वैज्ञानिक नवीनता, उत्पादन, प्रसंस्करण और विकास के प्रभावशाली प्रयोग के जरिए कृषि उत्पादन और इसके प्रसार में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। अनुसंधानकत्र्ताआंे द्वारा किए गये दावों और किसान के खेतों पर वास्तविक उपज के बीज की खाई को पाटने की दृष्टि से प्रौद्योगिकी के उत्पादकों (अनुसंधानकत्ताओं) तथा प्रौद्योगिकविदों (प्रसार कार्यकर्त्ता) के स्थानान्तरण के बीच बेहतर समन्वय और सम्पर्क विकसित किया जाना चाहिए। नई चुनौतियों का सामना करने और व्यापार में भारत के कृषि उत्पादों की भागेदारी बढ़ाने के अवसरों का अधिक लाभ देने के लिये हमें उपयुक्त उपाय करने होगें, जिसमें कृषि उत्पादो की प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी करना और उनको विश्वस्तरीय गुणवत्ता पर लाना, कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी में भारी पूंजी निवेश, फसल विविधीकरण को बढ़ावा और ढांचा एवं नीतिगत बदलाव प्रमुख है। इसके साथ ही कृषि पर्यटन को बढावा देना चाहिए, जो शहरी और ग्रामीण भारत में सद्भावना और सहकार्य बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

## 1.9 बहु चयनात्मक प्रश्न:

1. 1950-51 में भारत का खाद्यान उत्पादन था -

(अ) 31 मिलियन टन (ब) 51 मिलियन टन (स) 71 मिलियन टन (द) 91 मिलियन टन

{ब}

2. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का मुख्यालय स्थित है -

(अ) नई दिल्ली (ब) कोलकाता (स) मुम्बई (द) चैन्नई {अ}

3. विश्व व्यापार संगठन (डब्लू. टी. ओ.) की स्थापना कब हुई -

(अ) 1945 में (ब) 1948 में (स) 1995 में (द) 2005 में {स}

4. कृषि विकास में पिली क्रान्ती का सम्बध है -

(अ) खाघान्न उत्पादन (ब) तिलहन उत्पादन (स) दुग्ध उत्पादन (द) उपरोक्त सभी {ब}

5. प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी कर सकते है -

(अ) समय पर बुआई करके (ब) समेकित पोषक तत्व प्रबंध करके

(स) सही ढंग से बुआई करके (द) उपरोक्त सभी {द}

## 1.10 सन्दर्भ:


1. कत्याल, जे. सी. एवं भाटिया, जे. एस., 2002, कृषि शिक्षा अनुसंधान और प्रसार के बढ़ते कदम, खेती (11): 9-12.
2. सेवेकर, सुधीर, 2012, कृषि पर्यटन: अर्थ और अपेक्षाएं, हरित क्रान्ति (07): 15.
3. अहलावत, आई. पी. एस. एवं राणा, डी. एस., 2002, कैसे बढे कृषि उत्पाद, खेती (11): 46-52.

# इकाई 2

# फसलों का वर्गीकरण

**इकाई की रूपरेखा**

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 ऋतुओं के आधार पर वर्गीकरण

2.3 पौधो के जीवन चक्र के आधार पर वर्गीकरण

2.4 फसलों का आर्थिक वर्गीकरण या सस्य वैज्ञानिक वर्गीकरण

2.5 फसलों के विशेष उपयोग के आधार पर वर्गीकरण

2.6 फसलों का वानस्पतिक वर्गीकरण

2.7 कृषि महत्व का वर्गीकरण

2.8 सारांश

2.9 बहु चयनात्मक प्रश्न

2.10 सर्दभ ग्रन्थ

## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम जानेगें कि -

- किसी भी कृषि उपयोग के लिए जाने से पहले फसलों के बारे मंे कुछ बुनियादी ज्ञान
- पौधो के जीवन चक्र के आधार पर वर्गीकरण
- फसलों का आर्थिक वर्गीकरण या सस्य वैज्ञानिक वर्गीकरण
- फसलों के विशेष उपयोग के आधार पर वर्गीकरण
- फसलों का वानस्पतिक वर्गीकरण
- कृषि महत्व का वर्गीकरण

## 2.1 प्रस्तावना

फसल निंद्यारण से पूर्व किसान को अपनी भूमि का प्रकार, फसल, किस्म एव दैनिक आवष्यकताएं लागत का स्वरूप तथा भूमि की उर्वरा शकित को ध्यान में रखना चाहिए। फसलों को उगाने से भूमि के विभिन्न परतो से पोशक तत्वों पानी एवं लवणों का समुचित उपयोग हो जाता है । मृदा में पानी एवं वायु का घनिष्ट सम्बन्ध होता है और किसी एक की मात्रा कम होने पर इसी अनुपात में दूसरे अवयव की मात्रा बढ़ जाती है। वर्षा के दिनों में सघन एवं भूमि को आच्छादित करने वाली फसल लगाने से मृदा क्षरण कम होता है जबकि दूर.दूर पंकितयों में बोई गई फसल से मिटटी का कटाव अधिक होता है। इस प्रकार से भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है क्योंकि हरी खाद के लिए दलहनी फसल का उपयोग किया जाता है कि भूमि ये वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण करती है। फसल निंद्यारण के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि

किसान के पास उपलब्ध संसाद्यनों जैसे भूमि श्रम पूंजी सिंचाई इत्यादि का वर्ष भर सदुपयोग होता रहे एवं किसान की आवश्यकताओं की पूर्ति फसल चक्र में समावेषित फसलों के द्वारा होती रहे

**ऋतुओं के आधार पर वर्गीकरण**

ऋतुओं के आधार पर फसलों को हमारे देश में तीन वर्गो में विभाजित किया जाता है।

**अ.खरीफ की फसलें:-** खरीफ ऋतु में वातावरण में ऊँचा तापक्रम व आर्दता पाई जाती है। बारानी अर्थात जिन भूमियों में सिंचाई के साधान नहीं होते वहाँ पर वर्षा प्रारम्भ होने पर फसलों की बुवाई जून-जुलाई में करते है। सिंचित क्षेत्रों में पलेवा करके वर्षा के कुछ समय पहले ही फसल की बुवाई कर सकते है। मक्का, ज्वार, बाजरा, ग्वार, मूंग लोबिया, सोयाबीन, ढेंचा, मूँगफली कपास व आदि फसले इस ऋतु में उगते है। दक्षिणी भारत में ऊँचे तापक्रम व आर्द्रता के कारण इनमें से अधिकांश फसले रबी की ऋतु में भी उगाते है।

**ब.रबी की फसलेः-** इस वर्ग की फसलों के अंकुरण व प्रारम्भिक वृद्धि के लिये ठण्डी जलवायु व अल्प प्रकाश काल की आवश्यकता होती है। इनको पकने के लिए अधिक तापक्रम व दीर्घ प्रदीप्ति काल की आवश्यकता होती है। इस वर्ग में गेहूँ, जौ, जई, चना, मटर, मसूर, लाही, सरसों बरसीम, व आलू आदि की प्रमुख फसले है। इस वर्ग की फसलों की बुवाई अक्टूबर-नवम्बर एवं 31 दिसम्बर तक करते है।

**स. जायद की फसलें:-** इस वर्ग की फसले अधिक तापक्रम, अधिक प्रकाश काल में वृद्धि करती है। सूख व लू सहन करने की क्षमता इस वर्ग की फसलों में पाई जाती है। इसकी बुवाई फरवरी-मार्च में करते है। इस वर्ग की मुख्य फसलें खरबुजा, तरबूज, ककड़ी मूँग व लोबिया आदि है।

## 2.3 पौधो के जीवन चक्र के आधार पर वर्गीकरण-

पौधों अपनी पूर्ण वृद्धि एवं विकास (अंकुरण से बीजोत्पादन तक) में जितना समय लेता है। उस समय को जीवन चक्र कहते है। इसका वर्णन निम्न प्रकार है।

**(अ) एक वर्षीय पौधे -** इस वर्ग भी फसलें एक वर्ष या इससे भी कम समय (उगने से लेकर पढ़ने तक) लेती है। जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, धान, सोयाबीन, सरसों, चना, आदि।

**(ब) द्विवर्षीय पौधे-** ये पौधे प्रत्येक प्रथम वर्ष में वानस्पतिक वृद्धि व दूसरे वर्ष में फल व बीज तैयार करते है। जैसे प्याज व चुकन्दर आदि।

**(स) बहु वर्षीय पौधे-** ये पौधे अनेक वर्षे तक जीवित रहते है। फूल व बीज आने पर भी अपना जीवन चक्र रखते है जैसे रिजका आदि इस प्रकार के पौधों को बहु मुखी पौधे भी कहते है।

## 2.4 फसलों का आर्थिक वर्गीकरण या सस्य वैज्ञानिक वर्गीकरण

फसलों को उनके उपयोग की दृष्टि से अग्रलिखित वर्गो में विभक्त करते है।

**अनाज की फसलें-** इस वर्ग की फसलों के दोनों का प्रयोग मनुष्य अनाज (धान्य) के रूप में करते है। इनका वानस्पतिक भाग अधिकतर पशुओं को खिलाया जाता है। इसमें गेहूं, जौ, जई के अलावा मिलेट्स जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा व कुछ छोटी मिलेट्स जैसे सावॉ को दो, चीना, काकून महु आ व कुटकी आदि फसलें है।

ट्रिटिकेल मानव निर्मित धान्य फसल है। इसको ट्रिटिकम एस्टिवम X सिकेली सिरियल के संकरण से बनाया गया है।

**दलहनी फसलें-** इन फसलों के बीजों को प्रमुख प्रोटीन के स्त्रोत के रूप में प्रयोग किया जाता है। अरहर, मूंग, उड़द, चना मटर, मसूर व सोयाबीन इस वर्ग की फसलें हैं।

**तिलहनी फसलें-** इस वर्ग में वे सभी दलहनी व अदलहनी फसलें आती है। जिनके बीजों से तेल प्राप्त किया जाता है। इस वर्ग में सरसों, राई, तोरिया, दुआ, सुरजमुखी, मूंगफली, अरण्डी, कुसुम, अलसी व तिल प्रमुख फसलें है।

**रेशे वाली फसलें-** इस वर्ग की फसलों से जीवनापयोगी वस्तुओं जैसे कपड़ा, बोरे टाट व रस्सा आदि सामान तैयार करते हे। इस वर्ग की प्रमुख फसलें कपास, जूट, पटसन सनई व अलसी आदि है।

**चारे वाली फसलें-** इस वर्ग में पशुओं को खिलाई जाने वाली फसलें आती है। इन फसलों का प्रयोग हरे व सूखे चारे के रूप में करते है। मुख्यतः ज्वार, बाजरा, कुल्थी, ग्वार, लोबिया, गोठ मक्का, मकचरी, बरसीम, रिजका, मटर, जई, जौ, नेपियर, घास, गिनी घास, सूडान घास व जायन्त घास आदि इसकी फसलें है। चारागाह में पशुओं द्वारा इन फसलों की चराई होती है।

**शर्करा की फसलें-** इस वर्ग की फसलें अपने तने अथवा जड़ों में शर्करा संग्रह करती है जिससे बाद में चीनी तैयार करते है। चुकन्दर व गन्ना इस वर्ग की प्रमुख फसलें है।

**सब्जी की फसलें-** इस वर्ग की प्रमुख फसलें टमाटर, बैगन, भिंडी, करेला, सेम, गोभी, मूली, मटर, शलजम, सलाड़ चुकन्दर, पालक, मेथी, व प्याज आदि है। अधिक समय तक ये फसलें विशेष सावधानियाँ अपनाकर ही संग्रह कर सकते है।

**उद्दीपक फसलें-** चाय, तम्बाकू, पोस्त व कॉफी इस वर्ग मुख्य फसलें है। इनके प्रयोग से शरीर में उत्तेजना पैदा होती है।

**मसाले वाली फसलें-** खुशबु व स्वाद के लिये मसाले अधिकतर सब्जियों अचारों के प्रयोग करते है। इस वर्ग में जीरा, धनिया, अजवाइन, पोदीना, सौंफ, हल्दी, अदरक, मेथी, प्याज, मिर्च, लहसून तेजपात, आदि फसलें है।

**फल वाली फसलें-** इस वर्ग की प्रमुख फसलें खरबुजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा, सिंघाडा आदि है।

**जड़ वाली फसलें-** आलू कन्द फसल है। जिसमें तना कन्द के रूप में बदल जाता है। गाजर, चुकन्दर, शलजम, एवं मूली आदि जड़ वाली फसलें कहलाती है।

**औषधि वाली फसलें-** इस वर्ग की प्रमुख फसलें पोदीना, अदरक, व हल्दी है। इनका प्रयोग दवाइयों के रूप में भी किया जाता है।

## 2.5 फसलों के विषेष उपयोग के आधार पर वर्गीकरण-

इस वर्ग में फसलों के उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है जो निम्न प्रकार है-

**कृषित फसलें-** ये सभी फसलें जिनमे जुताई की आवश्यकता पड़ती है। कृषित फसलें कहलाती है। ऐसी कई परिस्थितियाँ हैं। जहाँ पर भूमि की जुताई नहीं कर पाते फसले उगाते है। ऐसी फसलों को अकृषित फसले कहते है।

**मृदा आरक्षक अथवा वृद्विकारक फसलें-** इस वर्ग की फसलें भूमि को अधिक से अधिक आच्छादन प्रदान करती है जो कि मृदा को वायु एवं जल द्वारा होने वाले कटाव से बचाती है। लोबिया, मोठ, मूँग, उड़द व बरसीम इसकी प्रमुख फसलें है।

**नकदी फसलें-** इन फसलों को कृषक द्वारा पूरा का पूरा उपयोग में न लेकर बाजार में नकद बेच देता है। इस वर्ग की प्रमुख फसलें गन्ना, आलू, कपास, तम्बाकू व चाय आदि है।

**अन्तवर्ती फसलें-** किन्हीं कारणों से प्रमुख फसल खेत से नष्ट हो जाये या बोने में देर हो जाये तो उसके स्थान पर कम समय में तैयार होने वाली फसलों को अन्तवर्ती फसल कहते है। इस वर्ग भी चीना, मूँग, सावॉ व लाही प्रमुख फसले है।

**हरी खाद की फसलें :-**मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने के लिये दलहनी व अदलहनी फसलों को उगाते है। इन्हें खेत में उगाकर कुछ समय बाद वहीं खेत में दबा देते है। प्रमुख फसलें मूँग, सनई, लोबिया, ढेचा बरसीम, मक्का व बाजरा आदि है।

**नाभिय फसलें :-** फसल चक्र में वे फसले जो अन्य फसलों की तुलना में अधिकतम लाभ प्रदान करती है। जैसे शहर के निकट सब्जियों की फसलें, नाभिय फसले कहलाती है।

**सूचक फसले :-** वे फसले जो मृदा में किसी पोषक तत्व की विशेष कमी, अथवा मृदा नमी की कमी को शीघ्र प्रदर्शित कर देती है, सूचक फसले कहलाती है। जैसे-मक्का

**शिकारी फसले:-** ऐसी फसले जो खरपतवारों को भौतिक रूप से दबाकर नष्ट कर देती है या अपने किसी विशेष प्रकार के प्रभाव से नष्ट या अपने किसी विशेष प्रकार के प्रभाव से नष्ट कर देती है, शिकारी फसलें कहलाती है। जैसे-बरसीम

**अवस्थिति या निर्वाहक फसलें :-** ऐसी फसलें जो किसी समस्याग्रस्त क्षेत्र में उगाई जाती है। निर्वाहक फसले कहलाती है। जैसे बाड़ग्रस्त क्षेत्रों में तैरने वाला धान ही उगाते है।

**कीट आकर्षक फसलें :-** कभी-कभी प्रमुख फसल को कीट पंतगों या बीमारियों से बचाने के लिये खेत के चारों और या एक किनारे पर अन्य फसल उगा लेते है। जो खेत की प्रमुख फसल के कीट पतंगो को अपनी और आकर्षित करके आक्रमण से बचा लेती है। जैसे कपास की फसल को कपास के लाल कीट से बचाने के लिये कपास के खेत के चारो और भिण्डी की फसल उगाते है। इस प्रकार भिण्डी कीट आकर्षक फसल कहलाती है।

**पाइरा फसल :-** निचली भूमि की धान की खड़ी फसल में भूमि की अवशेष नमी का उपयोग करने के लिए जब मसूर, बरसीम आदि की बुवाई कर दी जाती है तो उसे पाइरा फसल कहते है।

**मुख्य या आधार फसल-** अन्तवर्ती फसलों में मुख्य फसल अपने इष्टतम अन्तर पर बोई जाती है। इसके बीच में अन्य फसल बोते है। बीच की फसल के कारण मुख्य फसल की उपज में कमी नहीं होने पाती।

**घटक फसल-** अन्तवर्ती फसलोत्पादन में मुख्य फसल की पंक्तियों के बीच जो फसल बोते है। उसे घटक फसल कहते है जैसे गन्ने के बीच में मूँग , उडद, व लोबिया आदि।

## 2.6 फसलों का वानस्पतिक वर्गीकरण

**घास परिवार-** गेहूँ, जौ, जई, ज्वार, बाजरा, गन्ना, धान, चीना, रोजे, सावॉ, नेपिपट, जिनी, घास आदि।

**मटर परिवार-** मूंग उड़द लोबिया, चना, मसूर, ग्वार, अरहर, सोयाबीन, मटर, जिका, नरसीम आदि।

**सरसों परिवार-** सरसो, राई, लाही, गोभी, व तारामीरा आदि।

**कृकपास परिवार-** कपास व पटसन आदि

**आलू, परिवार-** आलू व तम्बाकू

**जूट परिवार-** जूट

**अलसी परिवार-** अलसी

**अरण्डी परिवार-** अरण्डी

**कम्पोजिटी परिवार-** सूरजमुखी

**चीनोपोडियसी परिवार -** चुकन्दर

**कद्दू परिवार -** खरबुजा, तरबूज, खीरा, ककड़ी, करेला, कददू आदि।

**प्याज परिवार -** प्याज, लहसुन

**गाजर परिवार -** गाजर, सौफ, जीरा, व धनिया आदि।

## 2.7 कृषि महत्व का वर्गीकरण

फसलों का वर्गीकरण मृदा उर्वरता, बीज का आकार, फसल की जड़ मूँग आदि के आधार पर किया जाये तो वर्गीकरण कृषक के लिये निम्न प्रकार उपयोगी पाया जाता है।

**क. बीज का आकार-**बीज का आकार बोने की गहराई को प्रभावित करता है। मोटे बीज अधिक गहराई पर व छोटे बीज कम गहराई पर नमी के सम्पर्क में बोये जाते है। आकार के आधार पर फसलों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है।

1. छोटे बीज वाली फसले-जैसे, गोभी, बरसीम, तम्बाकू, व सरसों आदि।
2. मध्यम आकार के बीज वाली फसलें-गेहूँ,जौ,जई व ज्वार आदि।
3. बड़े बीज वाली फसले-मक्का, मटर, कपास, चना आदि।

**ख. जड़ों की गहराई के आधार पर**

1. उथली जड़ो वाली-मक्का, गेहू, जौ आदि।
2. गहरी जड़ो वाली-अरहर, कपास, व ग्वार आदि

**ग. जड़ों पर ग्रंथियाँ -** मृदा में न्नत्रजन की मात्रा बढ़ाने के लिये दलहनी फसले प्रयोग करते है। क्योंकि इनकी जड़ों पर जीवाणु की ग्रंथियाँ होती है जो वातावरण से न्नत्रजन एकत्र करती है। इसी के आधार पर सभी फसलों को निम्न दो वर्गो में बाँटते है

1. दलहनी फसले-मटर, चना, सनई, मूंग, अरहर, मसूर, लोबिया आदि।
2. अदलहनी फसले-गेहूँ, धान, ज्वार व मक्का आदि सभी अदलहनी फसलों को फारफोरस की अपेक्षा न्नत्रजन उर्वरकों की अधिक आवश्यकता होती है।

**घ. पानी की आवष्यकता**

1. अधिक पानी सहन करने वाली फसले-धान
2. अधिक सिंचाई चाहने वाली फसलें-गन्ना, आलू, सब्जियाँ व बरसीम आदि।

3. औसत सिंचाई वाली फसलें-गेहूँ की ऊँची प्रजातियाँ, मक्का, जौ, जई व लोबिया आदि।
4. कम सिंचाई वाली फसले-चना, मटर, अरहर, बाजरा व कपास आदि।
5. सूखा सहन करने वाली फसले-ज्वार, ग्वार, बाजरा कपास व साँवा आदि।

**ग. मृदा समु व मृदा बनावट**

1. मटिपार भूमि की फसलें-धान, कपास, चना आदि।
2. दोमट भूमि की फसलें-सभी फसलें
3. दोमट बलुआर भूमियों की फसलेआलू, गाजर, शलजम, मूली, चुकन्दर व शकरकन्द आदि।
4. रेतीली भूमि की फसले-खरबुआ व तरबूज आदि
5. ऊसर भूमि की फसले-धान, चुकन्दर, कपास, जौ, बरसीन गोभी आदि।
6. अम्लीय भूमि की फसलें-बक-हीट, राई आदि।

**ब मृदा कटाव-** मृदा कटाव को रोकने के आधार पर फसलों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है।

1. मृदा कटाव को बढ़ाने वाली फसले-मक्का, सरसों, अरण्डी, अरहर आदि।
2. मृदा कटाव को रोकने वाली फसलें-मूंग, लोबिया, गेहूँ, व जौ आदि।

**फसल को प्रभावित करने वाले कारक:**

**जलवायु सम्बन्धी कारक .** जलवायु के मुख्य कारक तापक्रम वर्षा वायु एवं नमी है । यही कारक जलवायु को प्रभावित करते हैं जिससे फसल भी प्रभावित होता है । जलवायु के आधार पर फसलों को तीन वर्गो में मुख्य रूप से बांटा गया है जैसे. खरीफ रबी एवं जायद ।

**भूमि संबंधी कारक** भूमि संबंधी कारको में भूमि की किस्म मृदा उर्वरता मृदा प्रतिकिरया जल निकास मृदा की भौतिक दशा आदि आते हैं । ये सभी कारक फसल की उपज पर गहरा प्रभाव डालते हैं

**सिंचाई के साधन** सिंचाई जल की उपलब्धता के अनुसार ही फसल अपनाना चाहिए ।

**किसान की आर्थिक दशा** किसान के पास पूंजी एवं संसाधनों की कमी होने में ऐसी फसलों का समावेश किया जाना चाहिए।

**बाजार की मांग** बाजार की मांग के अनुरूप फसलें ली जानी चाहिए जैसे शहर के नजदीक वाली भूमिओं में साग-सब्जी वाली फसलों को प्राथमिकता देना चाहिए।

**प्रक्षेत्र से बाजार की दूरी** बाजार की मांग एवं व्यापारिक दृषिट से ली गयी फसलों के लिए यह आवश्यक है कि बाजार प्रक्षेत्र के पास होना चाहिए।

**श्रमिकों की उपलब्धता** कृषि में श्रमिकों का मुख्य कार्य होता है । यदि श्रमिक आसानी से व पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं तो सघन फसल अपनाया जा सकता है तथा नगदी फसलों को समावेशित लाभ लिया जा सकता है ।

**खेती का प्रकार** यदि खेती का मुख्य अंग पशु पालन है तो ऐसी जगह चारे वाली फसलें ली जायें किसान की घरेलू आवष्कताएं किसान को अपनी घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर फसल अपनाना चाहिए।

**सामाजिक रीति-रिवाज** फसलों के चुनाव पर सामाजिक विचारों का भी प्रभाव पड़ता है जैसे- प्याज लहसुन का सेवन न करने वाले किसान उन्हें उगाना नहीं चाहेंगे ।

**राजकीय नियंत्रण** तम्बाकू अफीम भांग आदि की खेती पर आबकारी कर लगता है और अधिकांष लाभांष सरकार को देना पड़ता है इस कारण इन फसलों को किसान अपने फसल-चक्र में नहीं लगाना चाहेंगे ।इस प्रकार प्रत्येक राज्य में वहा की जलवायु एवं भूमि परिसिथति के अनुसार अलग-अलग फसल अपना जा सकते हैं । जैविक खेती में भूमि की उर्वरता एवं खाध पदार्थो की शुद्धता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

## 2.8 सारांश

फसलों का वर्गीकरण विभिन्न आधार पर किया जा सकता पर है। ऋतुओं के आधार पर पौधो के जीवन चक्र, आर्थिक वर्गीकरण या सस्य वैज्ञानिक वर्गीकरणए वानस्पतिक वर्गीकरण कृषि महत्व का वर्गीकरणए विशेष उपयोग के आधार पर वर्गीकरण

## 2.9 बहु चयनात्मक प्रश्न

उत्तर

1. रबी फसल है।

(अ) चना (ब) अरहर (स) उडद (द) बाजरा (अ)

2. मृदा कटाव को रोकने वाली फसलें है।

(अ) मक्का, (ब) सरसों (स) अरण्डी, (द) मूंग (द)

3. सरसों परिवार वाली फसल नही है।

(अ) राई (ब) लाही, (स) तारामीरा (द) अरहर (द)

4. अन्तवर्ती फसलोत्पादन में मुख्य फसल की पंक्तियों के बीच जो फसल बोते है। उसे कहते है

(अ) सूचक फसले (ब) आधार फसल (स) निर्वाहक फसलें (द) घटक फसल (द)

5. नकदी फसल है

(अ) गन्ना (ब) आलू, (स) तम्बाकू व चाय, (द) सभी (द)

## 2.10 सर्दभ ग्रन्थ


1. अहलावत आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ
2. सिंह आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा ग्प्, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर: पेज 82-135.
3. Reddy, T.Y. and Reddy, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, kalyani Publishers, New Dehli. P. 110-154.
4. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 3

# मृदा संरचना, संगठन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 मृदा
3.3 मृदा स्वास्थ्य
3.4 मृदा निर्माण
3.5 मृदा संगठन
3.6 मृदा कणाकार या मृदा गठन
3.7 मृदा संरचना
3.8 मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता
3.9 राजस्थान की मुख्य मृदाऐं
3.10 सारांश
3.11 बहु चयनात्मक प्रश्न
3.12 सन्दर्भ सामग्री

## 3.0 उद्देश्य

मृदा एवं मृदा स्वास्थ्य क्या है। मृदा का निर्माण तथा इसको प्रभावित करने वाले कारको की जानकारी। कणाकार तथा संरचना के आधार पर मृदा का वर्गीकरण एवं फसल उत्पादन में महत्व। मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर तथा इनको प्रभावित करने वाले कारक। राजस्थान की मुख्य मृदाऐं तथा इनका वितरण एवं फसलोत्पादन में महत्व।

## 3.1 प्रस्तावना:

फसल उत्पादन में मृदा के महत्व को मनुष्य आदिकाल से जानता है। पौधों के लिए मृदा एक प्राकृतिक माध्यम है। पौधें अपने भोजन के अधिकांश पोषक तत्व, जल तथा वायु मृदा से प्राप्त करते हैं। पृथ्वी की ऊपरी सतह पर मृदा एक परत के रूप में होती है, जिसका निर्माण चट्टानों तथा खनिजों के अपक्षय से हुआ है। मृदा में पौधों के सभी आवश्यक तत्व पाये जाते हैं। सामान्य दशाओं के अन्तर्गत दो विभिन्न मृदायें कदापि एक समान गुण वाली नही होती है। उनके संगठन और कणाकार सदैव परिवर्तनशील होते हैं। मृदा छोटे-छोटे कणों के पारस्परिक संयोग से निर्मित हुई है। मृदा निर्माण करने वाले सभी कण समान आकार के न होकर छोटे, बडे व मध्यम आकार के होते हैं। मृदा में मुख्य रूप तीन प्रकार के कण वर्ग होते हैं - बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका। मृदा के कण और विशेषताएँ इन तीनों कण वर्गों के सापेक्ष अनुपात में निर्भर करती है। मृदा सरंचना के अन्तर्गत मृदा के प्राथमिक कणों तथा कण पुंजों की आकृति, व्यवस्था, आकार

तथा गुणों का अध्ययन किया जाता है। मृदा-वायु-जल प्रणाली के पारस्परिक संबंध को मृदा संरचना निर्धारित करती है, जबकि मृदा गठन जल और पौधे के बीच संबंध निर्धारित करने में महत्पूर्ण है। पैतृक पदार्थ, उत्पत्ति के कारकों एवं जलवायु में अन्तर होने के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों की मृदाओं में बहुत अन्तर पाया जाता है।

## 3.2 मृदा:

अनेक वैज्ञानिकों ने मृदा की परिभाषा अलग-अलग प्रकार से की है। उनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है।

वैज्ञानिक रमन (1971) के अनुसार ''मृदा, पृथ्वी की सबसे ऊपर वाली अपक्षयित ठोस पपड़ी की परत है, जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे-छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी हैं।''

बकमैन और ब्रैडी (1974) के अनुसार ''मृदा वह प्राकृतिक पिण्ड है, जो विच्छेदित तथा अवक्षयित खनिज और जीवांश पदार्थों से बने विभिन्न पदार्थों से बने विभिन्न पदार्थों के परिवर्तनशील मिश्रण से परिच्छेदिका के रूप में संश्लेषित होती है। यह पृथ्वी को एक पतले आवरण के रूप में ढकती है तथा जल और वायु की उपयुक्त मात्रा मिलने पर पौधों को यांत्रिक आधार तथा आंशिक जीविका प्रदान करती है।''

## 3.3 मृदा स्वास्थ्य:

मृदा परीक्षण के द्वारा उर्वरता का मूल्यांकन एवं समस्या का आंकलन करना ही मृदा स्वास्थ्य का पर्याय है। मृदा स्वास्थ्य एक ऐसी अवस्था है जिसमें सुक्ष्म जीवों के फ्लोरा एवं फोना गतिशील साम्यावस्था में रहते है और चारों ओर मृदा वातावरण से आच्छादित होकर उपापच्य क्रियाओं को बिना किसी बाधा, तनाव या रूकावट आदि से कार्य करते रहते है। कई बार इस अवस्था को मृदा स्वास्थ्य, मृदा उत्पादकता एवं मृदा वातावरण के नाम से भी व्याख्या करते है। मृदा स्वास्थ्य को किसानों के द्वारा जबकि मृदा गुणवत्ता को वैज्ञानिकों के द्वारा इंगित किया जाता है।

## 3.4 मृदा निर्माण:

पृथ्वी की ऊपरी सतह पर मृदा एक परत के रूप में होती है, जिसका निर्माण चट्टानों तथा खनिजों के अपक्षय से हुआ है। मृदा में पौधों के सभी आवश्यक तत्व पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में अनेक प्रकार के जीवाणु उपस्थित रहते हैं, जो मरणोपरान्त मृदा में मिल जाते हैं। इन जीव अवशेषों से मृदा को जीवांश पदार्थ की प्राप्ति होती है।

**मृदा निर्माण की प्रावस्थाऐ:**

मृदा जिस पर कि फसलें उगती है, इसका उद्भव निम्नलिखित दो प्रावस्थाओं में हुआ है-

### 3.1.1 प्रथम प्रावस्था

### 3.1.2 द्वितीय प्रावस्था

प्रथम प्रावस्था में चट्टानों और खनिजों के अपक्षय के परिणामस्वरूप मूल पदार्थ का निमार्ण हुआ है तथा द्वितीय प्रावस्था में निर्मित मूल पदार्थ पर मृदा निर्माण करने वाले सक्रिय (जलवायु, जैव मण्डल) निष्क्रिय, (उच्चावच, मूल पदार्थ) और उदासीन (कालावधि) कारकों की अविराम प्रक्रिया के फलस्वरूप मृदा निर्माण हुआ है।

मृदा निर्माण के समस्त प्रक्रमों को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

चटानों तथा खनिज —अपक्षय द्वारा→ मूल पदार्थ —मृदा निर्माण के प्रक्रमों द्वारा→ मृदा

**मृदा निर्माण को प्रभावित कारने वाले कारक:**

चट्टानों और खजिनों के अपक्षय के परिणामस्वरूप मूल पदार्थ का निर्माण होता है। मूल पदार्थ पर वर्षा, जीव-जन्तु, उच्चावन तथा समयावधि के साथ-साथ अनेकानेक पारस्परिक परिवर्तनों के फलस्वरूप मृदा निर्माण हुआ है। चट्टानों का अपक्षय और मृदा निर्माण दोनों ही प्रक्रियायें निरन्तर साथ-साथ होती रहती है। चट्टानों का अपक्षय विध्वंसात्मक और मृदा निर्माण सृजनात्मक प्रक्रिया है। इन प्रक्रियाओं के फलतः मृदा परिच्छेदिका का विकास होता है। प्रत्येक स्थान पर जलवायु, जैव-मण्डल, मूल पदार्थ, उच्चावच या तलरूपता और समयावधि एक साथ सामूहिक क्रिया-कलाप करके मृदा निर्माण करते हैं। अतः ये मृदा निर्माण के कारक कहे जाते हैं।

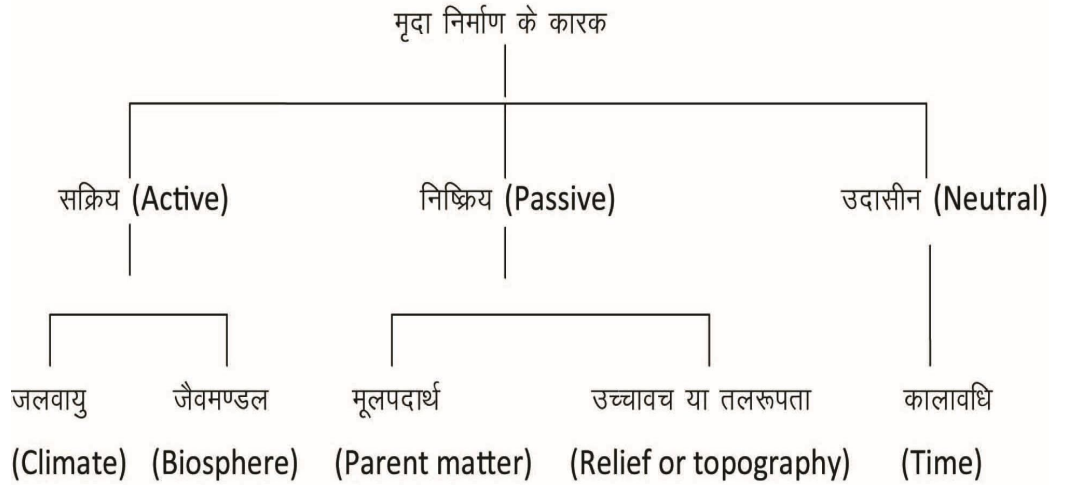


## 3.5 मृदा संगठन:

सामान्य दशाओं के अन्तर्गत दो विभिन्न मृदायें कदापि एक समान गुण वाली नहीं होती है। उनके संगठन और कणाकार सदैव परिवर्तनशील होते हैं। जिस प्रकार द्रव्य की तीन अवस्थायें होती है, ठीक उसी प्रकार 'मृदा' में भी ठोस, द्रव्य और गैस तीन अवस्थायें विद्यमान हैं। पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने की दृष्टि से केवल ठोस एवं द्रव प्रावस्थायें ही महत्वपूर्ण हैं। खनिज मृदा में चार मुख्य अवयव पाये जाते हैं, जो अग्रलिखित हैं -

1. खनिज पदार्थ (Mineral matter) – 45 प्रतिशत
2. जीवांश पदार्थ (Organic matter) – 5 प्रतिशत
3. मृदा जल (Soil water) – 25 प्रतिशत
4. मृदा वायु (Soil air) – 25 प्रतिशत

**खनिज मृदा का आयतनात्मक संगठन:**

मृदा में उपर्युक्त चारों अवयव महीन दशा में पाये जाते हैं। पारस्परिक घनिष्ठता के साथ मिश्रित होने के कारण इन्हें सरलतापूर्वक पृथक् करना कठिन होता है। सिल्ट दुमट मृदा का आयतन की दृष्टि से संगठन चित्र में दर्शाया गया है।

जैसा कि चित्र में स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत रिक्त स्थान में जल और वायु भरी हुई होती है। सामान्यतः सिल्ट मृदा में पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त आर्द्रता पर आधे में अर्थात 25 प्रतिशत में जल और 25 प्रतिशत में वायु भरी हुई होती है। जल और वायु के अनुपात में मौसम तथा अन्य कारकों के कारण सामान्य दशाओं के अन्तर्गत परिवर्तन होता रहता है।

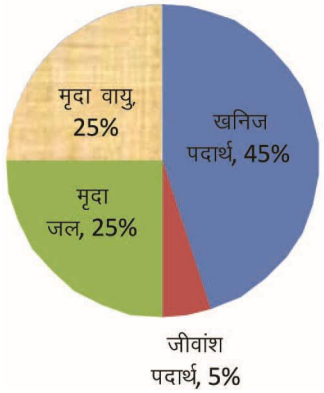


सामान्य मृदा में ये चारों अवयव परस्पर मिश्रित दशा में होते हैं। इस प्रकार अवयवों के पारस्परिक मिश्रित होने के कारण साधारण और जटिल क्रियायें स्वयं पृथक-पृथक अवयवों और एक दूसरे में होती रहती है, जिससे कि पौधों की वृद्धि के लिए एक अनुकूल वातावरण मिलता है। प्रायः इन अवयवों का संगठन अव-मुद्रा में ऊपरी मृदा से भिन्न होता है। अवमृदा में जीवांश पदार्थ ऊपरी मृदा की अपेक्षाकृत कम होता है, तथा यह ठोस होती है। इस अव-मृदा में छोटे-छोटे रन्ध्रावकाशों की प्रतिशतता भी अधिक होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें खनिज पदार्थ और जल की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है तथा जीवांश पदार्थ और वायु की मात्रा कम होती है।

**मृदा के विभिन्न अवयवों का वर्णन:**

खनिज पदार्थ:- मृदा का यह अकार्बनिक अवयव है तथा मृदा का परीक्षण करने पर पता चलता है कि यह अकार्बनिक भाग विभिन्न आकार और संगठन का होता है। सामान्यतः यह चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़ों व अनेक प्रकार के खनिजों से निर्मित होता है। अपघटन और विघटन के फलस्वरूप बड़ी-बड़ी चट्टानें टूटकर महीन-महीन टुकड़ों में विभाजित हो जाती हैं और अपक्षय द्वारा मृदा परिच्छेदिका तथा अन्त में मृदा का निर्माण करती है।

मृदा को खनिज पदार्थ चट्ानों के अपक्षय से प्राप्त होते हैं। इनमें अंशतः पूर्व अपक्षयित पदार्थ जैसे-स्वतंत्र सिलिका, एल्यूमिनोसिलीकेट्स तथा विभिन्न लवण और अंशतः बिना अपक्षयित पदार्थ, जैसे मूल चट्टान के कण और क्वार्टज, अभ्रक, इत्यादि खनिज होते हैं। एल्युमिनो-सिलीकेट्स स्वतंत्र सिलिका सहित लोहे, एल्यूमीनियम, मैंगनीज, टाइटेनियम इत्यादि के ऑक्साइड्स तथा अविलेय लवण जैसे-कैल्शियम तथा मैग्नेशियम कार्बोनेट्स इत्यादि अविलेय खनिज पदार्थ का निर्माण करते हैं। अतः ये मृदा के प्रमुख स्थूल भाग के निर्माता कहे जाते हैं। क्षार और क्षारीय भूमि के विलेय लवण, विलेय खनिज पदार्थ का निर्माण करते हैं तथा मृदा के छोटे से भाग के निर्माता होते हैं अविलेय खनिज पदार्थ को कणों के आकार के आधार पर चार प्रमुख समूह में विभक्त किया जाता है - (1) कंकण (2) बालू (3) सिल्ट तथा (4) मृत्तिका।

**जीवांश पदार्थ:-** मृदा निर्माण के प्रक्रम में अपक्षय के फलस्वरूप जो पदार्थ बना, उसने पौधों की वृद्धि के लिये उपयुक्त माध्यम प्रदान किया। इस पर पौधों के जीवन का श्रीगणेश हुआ। वनस्पति जो उत्पन्न हुई उसने मृदा अपक्षय में पर्याप्त योगदान दिया। पौधों एवं जन्तुओं ने इस पदार्थ पर अपनी वृद्धि की विभिन्न प्रावस्थायें पूर्ण की और जीवन-चक्र पूर्ण करने के पश्चात् मृदा खनिज में अनेक छोटे और बड़े पौधों एवं जीव-जन्तुओं के मृत शरीर मिल गये तथा अपक्षय के फलस्वरूप मृदा में परिणित हो गये। अतः पादप, जीवन-जन्तुओं के अवशिष्ट पदार्थों से मृदा को जीवांश की प्राप्ति होती है।

मृदा जीवांश पदार्थ में पौधों एवं जन्तुओं के अवशिष्ट, अंशतः अपघटित तथा अंशतः विघटित अवस्था में विद्यमान होते है। यह पदार्थ मृदा सूक्ष्म जीवों की प्रक्रिया के फलस्वरूप छोटे-छोटे अंशों में अपघटित होते रहते हैं। भारात्मक दृष्टि से ऊपरी मृदा परत में जीवांश पदार्थ की मात्रा 3 से 5 प्रतिशत तक होती है। जिन मुद्राओं में 20 प्रतिशत से अधिक जीवांश पदार्थ होता है, वे कार्बनिक मृदायें तथा जिनमें 20 प्रतिशत से कम जीवांश पदार्थ होता है, वे खनिज मृदायें कहलाती है। जीवांश पदार्थ मृदा के गुणों और अनन्तः पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है। यह नाइट्रोजन, ऑस्फोरस और पोटाश का प्रमुख स्त्रोत है तथा मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि करता है। मृदा जीवांश पदार्थ सामान्यतः दो समूहों (1) मूल ऊत्तक और (2) ह्यूमस का होता है।

**मृदा जल:-** पौधों की वृद्धि अन्य कारकों के साथ-साथ मृदा जल की उपस्थिति पर निर्भर करती है पौधों की वृद्धि के लिये जल एक विलायक का कार्य करता है, तथा पोषक तत्वों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में सहायक होता है। उपलब्ध मात्रा के अनुसार रन्ध्रावकासों में जल विभिन्न बलों की आंशिकता से धारित होता है। जल, मृदा में उपस्थित अनेक लवणों को घोलकर मृदा विलयन बनाता है, जो कि वृद्धि करते हुए पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने का मुख्य माध्यम है। एक किलोग्राम शुष्क पदार्थ उत्पन्न करने के लिये पौधों को 200 से 1000 किलोग्राम जल की आवश्यकता होती है। मृदा में जल रन्ध्रावकोशों में भरा रहता है। जल जब पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के काम आ जाता है तो मृदा जल और मृदा में इसके स्थान पर वायु

प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार मृदा वायु की मात्रा परस्पर परिवर्तनशील होती रहती है। जब पौधे मृदा विलयन में से पोषक तत्वों को उद्ग्रहीत करते हैं तो जीवांश तथा खनिज पदार्थों से पोषक तत्वों का विनिमय मृदा विलयन से होता रहता है। मृदा को वर्षा, बर्फ, ओस अथवा सिंचाई द्वारा जल की प्राप्ति होती है।

**मृदा वायु:-** मृदा वायु में वायुमण्डलीय वायु की अपेक्षा कार्बन डाई ऑक्साइड एवं जल वाष्प की मात्रा अधिक और ऑक्सीजन की कमी होती है। ऑक्सीजन और कार्बन डाइ ऑक्साइड की प्रतिशतता का योग मृदा में वायुमण्डलीय वायु के बराबर होता है। अच्छी वातन-युक्त पृष्ठीय सतह की मृदा में ऑक्सीजन की मात्रा 18 से 21 प्रतिशत तक होती है। गहराई पर तथा अधिक समय तक आर्द्र रहने वाली मृदाओं में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी पाई जाती है। मृदा वायु में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्र 0.2 से 5 प्रतिशत तक होती है। मृदा वायु के संगठन में जल्दी-जल्दी उतार चढ़ाव होते रहते हैं इन परिवर्तनों के फलस्वरूप जड़ें एवं सूक्ष्म जीव, ऑक्सीजन को कार्बन डाई ऑक्साइड में परिवर्तित कर देते हैं तथा वायुमण्डल में मृदा का नवीनीकरण हो जाता है।

## 3.6 मृदा कणाकार या मृदा गठन:

**परिभाषा:** मृदा छोटे-छोटे कणों के पारस्परिक संयोग से निर्मित हुई है। मृदा निर्माण करने वाले सभी कण समान आकार के न होकर छोटे, बडे व मध्यम आकार के होते हैं। ये विभिन्न प्रकार के कण कंकड़, बालू, सिल्ट और मृत्तिका के होते हैं। बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका के कणों के आकार के सापेक्ष अनुपात को जिसके परिणामस्वरूप मृदा में मोटापन अथवा महीनता होती है, मृदा कणाकार या मृदा गठन कहते हैं।

सामान्य मृदा में पाये जाने वाले ठोस पदार्थ जिनका व्यास 20 मि.मी. से अधिक होता है, उन्हें पत्थर कहते हैं। 20 मि.मी. से 2 मि.मी. तक व्यास वाले ठोस कणों को कंकड़ अथवा बजरी कहते हैं। 2 मि.मी. से कम व्यास वाले पदार्थों को महीन मिट्टी की संज्ञा दी जाती है, जिसमें बालू, सिल्ट और मृत्तिका सम्मिलित है। मृदा में उपस्थित खनिज कणों (2 मि.मी. से 0.002 मि.मी. से कम तक ) को उनके आकार के अनुसार विभिन्न वर्गों जैसे- बालू, सिल्ट व मृत्तिका में बांटा गया है, जिन्हें मृदा कण-वर्ग कहते हैं।

**मृदा कणों के आकार के आधार पर मृदा वर्गीकरण:**

सर्वप्रथम मृदा के कणों का वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है, कि वे कण 2 मि.मी. से बडे अथवा छोटे आकार के हैं। 2 मि.मी. से बड़े कणों को मोटे टुकड़े कहते हैं। 2 मि.मी. से छोटे कण वर्ग को पुनः दो निम्नलिखित पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत किया जाता है -

i. अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति (The international Classification)

ii. यू.एस.डी.ए. पद्धति (The USDA Classification)

इन पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत कणों के आकारों के व्यास और नाम सारणी 1.0 में दर्शाये गये हैं। तथा इनके अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस मृदा में मुख्य रूप तीन प्रकार के कण वर्ग

होते हैं - बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका। बालू के कण सबसे बड़े, मृत्तिका के सबसे छोटे तथा सिल्ट के मध्यम आकार के होते हैं।

**सारणी 1.0 मृदा कण वर्ग:**

| **अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति** | | **यू.एस.डी.ए. पद्धति** | |
|---|---|---|---|
| कण का व्यास (मि.मी. में) | कण का नाम | कण का व्यास(मि.मी. में) | कण का नाम |
| 2.0 - 0.20 | मोटी बालू रेत | 2.0 - 1.0 | बहुत मोटी बालू |
| 0.20 - 0.02 | महीन बालू | 1.0 - 0.5 | मोटी बालू |
| 0.02 - 0.002 | सिल्ट | 0.5 - 0.25 | मध्यम बालू |
| 0.002 - से कम | मृत्तिका | 0.25 - 0.10 | महीन बालू |
| | | 0.10 - 0.05 | बहुत महीन बालू |
| | | 0.05 - 0.002 | सिल्ट |
| | | 0.002- 0.0005 | मृत्तिका |
| | | 0.0005 - से कम | कलिल (कोलॉइड |

**Source: Anonymous** (1933) "The International Pipette Method of Mechanical Analysis", Imperial Bureau of Soil Science: Technical Communication No. 26

मृदा में मुख्य रूप तीन प्रकार के कण वर्ग होते हैं - बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका। मृदा के कण और विशेषताएँ इन तीनों कण वर्गों के सापेक्ष अनुपात में निर्भर करती है जिनका कि वर्णन निम्नलिखित है -

i. **बालू** - बालू के कणों में पृष्ठीय क्रियाशीलता बहुत ही कम होती है। अतः बालू मृदा के रासायनिक तथा भौतिक गुणों में किसी भी प्रकार का योगदान नहीं देता है। बालू के कण जब मृदा में लगभग 40 प्रतिशत होते हैं, तो मृदा भुरभुरी और खुली हुई रहती है। इससे जल निकास में सुविधा रहती है तथा जल एवं वायु संचार को प्रोत्साहन मिलता है। अत्याधिक मात्रा में बालू होने पर मृदाओं में वाष्पन तथा अन्तः स्त्रवण (रिसाव) में वृद्धि होती है। 40 प्रतिशत से अधिक बालू वाली मृदा में जल रोकने की क्षमता बहुत ही कम होती है। इस प्रकार की मृदायें सूखा सहन नहीं कर सकती है तथा ये शुष्क खेती के अयोग्य होती है। इन्हें खेती के योग्य बनाने के लिए इनमें जीवांश पदार्थ डालना आवश्यक हो जाता है।

ii. **सिल्ट -** सिल्ट में बालू की अपेक्षा पृष्ठीय क्रियाशीलता अधिक होती है। मृदा के गुणों विशेषतः अधिशोषण में सिल्ट थोड़ा योगदान देती है। सिल्ट, मृदा का मूल्यवान अवयव हैं। अच्छी दुमट मृदाओं में 30 से 40 प्रतिशत सिल्ट होती है। 20 प्रतिशत से अधिक महीन सिल्ट वाली

मृदाओं में कृषि कार्य करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की मृदाओं में जल निकास अच्छा नहीं रहता है, अतः वे सिंचित खेती के अयोग्य होती है। बालू और सिल्ट की क्रियाशीलता कम होने के कारण इन्हें मृदा का ढाँचा कहा जाता है।

iii. **मृत्तिका:-** मृत्तिका के कण अत्याधिक क्रियाशील होते हैं, जो कि मृदा के भौतिक और रासायनिक गुणों में काफी योगदान देते हैं। मृत्तिका के कण मृदा उर्वरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मृत्तिका की समुचित मात्रा अधिक मृदा उर्वरता बनाये रखने में सहायक होती है। मृत्तिका की मृदा में अधिक मात्रा होने से लाभ के स्थान पर हानि अधिक होती है। शुष्क खेती के लिये मृत्तिका का 40 से 50 प्रतिशत अनुपात वाँछनीय है। इस प्रकार की मृदायें सूखा की दशाओं को अधिक समय तक सहन कर सकती है। 50 प्रतिशत से अधिक मृत्तिका वाली मृदायें सिंचित खेती के अयोग्य समझी जाती है। इनमें कणों के सटे हुए रहने के कारण ये फूल जाती है। और जल एवं वायु संचार में अवरोध हो जाता है। ऐसी मृदायें शीघ्र जलाक्रान्त हो जाती है। शीत ऋतु में ये मृदायें ठण्डी और चिपचिपी रहती है। तथा ग्रीष्म ऋतु में सिकुडकर टूट जाती है।

**मृदा गठन या मृदा कणाकार का महत्व:-** मृदा कणाकार मृदा का महत्वपूर्ण गुण है। जल अवशोषण, मृदा में जल संग्रह, मृदा की सरलापूर्वक जुताई, जड़ों की वृद्धि हेतु वातन (वायु) और मृदा उर्वरता को मृदा गठन प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ - मोटी बालू में मृदा की जुताई सरलतापूर्वक हो जाती है तथा जड़ों की वृद्धि हेतु उसमें पर्याप्त वातन विद्यमान होता है। और मृदा सरलतापूर्वक गीली हो जाती है। यह मृदा बहुत शीघ्र ही सूख जाती है। और पौधों के पोषक तत्व इसमें से जल के साथ बहकर सरलतापूर्वक नष्ट हो जाते है। ऐसी भारी मृत्तिका मृदाओं के मृदा कण बहुत ही महीन होते हैं, जिनमें कि 30 प्रतिशत से अधिक मृत्तिका होती है। ये कण परस्पर सटे हुए होते हैं, और इनमें रंध्रावकाश बहुत कम होता है, जिसके कारण कि मृदा में जल प्रवाह होने की बहुत कम सम्भावना रह जाती है। इस प्रकार की भारी मृत्तिका मृदायें सरलता से आर्द्र (नम) नहीं हो पाती है और कठिनता से इनमें जल निकास सम्भव हो पाता है। तथा इनकी जुताई करने में भी काफी परेशानी आती है।

## 3.7 मृदा संरचना:

**परिभाषा:** मृदा में उपस्थित बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका के कणों को प्राथमिक कण कहते हैं। प्राकृतिक रूप से संयुक्त होकर प्राथमिक कण एक प्राथमिक समुच्चय अथवा पैड का निर्माण करते हैं। यह पैड़, ढेले से भिन्न प्रकार का होता है। कृत्रिम साधनों द्वारा जुताई करने से जब चिपका हुआ मृदा पुंज टूट कर किसी भी प्रकार की आकृति धारण कर लेता है, तो इसे ढेला कहते हैं। अधिक आर्द्र दशा में मृत्तिका की जुताई कर देने पर प्रायः ढेले बन जाते हैं दो या दो से अधिक पेड्स या कण पुंज या कण समूह पुनः संयुक्त होकर द्वितीयक समुच्चय या द्वितीयक कण या यौगिक कण बनाते हैं। पारस्परिक संयोजन पदार्थ प्रायः लोहे व एल्यूमीनियम के हाइड्रॉक्साइड्स, कलिलीय मृत्तिका और अपघटित जीवांश पदार्थ होते हैं। मृदा में प्राथमिक एवं द्वितीयक, कण

अनेक प्रकार से व्यवस्थित होते हैं। ये मृदा के कणों को एक विशेष आकार प्रदान करते हैं। इन समुच्चयों (प्राथमिक और द्वितीयक समुच्चय) को मृदा संरचना की संज्ञा दी जाती है।

मृदा संरचना को मृदा-पुंज का सबसे अधिक महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। यह मृदा की आर्द्रता, वायु, तापमान, पारगम्यता और जल-धारण क्षमता को प्राभावित करती है। मृदा संरचना, जल-मृदा-वायु के बीच संबंध स्थापित करती है। मृदा में जल और वायु की मात्रा पर यह नियंन्त्रण रखती है, जिससे कि पौधे मृदा से पोषक तत्वों का अवशोषण करके अच्छी वृद्धि करते हैं।

**मृदा संरचना के प्रकार या रूप :**

मृदा सरंचना के अन्तर्गत मृदा के प्राथमिक कणों तथा कण पुंजों की आकृति, व्यवस्था, आकार तथा गुणों का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न प्रकार की मृदा संरचनाओं को चित्र में दर्शाया गया है। मृदा वैज्ञानिकों ने मृदा संरचना को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। वर्गीकरण की सभी प्रणालियों में निम्नलिखित चार प्रमुख प्रकार है -

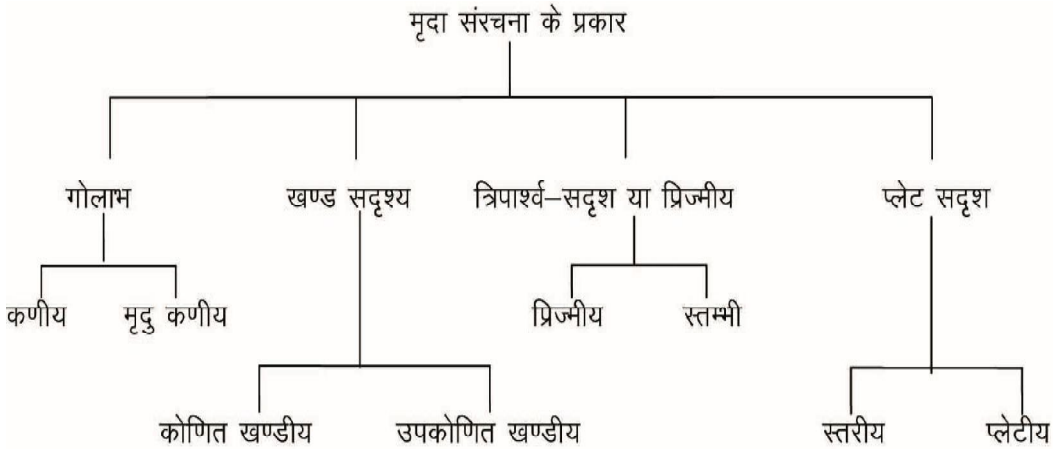


**8.2.1 गोलाभ:-** इस प्रकार की सरंचना में सभी पैड्स (कण पुंज) गोलाकार रूप धारण कर लेते हैं। कण पुंजों के फलक वक्रित और अनियमित होते हैं। सभी अक्ष समान लम्बाई के होते है। गौलाभ सरंचना को उनकी सरन्ध्रता के आधार पर दो प्रकार से विभाजित किया जाता है-

i. **मृदु कणीय:** इसके पैड्स अपेक्षाकृत अधिक रन्ध्रयुक्त होते हैं द्वितीय कण रन्ध्रीय होने के कारण सरलता से कूटे जा सकते हैं। इसके पैड्स का आकार 1-5 मि.मी. होता है।

ii. **कणीय:** इसके पैड्स अपेक्षाकृत कम रन्ध्रीय होते हैं यह संरचना उपजाऊ मृदाओं में पाई जाती है, जिनमें कि जीवांश पदार्थ की अधिक मात्रा होती है। कणीय संरचना अनेक प्राथिमिक कणों से निर्मित होती है। तथा इनके पैड्स का आकार 1-10 मि.मी. होता है।

**खण्ड सदृश:-** इस प्रकार की सरंचना में पैड्स लम्बाई, चैड़ाई और मोटाई (ऊँचाई) तीनों अक्षों में समान अर्थात द्यन आकृति में व्यवस्थित होते हैं तथा लगभग छः पृष्ठों और आठ कोनों का एक खण्डीय रूप धारण कर लेते हैं। खण्ड-सदृश्य संरचना को उनके कोनो की रंचना एवं दृढ़ता के आधार पर दो प्रकार से विभाजित किया जाता है -

i. **कोणित खण्डीय:** कोणित खण्डीय संरचना में पैड्स के फलक चपटे, कोन व भुजायें समुचित विकसित एवं तेज कोणीय होते हैं। इस प्रकार की संरचना अवमृदा में पाई जाती है तथा पैड्स का आकार 5-50 मि.मी. होता है।

ii. **उपकोणित खण्डीय:** इस प्रकार की सरंचना में कोन तथा भुजायें टूट-फूट कर घिस जाती है और खण्ड थोड़ा सा मिश्रित गोलाकार रूप धारण कर लेता है। अवमृदा में इस प्रकार की सरंचना का विकास मृदा वातन, जल निकास और पौधों की जड़ो के प्रवेश पर निर्भर करता है।

**त्रिपार्श्व सदृश या प्रिज्मीय:-** इस प्रकार की संरचना में पैड्स की ऊर्ध्वाधर अक्ष दो क्षैतिज अक्षों की अपेक्षा लम्बी विकसित होती है। सामान्यतः यह संरचना शुष्क एवं अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों की अवमृदाओं के संस्तरों से मिलती है। ऊर्ध्वाधर भुजा तेज, किनारे चपटे और चमकदार पृष्ठों वाली होती है। यह संरचना भी दो प्रकार की होती है -

i. **प्रिज्मीय:** प्रिज्मीय प्रकार की संरचना में प्रिज्म के शीर्ष गोलाकार न होकर चैरस समतल और भुजायें तीव्र धार वाली होती है। इसके पैड्स का आकार 10-100 मि.मी. तक होता है।

ii. **स्तम्भी :** स्तम्भी प्रकार की संरचना में पैड्स अर्थात् कण पुँजों के शीर्ष तथा किनारे गोल टोपीनुमा आकार के होते हैं। मृदा परिच्छेदिका के परिवर्तनशील होने और उसके कुछ संस्तरों के अपघटित होने की दशा में यह संरचना विकसित होती है। इसके पैड्स के आकार भी 10-100 मि.मी. होता है।

**प्लेट सदृश्य:-** इस प्रकार की संरचना में पैड्स की ऊध्वाधर अक्ष की अपेक्षा क्षैतिज अक्ष अधिक विकसित होते है। पैडस प्लेट के सदृश्य होते है और एक ऊपर दुसरे को ढके हुए रहते है। इस प्रकार की संरचना से मृदा पारगम्यता में ह्रास होता है। मृदा परिच्छेदिका के किसी भी भाग में यह संरचना पाई जा सकती है। कण पुँजों की मोटाई के आधार पर इस संरचना को पुनः दो प्रकारों से विभाजित किया जाता है -

i. **स्तरीय:** स्तरीय संरचना के पैड्स की मोटाई बहुत कम अर्थात 1-2 मि.मी. तक होती है। यह चिपकी हुई पतली संरचनाहीन जैसी होती है।

ii. **प्लेंटीय:** इस प्रकार की संरचना में पैड्स की मोटाई संरचना से अधिक अर्थात 2-10 मि.मी तक होती है।

**मृदा संरचना का महत्व:**

मृदा के कण, मृदा पुंज (संहति) में किस-किस प्रकार से लगे हुए अर्थात् व्यवस्थापित है, इस व्यवस्था का बोध मृदा संरचना से होता है। मृदा-वायु-जल प्रणाली के पारस्परिक संबंध को मृदा संरचना अत्याधिक निर्धारित करती है, जबकि मृदा गठन जल और पौधे के बीच संबंध निर्धारित करने में अत्याधिक महत्पूर्ण है। मृदा संरचना मृदा में उपस्थित जल और वायु पर नियन्त्रण रखती है तथा मृदा के बहुत से गुणों को प्रभावित करती है। मृदा संरचना का जल की अन्तः स्त्रवण दर पर प्रभाव पड़ता है। जल की अन्तःस्त्रवण दर कणीय गोलाभ एवं सकल कणीय संरचनाहीन मृदाओं में जल तेज, प्रिज्मीय एवं खण्ड सदृश संरचनाओं वाली मृदाओं में मध्यम और संपुजित एवं प्लेट सदृश संरचना वाली मृदाओं में मन्द होती है।

श्वसन हेतु पौधों की जड़ों और अंकुरित बीजों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता जल और वायु की पूर्ति पर निर्भर करती है। मृदा में पर्याप्त जलपूर्ति होने की दशा में पौधे पोषक तत्वों का उपयोग करने में सक्षम होते हैं वायु की प्रतिबन्धित पूर्ति होने पर नाइट्रीकरण की प्रक्रिया में अवरोध आ जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा संरचना जल और वायु की मात्रा पर ही अवलम्बित नहीं होती, अपितु इनकी गतिशीलता और संचालन को भी नियन्त्रित करती है। फसलों की अच्छी वृद्धि और उपज प्राप्त करने के लिए मृदा में यथेष्ठ मात्रा में पोषक तत्वों की उपस्थिति पर्याप्त नहीं होती, अपितु समुचित मृदा संरचना द्वारा वायु-जल-पोषक तत्व सम्बन्ध स्थापित करना भी आवश्यक होता है।

मृदा की जुताई और दूसरी कर्षण क्रियायें मृदा संरचना पर निर्भर करती है। फसलोत्पादन के दृष्टिकोण से संरन्ध्र संरचना वाली मृदायें उत्तम समझी जाती है, लेकिन संरक्षण संरचनाओं एवं अपरदन नियन्त्रण की दृष्टि से अत्याधिक ढीली संरचनाएं उपयुक्त नहीं होती है। अतः संरचना अपरदन को नियन्त्रित करती है और अपवाह तथा अन्त में अपरदन की सीमा को निर्धारित करने में महत्पूर्ण भूमिका प्रदान करती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मृदा संरचना जल तथा वायु के स्तर मुख्यतः आर्द्रता क्षमता, अन्तः स्त्रवण, वातन सरन्ध्रता, ऊष्मा स्थानान्तरण और मृदा अपरदन को प्रभावित एवं नियन्त्रित करती है।

## 3.8 मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता:

उपजाऊ भूमि के लिए आवश्यक तत्वों के साथ-साथ भूमि की भौतिक दशा, जल एवं वायु का अनुपात, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा उपयुक्त तापक्रम का होना भी आवश्यक है। सामान्यतया उपजाऊ मृदायें उत्पादक होनी चाहिए किन्तु यह तथ्य सभी दशाओं में सत्य नहीं है। मौसम की प्रतिकूल दशाओं जैसे-ओले, पाला, तूफान तथा कीट-बीमारियों आदि द्वारा फसल नष्ट हो जाए तो भूमि उपजाऊ होते हुए भी उत्पादक नहीं कहलाएगी।

**मृदा उर्वरता:**

पादप वृद्धि के लिए अनुकूल दशाओं में मृदा के आवश्यक पोषक तत्वों को प्राप्य रूप, उचित मात्रा तथा उपयुक्त सन्तुलन में प्रदान करने की क्षमता को मृदा उर्वरता कहते हैं। दूसरे शब्दों में, ''पौधों की वृद्धि के लिए मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक शक्ति के योग को मृदा उर्वरता कहते हैं''।

**मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक:**

**(अ) प्राकृतिक कारक:** ये वे कारक है जो मृदा निर्माण को प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्नलिखित है -

i. **पैतृक पदार्थ:**- मृदा की उर्वरता पैतृक पदार्थ पर निर्भर करती है। यदि पैतृक पदार्थ में पौधों के पोषक तत्व अधिक हैं तो उनसे निर्मित मृदायें प्रायः उपजाऊ होती है। अम्लीय आग्नेय चट्टानों और बालू पत्थर के अपक्षय द्वारा बलुई मृदाओं का निर्माण होता है। इनमें क्षार की मात्रा कम पायी जाती है। इन मृदाओं की उर्वरता अपेक्षाकृत कम होती है। क्षारीय और अवसादी

चट्टानों के अपक्षय से भारी मृदाओं का निर्माण होता है, जिनमें क्षार की मात्रा अधिक पायी जाती है और इन मृदाओं की उर्वरता भी अधिक होती है।

ii. **स्लाकृति:-** ढालू पहाड़ी क्षेत्रों की मृदा अपक्षालन एवं मृदा क्षरण के कारण कम उपजाऊ होती है। निचले भागों की मृदा में ऊँचे स्थानों की मृदाओं के पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थ पानी के साथ बहकर एकत्रित हो जाते हैं, इसलिए ये मृदायें अधिक उपजाऊ होती है। इस प्रकार पहाड़ी प्रदेशों एवं अन्य ऊँचे-नीचे स्थानों की मृदा उर्वरता मैदानी एवं समतल भूमि की अपेक्षा कम होती है।

iii. **मृदा आयु:-** मृदा आयु के साथ मृदा उर्वरता में कमी आ जाती है। पुरानी मृदाओं में अधिक अपक्षय, लगातार फसलों के उगाने, मृदा क्षरण एवं अपक्षालन के कारण उनकी उर्वरता नवनिर्मित मृदाओं की अपेक्षा कम होती है।

iv. **जलवायु:-** अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अपक्षालन क्रिया द्वारा अधिकांश घुलनशील पोषक तत्व निचले संस्तों में चले जाते हैं, जिससे मृदा की ऊपरी सतह की उर्वरता कम हो जाती है। इस प्रकार कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भूमि के क्षारीय होने का भय रहता है। अधिक तापक्रम मृदा के कार्बनिक पदार्थ का विघटन शीघ्रता एवं सरलता से कर देता है, जिससे इन क्षेत्रों की मृदा उर्वरता कम हो जाती है। अधिक तेज व शुष्क वायु के कारण भी मृदा क्षरण होता है, जिससे मृदा की उपजाऊ क्षमता घट जाती है।

v. **मृदा प्रोफाइल की गहराई:-** गहरी मृदा उथली मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। गहरी मृदाओं में पौधों की जड़ें अधिक गहराई तक जाकर अच्छी प्रकार फैल जाती है और अधिक मात्रा में जल व पोषक तत्व अवशोषण कर सकती है। उथली मृदाओं में सूखे की स्थिति में पौधे पानी की कमी महसूस करने लग जाते हैं। जिससे पौधों की वृद्धि उचित रूप में नहीं हो पाती है।

vi. **मृदा की भौतिक दशा:-** मृदा की भौतिक दशा अच्छी होने पर उसकी जल धारण क्षमता, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा जीवांश पदार्थों की सड़न बढ़ जाती है। एवं जड़ों का विकास अच्छा होता है। बलुई मृदाओं में रंध्राकाश बड़े होते है जिससे जल के साथ पोषक तत्व बडी शीद्ग्रता से नीचे की ओर चले जाते है। इस कारण इन मृदाओं की उर्वरता कम हो जाती है। इसके विपरीत बारीक कणों वाली मृदाओं जैसे सिल्ट और क्ले की उर्वरता अधिक होती है।

vii. **मृदा अपरदन:-** मृदा कटाव से मिट्टी के साथ-साथ पौधों के आवश्यक तत्व भी बह जाते हैं, जिससे मृदा की उर्वरता कम हो जाती है।

viii. **मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा:-** यह देखा गया है कि विभिन्न प्रकार की मृदाओं में अन्तर्निहित पोषक तत्वों की मात्रा अलग-अलग होती है। कुछ मृदाओं में नाईट्रोजन की कमी पायी जाती है तो कुछ में फॉस्फोरस की। कुछ मृदाओं में किसी एक विशेष तत्व की अधिकता भी पायी जाती है। जिन मृदाओं में अन्तर्निहित तत्वों की मात्रा अधिक होती है उनकी उर्वरता भी अधिक होती है।

**(ब) कृत्रिम कारक:**

i. **जलाक्रान्ति:-** जब मृदा में फसल की आवश्यकता से अधिक जल का भराव होता है और इसके निकास का उचित प्रबन्ध नहीं होता है तो मृदा में वायु की कमी हो जाती है। इस स्थिति में

विनाइट्रीकरण को प्रोत्साहन मिलता है। परिणास्वरूप मृदा उर्वरता में कमी हो जाती है। अधिक पानी भरने से मृदा की भौतिक दशा भी खराब हो जाती है तथा आवश्यक पोषक तत्व अपक्षालन द्वारा जड़ क्षेत्र से नीचे चले जाते हैं।

ii. **फसल प्रणाली:-** यदि एक निश्चित भू-भाग पर प्रति वर्ष एक ही फसल उगाई जाती है। तो यह फसल प्रति वर्ष निश्चित तत्वों का शोषण करती रहती है जिसके फलस्वरूप इन तत्वों की मृदा में कमी हो जाती है व उर्वरता कम हो जाती है। सघन खेती करने से मृदा उर्वरता में शीघ्र गिरावट आ जाती है। जबकि वैज्ञानिक ढंग से फलस चक्र के अनुसार फसलें उगाने पर मृदा की उर्वरता बनी रहती है। फसल चक्र में दाल वाली फसलें उगाने से मृदा उर्वरता बढ़ती है।

iii. **मृदा पी.एच.:-** मृदा उर्वरता एवं पौधों को पोषक तत्वों की प्राप्यता मृदा पी.एच. द्वारा प्रभावित होती है। अधिक अम्लीय मृदा में कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रायें कम रहती है तथा लोहा, एल्यूमिनियम, मैंगनीज व तांबा की इतनी अधिकता हो जाती है कि इनका पौधों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत क्षारीय मृदाओं में कैल्शियम व मैग्नीशियम की मात्रा अधिक तथा लोहा, मैंगनीज व तांबा की प्राप्यता कम हो जाती है। इस प्रकार इन मृदाओं की उर्वरता भी कम होती है।

iv. **मृदा सूक्ष्म जीव:-** मृदा में उपस्थित मुख्य सूक्ष्म जीव शैवाल, कवक, एक्टीनोमाइसिटीज तथा बैक्टीरिया है। शैवाल मृदा में वायु संचार को बढ़ाती है। जिससे नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। कवक तथा एक्टीनोमाइसिटीज जटिल कार्बनिक पदार्थों का विच्छेदन कर ह्यूमस बनाने में सहायता करते हैं। ये मृदा में कार्बनिक पदार्थो को संचित करके मृदा उर्वरता को बनाये रखते हैं। बैक्टीरिया वायुमण्डल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को प्राप्य अवस्था में प्रदान करते हैं। इस प्रकार भूमि में सूक्ष्म जीव जितने अधिक क्रियाशील होंगे उतनी ही अधिक भूमि उपजाऊ होगी।

v. **मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा:-** कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। अतः जिन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। उनकी उर्वरा शक्ति भी अधिक होती है। चिकनी मृदा बलुई मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है।

vi. **मृदा जुताई का ढंग व समय:-** ढ़ालू खेतों की जुताई ढाल के लम्बवत करने से मृदा कटाव कम होता है। और पोषक तत्व पानी के साथ बहकर खेत से बाहर नहीं जाते है। आवश्यकता से अधिक जुताई करना हानिकारक होता है क्योंकि अधिक ताप से कार्बनिक पदार्थ जल जाता है तथा भौतिक दशा पर कुप्रभाव पड़ता है। भूमि को उचित गहराई तक समय पर जोतने से उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

**मृदा उत्पादकता**

मृदा उत्पादकता का अभिप्राय उसकी प्रति हैक्टर पैदावार देने की क्षमता से है। इसको साधरणतया रूपयों में या प्रति हैक्टर उपज के रूप में मापते हैं। उत्पादन कई वृद्धि कारकों के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर करता है। अधिकतम उत्पादन के लिए सभी कारकों का पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त दशा में होना अति आवश्यक है। सभी कारकों में फसल उत्पादन के लिए मुख्य कारक मृदा है।

कोई भी उपजाऊ भूमि उत्पादक हो यह आवश्यक नहीं है लेकिन उत्पादक भूमि के लिए इसका उपजाऊ होना आवश्यक है। यदि भूमि उपजाऊ नहीं है तो वह पौधों को आवश्यक तत्व प्रदान करने में असमर्थ है। परिणामस्वरूप उपज घट जाती है और भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। इसके विपरीत भूमि उत्पादक न होते हुए उपजाऊ हो सकती है। जैसे भूमि पर फसल खड़ी है यह भूमि की उर्वरा शक्ति को दर्शाती है, लेकिन अगर फसल प्रतिकूल दशाओं के कारण नष्ट हो जाये तो भूमि उपजाऊ होते हएु भी उत्पादक नहीं मानी जायेगी। इसलिए भूमि की उत्पादकता का अधिक या कम होना केवल उसकी उर्वरा शक्ति पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि सभी दशाओं की अनुकूलता व प्रतिकूलता पर भी निर्भर करता है।

**मृदा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक:**

i. **मृदा उर्वरता:-** मृदा में यदि पौधों की वृद्धि के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा, अनुपात एवं प्राप्य अवस्था में उपस्थित होते है तो मृदा उपजाऊ होती है। और उसकी उत्पादकता भी अधिक होती है।

ii. **मृदा की भौतिक दशा:-** मृदा की उपयुक्त भौतिक दशा में पौधों की वृद्धि अच्छी होती है जिससे पैदावार अधिक होती है। मृदा की संरचना, कणाकार, जल धारण क्षमता, वायु संचार आदि मुख्य भौतिक गुण है।

iii. **मृदा की स्थिति:-** अन्य कारकों के समान होने पर शहर के पास वाली मृदा अधिक उत्पादक होती है क्योंकि शहर के पास होने के कारण उत्पादकों को फसल को शहर में बेचने की सुविधा मिल जाती है और अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

iv. **माँग:-** किसी वस्तु का उत्पादन समान हो और मांग बढ़ती है तो उस वस्तु का प्रति इकाई मूल्य बढ़ जाता है। जिससे लाभ अधिक होगा, फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होगी।

v. **यातायात के साधन:-** यातायात की अच्छी सुविधा होने पर उत्पादन व्यय कम होगा तथा लाभ अधिक होगा, फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि होगी।

vi. **अन्य कारक:-** अन्य कारक जैसे मौसम की प्रतिकूल दशा, कीट तथा बीमारियों का आक्रमण, जानवरों द्वारा फसलों को नुकसान पहुंचाना, समय पर कृषि-क्रियाए नहीं करना आदि मृदा की उत्पादकता को कम करते हैं।

**मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर:** मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर सारणी 2.0 में दर्शाया गया है-

**सारणी: 2.0 मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता में अन्तर:**

| क्रं.सं. | मृदा उर्वरता | मृदा उत्पादकता |
|---|---|---|
| 1. | मृदा उर्वरता का संबंध पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों की उचित मात्रा, सही अनुपात एवं उपलब्ध कराने की क्षमता से है। | मृदा उत्पादकता का सम्बन्ध प्रति हैक्टर भूमि से फसल उत्पादन क्षमता से है। |
| 2. | उर्वर मृदा उत्पादक हो भी सकती है और नहीं भी। | उत्पादक मृदा हमेशा उर्वर होगी। |
| 3. | मृदा की भौतिक दशा, रासायनिक स्थिति, पौधों | मृदा की उर्वरता, परिवहन व्यय, उपज |

| | | |
|---|---|---|
| | के पोषक तत्वों की मात्रा व उनका सन्तुलन मृदा उर्वरता को निर्धारित करते हैं। | की माँग तथा फसल पैदा करने में व्यय मृदा उत्पादकता को निर्धारित करते हैं। |
| 4. | मृदा उर्वरता की प्रयोगशाला में जाँच की जा सकती है। | मृदा उत्पादकता की जाँच खेत में प्राप्त उत्पादन से कर सकते है प्रयोगशाला में नहीं। |
| 5. | मृदा उर्वरता मृदा उत्पादकता का एक मुख्य अंग है। उर्वरता के अन्तर्गत आर्थिक नियम, माँग, पूर्ति उत्पादन व्यय व उपज के मूल्य का विचार नगण्य है। | मृदा उत्पादकता एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत भौतिक क्रियायें व आर्थिक नियम सम्मिलित है। |

## 3.9 राजस्थान की मुख्य मृदाऐं:

पैतृक पदार्थ, उत्पत्ति के कारकों एवं जलवायु में अन्तर होने के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों की मृदाओं में बहुत अन्तर पाया जाता है। राजस्थान की पश्चिमी क्षेत्र में शुष्क तथा दक्षिणी क्षेत्र में आर्द्र जलवायु पायी जाती है। ग्रीष्म ऋतु में कुछ स्थानों पर तापक्रम $52^0$ सेल्सियस तक पहुंच जाता है। जबकि शीतकाल में तापक्रम कई स्थानों पर हिमांक से नीचे चला जाता है। पश्चिमी क्षेत्र में कम तथा दक्षिणी तथा दक्षिणी-पूर्व भाग में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है। इसलिए प्रदेश में अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदायें पायी जाती है। राजस्थान में मुख्यतयाः आठ प्रकार की मृदायें पायी जाती है -

i. **रेतीली या बलुई मृदा:-** यह राज्य के सर्वाधिक क्षेत्र में पाई जाती है। यह शीघ्र पानी सोख लेती है। मृदा के कण बड़े होने के कारण पानी नीचे चला जाता है व वाष्पीकरण द्वारा उड़ जाता है। यह मृदा कम उपजाऊ होती है। यह जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, झुंझुनू व चूरू में पाई जाती है।

ii. **भूरी रेतीली मृदा:-** इसका रंग भूरा होता है। यह रेतीली मिट्टी की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। इस मृदा में फाॅस्फोरस तत्व अधिक होता है। इसलिए यह कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह मृदा अधिकतर पाली, सिरोही, सीकर तथा झुंझुनूँ जिलों में पाई जाती है।

iii. **लाल पीली मृदा:-** अरावली पर्वत के पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्रों में लाल-पीली मृदा पाई जाती है। यह मिट्टी कम उपजाऊ होती है, क्योंकि इसमें कैल्शियम कार्बोनेट व चूने की मात्रा बहुत पाई जाती है। यह मिट्टी मुख्यतः उदयपुर, भीलवाड़ा, बांसवाड़ा, सिरोही, अजमेर व चित्तौडगढ़ जिलों में पाई जाती है।

iv. **लाल लोमी मिट्टी:-** यह मिट्टी डूँगरपुर, उदयपुर व मध्य एवं दक्षिणी-भाग में मिलती है। इस मिट्टी में चूना, पोटाश एवं फॉस्फोरस की मात्रा कम पाई जाती है।

v. **दोमट या कच्छारी मिट्टी:-** यह मिट्टी कृषि के लिए सबसे अधिक उपयुक्त रहती है। इस मिट्टी का रंग लाल होता है। यह अलवर, भरतपुर, भीलवाड़ा, जयपुर, चित्तौड़ आदि जिलों में पायी जाती है।

vi. **काली मिट्टी:-** यह काले रंग की होती है। यह भी अधिक उपजाऊ होती है। उदयपुर तथा कोटा खण्ड में बहुतायत से पाई जाती है। कपास की खेती के लिए यह सर्वश्रेष्ठ है।

vii. **लाल व काली मिश्रित मिट्टी:-** यह लाल व काली मिट्टी का मिश्रण है। यह भीलवाड़ा, उदयपुर, चित्तौडगढ़, डूँगरपुर तथा बाँसवाड़ा जिलों में पाई जाती है।

viii. **भूरी रेतीली कच्छारी मिट्टी:-** यह मिट्टी अलवर व भरतपुर के उत्तरी भाग और गंगानगर जिले के मध्य भाग में मिलती है। इसका रंग लाल व भूरा होता है।

## 3.10 सारांश:

फसल उत्पादन में मृदा के महत्व को मनुष्य आदिकाल से जानता है। मृदा को राष्ट्र की सम्पदा माना जाता है। रमन (1971) के अनुसार ''मृदा, पृथ्वी की सबसे ऊपर वाली अपक्षयित ठोस पपड़ी की परत है, जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे-छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी हैं।'' अवयवो के आधार पर मृदा को ठोस तथा रन्ध्राकाश पौधों के लिए मृदा एक प्राकृतिक माध्यम है। पौधें अपने भोजन के अधिकांश पोषक तत्व, जल तथा वायु मृदा से प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा पौधों को सीधा खड़े रखने में प्रत्यक्ष आधार प्रदान करती है। फसल उत्पादन कई वृद्धि कारकों के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर करता है। अधिकतम उत्पादन के लिए सभी कारकों का पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त दशा में होना अति आवश्यक है। लेकिन सभी कारकों में फसल उत्पादन के लिए मुख्य कारक मृदा है। उपजाऊ भूमि के लिए आवश्यक तत्वों के साथ-साथ भूमि की भौतिक दशा, जल एवं वायु का अनुपात, जीवाणुओं की क्रियाशीलता तथा उपयुक्त तापक्रम का होना भी आवश्यक है। सामान्यतया उपजाऊ मृदायें उत्पादक होनी चाहिए किन्तु यह तथ्य सभी दशाओं में सत्य नहीं है। मौसम की प्रतिकूल दशाओं जैसे-ओले, पाला, तूफान तथा कीट-बीमारियों आदि द्वारा फसल नष्ट हो जाए तो भूमि उपजाऊ होते हुए भी उत्पादक नहीं कहलाएगी। पैतृक पदार्थ, उत्पत्ति के कारकों एवं जलवायु में अन्तर होने के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों की मृदाओं में बहुत अन्तर पाया जाता है। इसलिए राजस्थान में अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदायें पायी जाती है।

## 3.11 बहुचयनात्मक प्रश्न:

1. मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाला प्रार्कतिक कारक है -

(अ) स्थलाकृति (ब) जलाक्रान्ति (स) मृदा पी.एच. (द) मृदा जुताई का ढंग {अ}

2. राजस्थान में मुख्यतः कितनी प्रकार की मृदाऐ पाई जाती है -

(अ) 4 (ब) 6 (स) 8 (द) 10 {स}

3. मृदा में औसतन कितने प्रतिशत खनिज पदार्थ पाया जाता है -

(अ) 45 (ब) 5 (स) 25 (द) 25 {अ}

4. अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति वर्गीकरण के आधार पर मृत्तिका कण का व्यास होता है -

(अ) 2.0-0.20 (ब) 0.20-0.02 (स) 0.02-0.002 (द) 0.002 -से कम {द}

5. खेती के लिए सबसे अच्छी मृदा संरचना मानी जाती है -

(अ) गोलाभ (ब) खण्ड सदृश (स) त्रिपार्श्व सदृश (द) प्लेट सदृश्य {ब}

## 3.12 सन्दर्भ:


1. सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन. 2004, शस्य-विज्ञान, कक्षा XI, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर: पेज 82-135.
2. Reddy, T.Y. Reddi, G.H.S. 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers,
   New Delhi. pp. 110-154
3. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 4

# पौधों के आवश्यक पोषक तत्व

**इकाई की रूपरेखा**

4.0 उद्देश्य
4.2 पौधों के लिए तत्वों की आवश्यकता के मापदंड
4.3 आवश्यक पोषक तत्व
4.4 पौधों द्वारा प्रयुक्त तत्वों के रूप
4.5 मुख्य पोषक तत्व
4.6 सूक्ष्म तत्व
4.7 सारांश
4.8 अभ्यास प्रश्न
4.9 सन्दर्भ

## 4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान पाएंगे -

- लाभदायक पोषक तत्वों की उपयोगिताएं
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपयोगिताएं
- पोषक तत्वों के स्रोत

पौधों को अपनी वद्धि के लिए अनेकों तत्वों की आवश्यकता होती है जैसे मृदा ,जल, वायु इत्यादि का पौधे शोषण करते है। लेकिन सभी पोेधों के पोषण में भाग नहीं लेते है। अतः वे तत्व जो पौधों के पोषण में भाग लेते है पोषक (Nutrients) कहलाते है। इन पोषक तत्वों की कमी से पौधों का जीवन चक्र ठीक नहीं चल पाता है। इसलिए इन्हें आवश्यक पोषक तत्व कहते हैं। आवश्यक पोषक तत्वों में केवल वहीं सम्मिलित किये जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधों में कोई विशिष्ट कार्य करते हों। पौधों के लिए आवश्यकता निर्धारण हेतु वैज्ञानिकों ने कुछ आधार प्रस्तुत किये है।

## 4.2 पौधों के लिए तत्वों की आवश्यकता के मापदंड (Criteria of essentiality of elements तो plants)

सन् 1954 में आरनोन नामक वैज्ञानिक ने पौधों के लिए पोषक तत्वों की अनिवार्यता निर्धारण हेतु निम्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये -

1 इन तत्वों की कमी से पौधे अपने जीवन चक्र (Life Cycle) को पूरा नहीं कर सकते।

2 किसी विशेष तत्व की कमी को केवल उसी तत्व के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। मृदा की एक आवश्यक तत्व की कमी दूसरा तत्व पूरा नहीं कर सकता है।

3 ये पोषक तत्व पौधों के पोषण में सीधे ही संनिहित होता है।

## 4.3 आवश्यक पोषक (Essential Nutrients)

निकालस (1965) ने आरनोन के द्वारा बताये अनिवार्यता के सिद्धान्तों के बाद उनमें संशोधन कर यह निर्धारित किया कि अनिवार्य तत्व का पौधों में विशिष्ट कार्य होना चाहिए तथा पौधों में कमी होने पर पौधा अपना जीवन चक्र पूरा न कर सकें।

आवश्यक पोषक तत्व निम्नलिखित है -हाइड्रोजन, कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पौटेशियम, मैंगनशियम, कैल्शियम, सल्फर, लौहा, मैंगनीज, जिंक, कॉपर, मोलिब्लेडनम, बोरोन, क्लोरिन, सोडियम, कोबाल्ट, बैनडियम, सिलीकॉन, आयोडिन, सेलेनियम, गेलियस, एल्यूमिनियम ये 24 पोषक तत्व है जो पौधे के आवश्यक पोषक तत्व कहलाते है इनकी खोज कब किसने की यह आगे सारणी में दिया गया है।

**आवश्यक पोषक तत्वों का वर्गीकरण**

**(Classification of Essential Nutrients)**

इनको निम्न वर्गों में बांटा गया है -

**प्रथम वर्ग** - इस वर्ग में कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन आते है। यह पौधों द्वारा मुख्य रूप से जल तथा वायु से ग्रहण किये जाते है।

**द्वितीय वर्ग** - इस वर्ग में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम तथा सल्फर आते है यह उर्वरक तत्व कहलाते है।

**तृतीय वर्ग** - इस वर्ग में केल्शियम, मेगेनिशियम आते है इनको चूना तत्व भी कहते है क्योंकि यह चुना पत्थर के अवयवी तत्व है।

**चतुर्थ वर्ग** - इस वर्ग में लौहा मेगनीज, बोरोन, जिंक, कॉपर, मोलिब्लेडनम, क्लोरोन, बेनेडियम तथा कोबाल्ट आते है इसे सूक्ष्म तत्वों का वर्ग कहा जाता है।

**लाभदायक पोषक तत्व (Beneficial Nutrient Elements)**

इस वर्ग में सोडियम, सिलिकॉन आयोडीन, सेलेनियम, गेलियस तथा एल्यूमीनियम आते है। ये तत्व बहुत सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होने के कारण पौधों की वृद्धि को उत्तेजित करते हैं इसलिये इन्हें लाभदायक तत्वों की श्रेणी में रखा गया है।

(B) **क्राडसग्राफ** ने सन्1972 में भूगर्भ रसायन की दृष्टि से सूक्ष्म तत्वों का वर्गीकरण उनकी गतिशीलता एवं संचय के आधार पर निम्न प्रकार किया है-

1. सिलिकेट खनिजों से प्राप्त होने वाले तत्व जैसे B तथा Mn लिथियोफाइल तथा चैल्कोफाइल दोनों तत्व हैं।
2. सिलिकेट तथा सल्फाइड दोनों में पाये जाने वाले तत्व जैसे लिथियोफाइल तथा चैल्कोफाइल दोनों तत्व हैं।
3. सल्फाइडों में प्रमुख रूप से पाये जाते हैं। जैसे Mo एवं Cu चैल्कोफाइल सिडरोफाइल तत्व हैं।
4. आयरन लिथोफाइल, चैल्कोफाइल तथा सिडरोफाइल तीनों तत्व होते हैं।

(C) सन्1934 में थेचर ने कुछ आवश्यक पोषक तत्वों का उनके दैनिक कार्यों के आधार पर भी वर्गीकरण किया है जो निम्न प्रकार है-

1. **ऊर्जा विनियमक(Energy Exchange)-** इस वर्ग में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन आते हैं।
2. **ऊर्जा संग्रही (Energy Storers)-** इस वर्ग में कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा सल्फर आते हैं।
3. **स्थानान्तरण नियामक (Translocation Regulatores)-** इस वर्ग में आयरन, मैंगनीज, काॅपर, मौलिब्डेनम, बोरोन, जिंक तथा कोबाल्ट तत्व आते है।
4. **ऑक्सीकरण अवकरण नियामक (Oxidation Reduction Regulatores)-** इस वर्ग में आयरन, मैंगनीज, कॉपर, मौलिब्डेनम, बोरोन, जिंक तथा कोबाल्ट तत्व आते है।
5. **विद्युत अपघट्य परासारणी नियंत्रक -** सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम और मैंग्नीशियम के धनायन तथा क्लोरीन फास्फेट और कार्बोनेट के ऋणायन तत्व इस वर्ग में आते हैं।
6. **उत्प्रेरक तत्व (Catalyst Nutrients)-** ऑक्सीकरण, अवकरण तन्त्र के अवयव जैसे आयरन, कॉपर, मैंगनीज, जिंक, आयोडिन तथा सल्फर एवं एन्जाइमों के सक्रिय कारक जैसे कैल्शियम तथा कोबाल्ट आदि तत्व इसमें आते हैं।

(D) आवश्यक पोषक तत्वों को उनकी आवश्यकता के अनुसार निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है-

1. **मुख्य पोषक तत्व (Major Macro Nutrients)-** इस वर्ग में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटेशियम आते हैं। पौधों को इन तीनों पोषक तत्वों की सबसे ज्यादा मात्रा में जरूरत होती है। इसलिए इन्हें मुख्य पोषक तत्व कहते है।
2. **गौण पोषक तत्व (Secondary Nutrients)-** इस वर्ग में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम तथा सल्फर तत्व आते हैं। ये पौधों के लिये पर्याप्त मात्रा में चाहिए लेकिन इनका कार्य मुख्य पोषक तत्वों की अपेक्षा कम होता हैं।
3. **सूक्ष्म पोषक तत्व(Macro Nutrients)-** आयरन, जिंक कॉपर, मैंगनीज, बोरोन, मोलीब्डेनम, क्लोरीन, वेनेडियम तथा कोबाल्ट तत्व आते है। पौधों को इन पोषक तत्वों की कम मात्रा (1.ppm से कम) में आवश्यकता होती है ये तत्व मृदा में जिन रूपों में पाये जाते हैं उन्हें निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

**सूक्ष्म पोषक तत्वों के मूल स्त्रोत**

| तत्व | मुख्य स्त्रोत |
|---|---|
| आयरन | ऑक्साइड, सल्फाइड्स, सिलिकेट |
| मैंगनीज | आक्साइड, सिलिकेट्स, कार्बोनेट्स |
| जिंक | सल्फाइड्स, कार्बोनेट्स, सिलिकेट्स |
| बोरॉन | बोरो-सिलिकेट्स, बोरोट्स |
| मोलिब्डेनम | सल्फइाड्स, ऑक्साइड्स, मोलिब्डेनम |
| कॉपर | सिलिकेट्स |
| क्लोरीन | सिलिकेट्स |

## 4.4 पौधों द्वारा प्रयुक्त तत्वों के रूप (Forms of Elements Used by Plants ):

पौधे मृदा से पोषक तत्वों को निम्न प्रकार से ग्रहण करते हैं:-

1. तत्व के रूप में: जो अन्य तत्वो के साथ मिश्रित नहीं होकर, अकेले रहते है।
2. आवश्यक तत्व जो अन्य तत्वो से संयोग करके नाइट्रेट, फॉस्फेट योगिकों का निर्माण करते है तथा पौधों द्वारा संयुक्त रूप से अवशोषित किये जाते हों।

**असंयुक्त रूप से शोषित पोषक तत्व:-**

| | | |
|---|---|---|
| पोटेशियम | - | $K^{++}$ |
| कैल्शियम | - | $Ca^{++}$ |
| मैग्नीशियम | - | $Mg^{++}$ |
| ऑयरन- | - | $Fe^{++}$(फ़ैरस) $Fe^{+++}$ (फैरिक) |
| मैंगनीज | - | $Mn^{++}$(मैगनस) $Mn^{+++}$ |
| कॉपर | - | $Cu^{++}$(क्यूप्रस) $Cu^{+++}$(क्यूप्रिक) |
| जिंक | - | $Zn^{++}$ |
| क्लोरिन | - | $Cl^{++}$ |
| सोडियम | - | $Na^{++}$ |

**संयुक्त रूप से शोषित पोषक तत्व:-**

| | | | |
|---|---|---|---|
| नाइट्रोजन | | $NH_2^+$ | $No_3^-$ |
| फॉस्फोरस | $PO_4^-$ | $HPO_4^{--}$ | $H^2\ PO^{--}_4$ |
| सल्फर | $SO_3^{--}$ | $SO_4^-$ | |
| बोरोन | $BO_3^{---}$ | | |
| मौलिब्डेनम | $MoO4^{--}$ | | |
| कार्बन | $CO_3^{--}$ | $HCO_3^{--}$ | |
| हाइड्रोजन | $H^+$ | $OH^-$ | |
| ऑक्सीजन | OH | $Co_3^{--}$ | $So_4^{--}$ |

## 4.5 मुख्य पोषक तत्व (Major Plant Nutrients)

1 **कार्बन-** पौधे वायुमण्डल से कार्बनडाई ऑक्साइड ग्रहण करते हैं तथा प्रकाश की उपस्थिति में जल के साथ मिलकर ग्लकोज और फक्टोज आदि शर्कराओं का निर्माण करते हैं। पौधों द्वारा क्लोरोफिल की उपस्थिति में सूर्य का प्रकाश ऊर्जा को ग्रहण किया जाता है तथा कार्बन डाई ऑक्साइड तथा जल के सहयोग से रासायनिक क्रिया द्वारा सरल शर्कराओं का निर्माण होता है। प्रकाश संश्लेषण की इस क्रिया में सूर्य की ऊर्जा पौधों में संचित होकर, कार्बन-डाई-ऑक्साइड एवं जल के साथ अभिक्रिया करके कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते है। इन सरल

शर्कराओं (पेन्टोस$C_5H_{10}O_5$ तथा हेक्सोज $C_6H_{12}O_6$) के बहु लीकरण से वसा तथा वसा युक्त योगिकों का निर्माण होता है। इन अभिक्रियाओं को इस तरह दर्शाया जा सकता है।

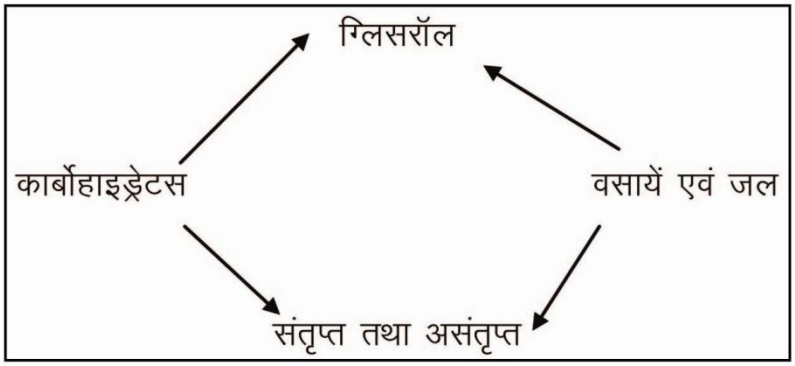


2 **ऑक्सीजन-** पौधों को ऑक्सीजन जल तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड की क्रिया में पानी कार्बनडाइ ऑक्साइड से मिलकर ऑक्सीजन का निर्माण करते है, तथा इस ऑक्सीज़न से शर्कराओं का निर्माण होता है।

$6CO_2 + 6H_2O \rightarrow C_6H_{12} + 6O_2$

स्वतंत्र ऑक्सीजन पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए प्रयुक्त ऑक्सीजन पौधों में श्वसन तथा प्रकाश संश्लेषण क्रियाओं में प्रधान कार्य करती है।

3 **हाइड्रोजन -** हाइड्रोजन पौधों को जल से प्राप्त होती है। हाइड्रोजन ऑक्सीज़न के साथ मिलकर पानी बनाती है तथा कार्बन के साथ मिलकर जटिल रासायनिक योगिक बनाती है। पौधों द्वारा शोषित से ही हाइड्रोजन तत्व की पूर्ति हो जाती है। अति सूक्ष्म मात्रा में उपलब्धता से ही हाइड्रोजन की आवश्यकता पूरी की जाती है।

**4 नाइट्रोजन**

(i) नाइट्रोजन पौधों में क्लोरोफिल, एमीनो अम्ल, विटामिन्स, न्यूक्लिक अम्ल, प्रोटीन एमाइड, एल्कोलाइड्स तथा प्रोटोप्लाज्म की संरचना में सक्रिय भाग लेकर अहम् तत्व की भूमिका के रूप में रहता है।

(ii) नाइट्रोजन एडीनोसिन ट्राइफास्फेट का एक आवश्यक तत्व है।

(iii) पौधों में ऑक्सिन का बनना नाइट्रोजन की मात्रा से उत्तेजित होता है, क्योंकि पौधों का मुख्य आॅक्सिन बीटा इन्डौल एसीटिक अम्ल में नाइट्रोजन होता है और यह ट्रिप्टोफेल एमीनों अम्ल के रासायनिक परिवर्तन से बनता है। ट्रिप्टोफेन का सान्द्रण नाइट्रोजन से बढ़ता है।

(iv) नाइट्रोजन से स्टार्च के जल विश्लेषण तथा विभिन्न प्रकार की शर्कराओं के कार्बनिक अम्लों में परिवर्तन होने में सहायक है।

(v) पौधों में नाइट्रोजन नियंत्रक तत्व का काम करता है, यह फाॅस्फोरस व पोटेशियम का पादपों में विनियम सन्तुलित करता है।

(vi) पादप ऊतकों में पानी का अनुपात बढ़ाने से कैल्शियम का प्रतिशतता में कमी।

(vii) पौधों की फास्फोरस, पोटेशियम और कैल्शियम मृदा विलियम से अवशोषित करने की क्षमता को बढ़ावा देना।

**5 फॉस्फोरस -**

(i) फॉसफोप्रोटीन, फॉस्फोलिपाइड्स तथा न्यूक्लिक अम्ल आवश्यक अवयव है।

(ii) ऊर्जा के रूपान्तरण में फास्फोरस महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और वसा प्रोटीन उपापचय अभिक्रिया को बढ़ाता है।

(iii) फास्फोरस श्वसन में भी अहम तत्व है। यह आॅक्सीडेस एन्जाइम की सक्रियता को प्रोत्साहित करता है।

(iv) अकार्बनिक फॉस्फेट्स पौधों के कोशिका में विलेय होकर बफर का कार्य करते है।

(v) नाइट्रोजन के हानिकारक प्रभावों को कम या उदासीन का प्रमुख कार्य।

(vi) पौधों की पाश्र्व तथा रेशेदार जड़ों के निर्माण के मुख्य तत्व जो पोषकों के अवशोषण के लिए पृष्ठीय क्षेत्र को बढ़ाता है।

(vii) पौधों द्वारा बने तत्वों, खासतौर से पौटेशियम के ग्रहण करने को बढ़ावा देता है।

(viii) दलहनी फसलों की जड़ों के स्थित ग्रंथियों की संख्या तथा आकार में वृद्धि करता है। इसके कारण वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण अधिक से अधिक होता है।

(ix) पौधों में कीटों के आक्रमण सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

(x) पौधों में फूल शीघ्र आते हैं, बीजों के निर्माण में सहायक तत्व है तथा फसलों की परिपक्वता का निर्धारण करता है।

6 **पोटेशियम -** नाइट्रोजन, सल्फर, फाॅस्फोरस तथा अन्य तत्वों के समान यह पादप घटकों जैसे प्रोटोप्लाजम, वसायें तथा सैल्यूलोस का अवयव नहीं होता है। उत्प्ररेक के रूप में कार्य करता है। यह निम्न कार्यों के लिए आवश्यक होता है।

(i) प्रोटीन संश्लेषण में एन्जाइम क्रिया को बढ़ाता है इसके अतिरिक्त पोटेशियम कार्बोहाइड्रेट्स तथा न्यूक्लिक अम्ल मैटाबोलिज्म में अनेकों एन्जाइम्स के लिये सक्रिय कारक है, काइनेस, फ्रक्टोकाइनेस, फॉस्फो, फ्रक्टोरिलेस न्यूक्लिक अम्ल मैटाबोलिज्म में भी सहायक।

(ii) अनेकों एमीनो-अम्ल से क्रिया करने वाले एन्जाइम्स का सक्रिय कारक है। ऐमीना - अम्ल समावेशन तथा प्रोटीन संश्लेषण का वृद्धि कारक तत्व माना जाता है।

(iii) यह कार्बोहाइड्रेट्स के स्थानान्तरण के लिए सहायक तत्व है।

(iv) आयरन वाहक के रूप में अनेकों प्रकार की ऑक्सीज़न तथा अध्ययन प्रतिक्रियाओं में भाग लेता है।

(v) पौधों की उपापचय सक्रियता से उत्पन्न कार्बनिक अम्लों को उदासीन करने का कार्य।

(vi) पत्तियों में शर्करा एवं स्टार्च के निर्माण में वृद्धि कारक है।

(vii) उत्सर्जन को प्रभावित करके पानी को भाप बनकर उड़ने से रोकता है, क्योंकि पोटेशियम के होने से कोषों का प्रोटोप्लाज्म कोलाइडी दशा में रहता है।

(viii) नाइट्रोजन तथा फास्फोरस के सन्तुलन को पौधों में बढ़ाने का कार्य।

(ix) पोटेशियम अधिक उत्तेजक होने के कारण नई विभज्योतकों में सामान्य कोशिका - विभाजन को बढ़ाता है।

**7 कैल्शियम -**

(i) कैल्शियम का अधिकांश भाग पत्तियों के बीच पटलिका, यूरोनिक अम्ल के लवण के रूप में पाया जाता है।

(ii) पौधों की जड़ के शिरों के विभज्योतकों की सक्रियता तथा नये ऊतकों के निर्माण में आवश्यक तत्व है।

(iii) पौधों की मैटाबोलिज्म में स्वतंत्र कार्बनिक अम्लों को उदासीन करना इस प्रकार यह एक अविषकारी कारक का कार्य करता है।

(iv) कैल्शियम की न्यूवता की परिस्थिति में विलेय न्यूक्लियोटाइट्स बढ़ जाती है और न्यूक्निक अम्ल का संश्लेषण घट जाता है।

(v) बीज निर्माण के लिए आवश्यक तत्व।

(vi) प्रोटीन संश्लेषण में नाइट्रेट नाइट्रोजन का अधिक उपयोग कैल्शियम से सम्बन्धित है तथा कुछ एन्जाइम प्रणाली की सक्रियता को संगुणित करता है।

(vii) कार्बोहाइड्रेट्स के स्थानान्तरण में अहम है।

**8 मैग्नीशियम -**

(i) मैग्नीशियम क्लोरोफिल का मुख्य अवयव है।

(ii) यह फास्फोरस को ग्रहण करने तथा इसके स्थानान्तरण में सहायक है।

(iii) वसीय अम्लों तथा तेलों के संश्लेषण के लिए आवश्क है।

(iv) कार्बोहाइड्रेट मैटाबोलिज्म से संबंधित एन्जाइम्स की सक्रियता के लिये आवश्यक तत्व है।

(v) पौधों में नाइट्रोजन मेटाबोलिज्म से संबंधित फाॅस्फोराइलेशन क्रियायें मैग्नीशियम द्वारा उत्प्रेरित होती है।

(vi) पौधों में शर्कराओं एवं स्टार्च के स्थानान्तरण में सहायक है।

**9 सल्फर -**

(i) एमीनों अम्लों सिस्टाइन, सिस्टीन, मिथियोनीन तथा प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक तत्व है।

(ii) कुछ विटामिन्स, को-एन्जाइम ए' तथा ग्लेटेशायोन काएक अवयव है।

(iii) क्लोरोफिल के निर्माण के लिए भी आवश्यक तत्व।

(iv) तेलों तथा सुगन्ध तेलों मे ंसल्फर के यौगिक।

(v) डाइसल्फाइड बन्धन (**- -S-S- -**) प्रोटोप्लाज्म की संरचना के लिए आवश्यक अवयव है। सल्फाहाइड्रिल समूह (**- - SH**) की मात्रा पौधों में ठंड के प्रति रोधता को बढ़ाता है।

(vi) सल्फर से पादप जड़ों में ग्रंथियों का विकास अधिक होता है।

## 4.6 सूक्ष्म तत्व

पौधों की अच्छी वृद्धि के लिये कुछ तत्व अधिक मात्रा में तथा कुछ कम मात्रा में आवश्यक होतेहै। जो तत्व पौधों द्वारा अल्प मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं, इनको सूक्ष्म तत्व कहा

जाता है। इस समूह में आयरन, कॉपर, जिंक, मैंगनीज, बोरोन, मोलिब्डेनम, क्लोरीन, सोडियम, कोबाल्ट, वेनेडियम तथा सिलिकॉन तत्वों को रखा गया है।

(i) **आयरन -**

(i) क्लोरोफिल निर्माण के लिये यह आवश्यक तत्व है, परन्तु आयरन क्लोरोफिल का अंग नहीं होता है।

(ii) पौधों द्वारा नाइट्रोजन के अवशोषण और प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक पौधों में नाइट्रेट का अवशोषण सुनिश्चित करना।

(iii) आयरन पादप कोषों में होने वाले आॅक्सीकरण अपचय में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

(iv) कोशा विभाजन के लिये आवश्यक तत्व।

(v) यह बहुत से आॅक्सीकारी एन्जाइम्स जैसे कैटालेज, पराॅक्सीडेस एवं साइटोक्रोम बी और सी का सघटन तत्व है।

(vi) श्वसन क्रिया में यह ऑक्सीज़न वाहक का कार्य करता है।

(ii) **मैंगनीज -**

(i) क्लोरोफिल निर्माण के लिए आवश्यक अवयव।

(ii) आर्जिनेस, सिस्टीन, डिसल्फहाइड्रेस, हैक्सोकाइनेस, डिऑक्सी राइबोन्यूकिलयेस आदि की सक्रियता के लिए आवश्यक है जिससे पौधों में नाइट्रोजन, कार्बोहाइड्रेट मैटाबोलिज्म तथा क्रेब चक्र की क्रियाओं का सम्पादन हो।

(iii) नाइट्रेट के स्वांगीकरण का कार्य।

(iv) ऑक्सीकरण अपचयन में उत्प्रेरक का कार्य।

(v) मैंगनीज की कमी से फसलों में अवकृत शर्कराओं की मात्रा में प्रचुरता नहीं रहती है। मैंगनीज की अधिकता से शर्करा पायी जाती है।

(iii) **जिंक -**

(i) एल्कोहल डिहाइड्रोजिनेस, कार्बोनिक - एनहाइड्रेस एवं पेप्डीडेस एन्जाइम के अवयव के रूप में।

(ii) पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने वाले एन्जाइम ऑक्सीज़न के सान्द्रण को नियमित करना।

(iii) कार्बोहाइड्रेटस के रूपान्तरण के लिए आवश्यक।

(iv) प्रोटीन,करोटीन तथा सिट्रीन के संश्लेषण के लिए आवश्यक।

(v) क्लोरोफिल निर्माण में एक उत्प्रेरक अवयव का कार्य।

(vi) मृदा से पौधों द्वारा जल अवशोषण को बढ़ाता है।

(vii) इनोलेस, ऑक्जेला एसिटिक डिकार्बोक्सीनेस, लेसीथिनेस, सिस्टीन, डीसल्फहाइड्रेस आदि एन्जाइमों की सक्रियता के लिए आवश्यक अवयव।

(iv) **कॉपर -**

(i) कॉपर अप्रत्यक्ष रूप से क्लोरोफिल निर्माण के लिए सहायक अवयव।

(ii) आयरन का पौधों में उपयोग सुनिश्चित करना।

(iii) कॉपर से पौधों की श्वसन क्रिया प्रभावित होती है।

(iv) टाइरोसिनेस, लेकेस, एसकोर्बिक अम्ल,ऑसीडेस, मोनोफिनॉल आक्सीडेस आदि एन्जाइम्स का मुख्य अवयव है। जो पौधों में आक्सीकरण क्रियाओं के लिए उत्तरदाई एन्जाइम माने जाते है।

(v) क्लोरोफिल का ह्रास को रोकता है।

(vi) यह पौधों में इन्डोल ऐसिअिक अम्ल का संश्लेषण के लिए आवश्यक है।

(vii) इसके उपयोग से पौधों में बीमारी (फफूंदी) कम लगती है।

(viii) पौधों में एमीनों अम्ल के साथ मिलकर अनेक यौगिक और प्रोटीन बानाता है। प्रोटीन की मेटाबोलिज्म में महत्वपूर्ण भूमिका है।

(ix) पौधों में विटामीन ए बनने में सहयोग।

(v) **बोरोन** -

(i) कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण एवं प्रोटीन तथा पानी के उपापचयन, कोशिका विभाजन व कॉरटैक्स के विकास के लिये आवश्यक अवयव है।

(ii) पौधों द्वारा नाइट्रोजन के अवशोषण में सक्रिय भूमिका।

(iii) यह पोटेशियम कैल्शियम अनुपात को नियंत्रित करता है और पौधों द्वारा कैल्शियम एवं पोटेशियम उपयोग के लिये आवश्यक है।

(iv) पादपों में जनन क्रिया के लिए आवश्यक तत्व के रूप में लिया गया है।

(v) पुष्प, फल तथा बीज बनने की क्रिया भी प्रभावित होती है।

(vi) पेक्टिस, ए.टी.पी. डी.एन.ए. तथा आर.एन.ए. के संश्लेषण के लिए आवश्यक है।

(vii) पानी की मात्रा को नियंत्रित करता है।

(viii) इसके अभाव में फलीदार पौधों में सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण जड़ ग्रंथियों का निर्माण प्रभावित होता है।

(vi) **मौलिब्डेनम -**

(i) एजोबेक्टर तथा राइजोबियम बैक्टीरिया द्वारा मुक्त नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के लिये अति आवश्यक अवयव।

(ii) एस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी) के संश्लेषण के लिए आवश्यक।

(iii) फॉस्फोरस मैटाबोलिज्म के लिए आवश्यक।

(iv) नाइट्रेट रिडक्टेस एन्जाइम का महत्वपूर्ण भाग है, नाइट्रोजन अवशोषण में वाहक का कार्य करता है, जेन्थीन ऑक्सीडेस एन्जाइम की सक्रियता के लिये भी अति आवश्यक अवयव है।

(v) शर्कराओं के संश्लेषण के लिये अति आवश्यक अवयव।

(vi) यह पोधों में अमोनिया तथा नाइट्रेट अवकरण के लिये आवश्यक है।

(vii) **क्लोरीन -**

(i) रसाकर्षण दाब को बढ़ाता है।

(ii) कोशिका रस (Cell Sap) में धनायन सन्तुलन बनाये रखता है।

(iii) इसकी कमी से पौधों में अमीनो अम्ल एकत्र हो जाते हैं, इसलिये यह पौधों में प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करता है।

(iv) एन्थोसायनिन्स का संघटन तत्व।

(viii) **कोबाल्ट**

(i) राइजोबियस जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये आवश्यक है, के संश्लेषण में सहायक।

(ii) वृद्धि, वाष्पोत्सर्जन एवं प्रकाश संश्लेषण में बढ़ोतरी करता है।

(iii) आर्जीनेस, लेसीथिनेस, आॅक्जलएसीटिक डिकार्बोक्लीलेस तथा मोलिक एन्जाइम्स की सक्रियता के लिए आवश्यक।

9 **सोड़ियम -** यह चुकन्दर में सूखे के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। पौधों द्वारा जल ग्रहण करने को प्रभावित करता है। कोषा स्फीती (Cell Turgor) एवं पौधों की मैटाबोलिज्म क्रिया को प्रभावित करता है। ऑक्जेलिक अम्ल के संचयन में महत्वपूर्ण कार्य करता है। स्टोमेटा के खुलने में सहायक होता है तथा नाइट्रेट रिडक्टेज की क्रिया को नियमित करता है।

10 **सिलिकॉन -** विलेय सिलिका मोनो सिलीसिक अम्ल के (Monosilicic acid) $Si(OH)_4$के रूप में रहती है। पौधे भी सिलिका को इसी रूप में ग्रहण करते हैं। डायटम्स की वृद्धि के लिये आवश्यक हे, हाल में ही ऐसे चावल तथा अन्य फसलों जैसे खीरा, ककड़ी तथा जौ के लिये भी आवश्यक पाया गया है। सिलिकॉन से चावल के पौधे की लम्बाइ तनों की संख्या तथा ताजा एवं शुष्क भार में वृद्धि होती है। इसकी कमी से पके दानों की प्रतिशतता कम हो जाती है। सिलिकॉन के प्रदाय से गन्ने की वृद्धि में काफी बढ़ोतरी देखी जा सकती है।

## 4.7 सारांश

पौधे वायु, जल एवं मृदा से पोषक तत्वों को ग्रहण करते है। आररन द्वारा इन आवश्यक पोषक तत्वों में 24 पोषक तत्व है। इनका विभाजन वर्गों में किया गया है। प्रथम वर्ग में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीज़न को रखा गया है। द्वितीय वर्ग में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम तथा सल्फर है तथा तृतीय वर्ग में आयरन, मैंगनीज, बोरोन, कॉपर को रखा गया है। लाभदायक पोषक तत्वों में सोड़ियम आयोडीन, सेलेनियम, गोलियम तथा एल्यूमिनियम रखे गये है। आवश्यकता के आधार पर मुख्य पोषक तत्व, गौण पोषक तत्व तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों में विभाजित किया गया है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड से प्राप्त होता है। हाइड्रोजन एवं ऑक्सीज़न तत्वों की उपलब्धता पानी एवं जल के द्वारा होती है। नाइट्रोजन क्लोरोफिल, अमीनो अम्लों, विटामिन्स, न्यूक्लिक अम्लों आदि के निर्माण के आवश्यक तत्व की भूमिका निभाता है। फॉस्फोरस, न्यूक्लिक अम्लों, पोलिपेटाइड्स तथा फास्फो-प्रोटीन का निर्माण तथा ऊर्जा स्थानान्तरण में सक्रिय भूमिका निभाता है। जिंक तत्व एन्जाइमों के अवयव भी है तथा क्लोरोफिल निर्माण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

## 4.8 अभ्यास प्रश्न

1 पौधों के लिए तत्वों की आवश्यकता के मापदंड बताइए।

2 दैनिक कार्यों के आधार पर पोषक तत्वों का किस प्रकार वर्गीकरण किया गया है?

3 सूक्ष्म तत्व कौनसे है? उनके उपयोग बताइए।

4 सन् 1954 में किस वैज्ञानिक द्वारा पोषक तत्वों की अनिवार्यता निर्धारित हेतु सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये?

अ डेविड ब अरनोन

स वॉटसन द कोई नहीं

5 निम्न में से कौनसा सूक्ष्म तत्व हैं?

अ सल्फर ब आयरन

स मैग्नीशियम द कैल्शियम

## 4.9 सन्दर्भ :


4 सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन. 2004,शस्य-विज्ञान, कक्षा *XI*, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

5 Reddy, T.Y. nad Reddi,G.H.S. 2000, *Principles of Argonomy*, Kalyani Publishers, New Delhi

6 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, *शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग)*, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 5

# धान

**इकाई की रूपरेखा**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उन्नत किस्में

5.3 नर्सरी तैयार करना

5.4 मुख्य खेत की तैयारी

5.5 पौध की रोपाई

5.6 उर्वरक प्रबन्धन

5.7 सिंचाई एवं जल प्रबन्धन

5.8 सघनीय चावल प्रणाली (एस.आर.आई.)

5.9 कीट नियंत्रण

5.10 बीमारियां एवं रोकथाम

5.11 कटाई व गहाई

5.12 भण्डारण

5.13 सारांश

5.14 प्रश्न

5.15 सर्दंभ ग्रन्थ


## 5.0 उद्देश्य

भारत को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्म निर्भर बनाने में धान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कुल खाद्यान्न उत्पादन में धान का हिस्सा लगभग 44 प्रतिशत है जो 70 प्रतिशत आबादी का मुख्य आहार है। धान की खेती लगभग 45 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में देश के विभिन्न क्षेत्रों, जलवायु व वातावरण में की जाती है। फसल उगाने के लिए आवश्यक संसाधनों जैसे भूमि, जल, उर्वरक एवं कीटनाशियों आदि में हो रहे ह्रास, तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या और सिंचित क्षेत्र में आयी उपज में स्थिरता के कारण धान उत्पादन में वृद्धि निःसन्देह एक कठिन कार्य हो गया है। विगत कुछ वर्षों में विभिन्न अनुसंधानों द्वारा विकसित तकनीकियों के उपयोग से देश में धान का उत्पादन लगभग 99 मिलियन टन तक बढ़ा है, परन्तु देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिए 2020 तक लगभग 115-120 मिलियन टन चावल उत्पादन की आवश्यकता होगी। देश में हो रही जनसंख्या वृद्धि, लोगों की बढ़ती हुई क्रय शक्ति एवं बदलते वातावरण में धान उत्पादन में वृद्धि केवल उत्पादकता बढ़ाकर ही प्राप्त की जा सकती है। विभिन्न

संसाधनों की कमी के बावजूद, उन्नत किस्में, उन्नत कृषि विधियां, कृषि यंत्रों एवं समुचित कीट एवं बीमारियों का प्रबंधन करके उत्पादकता को बढ़ाना सम्भव है।

## 5.1 प्रस्तावना

धान विकासशील देशों की एक प्रमुख खाद्य फसल है। विश्व में 95 प्रतिशत चावल का उत्पादन एवं उपभोग एशिया में होता है। चीन, भारत, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, वियतनाम, थाइलैंड, इंडोनेशिया, कोरिया, नेपाल एवं फिलीपीन्स विश्व के प्रमुख चावल उत्पादक देश है। भारत विश्व का सबसे अधिक क्षेत्रफल (45.54 मिलयिन हैक्टर) में धान उगाने वाला देश है। यहां पर विश्व का कुल 20 प्रतिशत (99.19 मिलियन टन) धान उत्पादन होता है। लेकिन हमारे देश की उत्पादकता (2178 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) जो विश्व औसत से कम है।

भारतीय कृषि में धान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी खेती देश के सभी भागों में की जाती है। भारत में धान की खेती राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्र से लेकर असम के भारी वर्षा वाले क्षेत्र कश्मीर की घाटी, पश्चिमी और पूर्वी समुद्री क्षेत्रों तथा केरल के समुद्र तल से नीचे के क्षेत्रों में भी की जाती है। राजस्थान में धान, खरीफ की मुख्य फसल है। वर्तमान में यहां पर इसकी खेती कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, भरतपुर जिलों में सिंचित एवं असिंचित अवस्थाओं में लगभग 1.51 लाख हैक्टर क्षेत्रों में की जाती है तथा उत्पादन 2.28 लाख टन व उत्पादकता 1515 कि.ग्रा. प्रति है. है जो भारतीय औसत से कम है।

**सारणी-1: भारत में चावल का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता**

| वर्ष | क्षेत्रफल (मिलियन हैक्टर) | उत्पादन (मिलियन टन) | उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति है.) |
|---|---|---|---|
| 2004-05 | 41.91 | 83.13 | 1984 |
| 2005-06 | 43.66 | 91.78 | 2102 |
| 2006-07 | 43.61 | 92.76 | 2127 |
| 2007-08 | 43.91 | 96.69 | 2202 |
| 2008-09 | 45.54 | 99.19 | 2178 |

**Source**: Agricultural Statics at a glance 2010, Department of Agriculture and Cooperative Ministry of Agriculture Govt. of India Delhi.

**सारणी-2: राजस्थान में चावल का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता**

| वर्ष | क्षेत्रफल (लाख हैक्टर) | उत्पादन (लाख टन) | उत्पादकता (कि.ग्रा. प्रति है.) |
|---|---|---|---|
| 2004-05 | 1.01 | 1.62 | 1653 |
| 2005-06 | 1.07 | 1.52 | 1424 |
| 2006-07 | 1.08 | 1.70 | 1576 |
| 2007-08 | 81.28 | 2.60 | 2031 |
| 2008-09 | 1.34 | 2.42 | 1807 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 2009-10 | 1.51 | 2.28 | 11515 |
| 2010-2011 | 1.31 | 2.65 | 2025 |
| 2011-2012 | 1.34 | 2.53 | 1886 |

**Source:** Vital Agriculture & Rajasthan Agricultural statistics at a Statistics at a glanceGovt. Of Rajasthan, Jaipur (2004-2012).

## 5.2 उन्नत किस्में

खुशबूवाली किस्मेः-

**पूसा सुगन्धा** - 4 : इस किस्म को पूसा 1121 और पी 1121 के नाम से जाना जाता है। इस किस्म का विकास पी-614-1-2 / पी 614-2-4-3 के संकरण से हुआ है। यह किस्म अर्द्ध बोनी, बासमती गुणों से परिपूर्ण व अधिक उपज देने वाली है। इसका दाना लम्बा, पतला एवं खाने में स्वादिष्ट व अत्यधिक खुशबूदार होता है। 135-140 दिनों में पककर तैयार होने वाली यह किस्म ब्लास्ट, तना छेदक व जीवाणु अंगमारी से मध्यम प्रतिरोधी है। इसकी औसत उपज 45-50 क्विंटल/है. होती है।

**पूसा सुगन्धा-5 :** सुगन्धित धान की इस किस्म को पी 2511 के नाम से जाना जाता है। इसका दाना पतला एवं लम्बा होता है। यह किस्म मध्यम कद (110-115 सेमी) एवं अधिक उपज देने वाली है। इसकी औसत उपज 45-50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है जो 135-140 दिनों में पककर तैयार होती है। यह किस्म ब्लास्ट/तना छेदक व जीवाणु अंगमारी रोग से मध्यम प्रतिरोधी है।

**इम्प्रूव्ड पूसा बासमती-1** (पी-1460) : यह किस्म अर्द्ध बोनी (100-110 सेमी) व बासमती गुणों से परिपूर्ण है। इसका दाना पतला लम्बा चमकदार व खाने में स्वादिष्ट होता है। तना मजबूत होने की वजह से यह आडी नहीं गिरती है। यह किस्म 130-135 दिनों में पककर 40-45 क्विं/है उपज देती है। यह किस्म जीवाणु अंगमारी रोग व तना छेदक से मध्यम प्रतिरोधी है।

**पूसा बासमती-1:** इस किस्म की बालियों में मूंछ / तूड होती है। जिसकी वजह से इसको मूंछल बासमती कहते है। यह किस्म अर्द्ध बोनी (100-105 सेमी) व बासमती गुणों से परिपूर्ण है। इसका दाना पतला लम्बा चमकदार व खाने में स्वादिष्ट होता है। तना मजबूत होने की वजह से यह आडी नहीं गिरती है। यह किस्म 130-135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 40-45 क्विं/है है। यह किस्म धान-गेंहू फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त है।

**पूसा सुगन्धा-2 व** 3: इन किस्मों की लम्बाई 110-120 सेमी तक होती है। इनका दाना पतला व लम्बा होता है। ये किस्में 135-145 दिनों में पककर तैयार होती है। तथा इन किस्मों में कीटों एवं रोगो का प्रकोप कम होता है। इनकी औसत उपज 40-45 क्विं/है है।

**माही सुगन्धाः-** यह बासमती धान की अर्द्धबोनी (100-110 सेमी) एवं अधिक पैदावार देने वाली किस्म है। इसकी औसत पैदावार 40-45 क्विं/है. होती है। इस किस्म का दाना लम्बा व पतला होता है तथा तना काफी मजबूत होता है जिससे फसल आडी नहीं गिरती है। यह किस्म

130-135 दिनों में पककर तैयार होती है। तथा इस किस्म में कीटों एवं रोगो के प्रकोप कम होता है।

**तरावली बासमती:-** यह किस्म अधिक ऊचाई (130-140 सेमी) तक बढती है। इसकी औसत पैदावार 28-30 क्विं/है. होती है। इस किस्म का दाना लम्बा पतला व अत्यधिक खुषबूदार होता है तथा तना काफी कमजोर होता है जिससे फसल आडीं गिर जाती है। यह किस्म 130-135 दिनों में पककर तैयार होती है। तथा यह किस्म सफेद पीठ वाले फुदका व तना गलन रोग से प्रतिरोधी है।

**बासमती 370:-** इस किस्म का दाना लम्बा पतला व अत्यधिक खुषबूदार होता है इसकी औसत पैदावार 25-30 क्विं/है. होती है। अधिक ऊचाई (120-130 सेमी) तक बढने के कारण फसल आडीं गिर जाती है। यह किस्म 140-155 दिनों में पककर तैयार होती है।

**प्रताप सुगन्ध-।** इस किस्म की औसत पैदावार 45-50 क्विंटल प्रति हैक्टैयर है। इसका दाना लम्बा, पतला एवं बासमती गुणों से युक्त होता है। मध्यम कद की ऊँचाई (105-120 सेमी) वाली यह किस 135-140 दिन में पककर तैयार होती है तथा गिरती नहीं हैं। यह किस्म ब्लास्ट, तना छेदक तथा जीवाणु अंगमारी से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

**बिना खुशबूवाली किस्मे:-**

**जया:**-यह धान की बोनी (82सेमी ऊचाई) किस्म है। इसका दाना छोटा मोटा व भारी होता है। तना मजबूत होने की वजह से यह आडी नहीं गिरती है। यह किस्म 130-135 दिनों में पककर 55-60 क्विं/है उपज देती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग व तना छेदक से प्रतिरोधी है। क्षारीय भूमी के लिए उपयुक्त है।

**रतना** :- इस किस्म की पैदावार 45-50 क्विं/हें है। इसका दाना पतला एवं लम्बा होता है। यह किस्म छोटा कद (85-90 सेमी) एवं अधिक उपज देने वाली है। तना मजबूत होने की वजह से यह आडी नहीं गिरती है। यह किस्म 120-125 दिनों में पककर तैयार होती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग व तना छेदक से प्रतिरोधी है। देर से बोने के लिए उपयुक्त है।

**आई आर 64** :- इस किस्म की पैदावार 45-50 क्विं/हें है। इसका दाना पतला एवं लम्बा होता है। यह किस्म छोटे कद (90-100सेमी) एवं अधिक उपज देने वाली है। तना मजबूत होने की वजह से यह आडी नहीं गिरती है। यह किस्म 120-125 दिनों में पककर तैयार होती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग व तना छेदक से प्रतिरोधी है। सीधी बुवाई के लिए उपयुक्त है।

**विकास** :- इस किस्म की पैदावार 45-50 क्विं/हें है। इसका दाना पतला एवं लम्बा होता है। यह किस्म छोटे कद (90-100सेमी) एवं अधिक उपज देने वाली है। यह किस्म 120-125 दिनों में पककर तैयार होती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग व तना छेदक से प्रतिरोधी है। सीधी बुवाई के लिए उपयुक्त है।

**त्रिपुरा धान:-** यह जल्दी पकने वाली (78-90 दिन) किस्म है इसकी औसत पैदावार 20-25 क्विं/हें है। इसका दाना छोटा एवं मोटा होता है। यह किस्म ब्लास्ट व जीवाणु अंगमारी रोग से मध्यम प्रतिरोधी है। सीधी बुवाई एवं असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**बागड धान:-** यह भी जल्दी पकने वाली (80-90 दिन) किस्म है इसकी औसत पैदावार 18-20 क्विं/हें है। इसका दाना छोटा एवं मोटा होता है। यह किस्म ब्लास्ट व जीवाणु अंगमारी रोग से मध्यम प्रतिरोधी है। सीधी बुवाई एवं असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**गुजरात-11** यह मध्यम दानों वाले धान की किस्म है जो कि 115-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका पौधा मध्यम ऊंचाई का होता है। इस किस्म की उपज 50-60 क्विंटल प्रति हैक्टयर होती है।

**एन.डी.आर.-**359 यह किस्म 130-135 दिन में पककर तैयार होती है तथा इस किस्म का दाना लम्बा एवं मोटा होता है। इस किस्म के पौधो की लम्बाई 110-150 सेमी. होती है। यह किस्म 55-60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पैदावार देने की क्षमता रखती है। यह किस्म कीट एवं बीमारियों से मध्यम प्रतिरोधी हैं।

**पी.आर**.-106 धान की इस किस्म के पौधों की ऊचांई 100 सेमी. के लगभग व तने सख्त होते है। जिससे ये गिरते नहीं हैं। दाने लम्बे व साफ होते है। इस किस्म की फसल 140-145 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी और पैदावार 50-55 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**कलिंगा** यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है जो 85-90 दिन में पकती है इसका दाना पतला एवं लम्बा होता है तथा उपज 18 से 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। पथरीले एवं ढलान वाले वर्षा पोषित क्षेत्रों में उगाने हेतु यह किस्म उपयुक्त पाई गई हैं।

**अशोका**-200 एफ यह एक लम्बे पतले दाने वाली किस्म है। इसके पौधे की लम्बाई 100 सेमी. होती है। यह किस्म 80 से 82 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 18 से 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इस किस्म में रोग प्रतिरोधकता क्षमता पाई गई हैं। वर्षा पोषित क्षेत्रों में उगाने के लिए यह किस्म उपयुक्त पाई गई हैं।

**संकर किस्में**

**पी.एच.बी-71** यह संकर किस्म पायोनीयर कम्पनी द्वारा 1997 में विकसित की गई हैं। यह किस्म 130-135 दिन में पककर 70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देने वाली क्षमता रखती है। इसके दाने लम्बे एवं पतले होते है। यह किस्म ब्लास्ट, झुलसा एवं भूरा फुदका प्रतिरोधी है।

**पी.ए.** 6201 यह संकर किस्म वायर सीड कम्पनी द्वारा विकसित की गई है। यह किस्म 125-130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका दाना लम्बा एवं पतला होता है। इसकी उत्पादन क्षमता 60 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**पी.ए.** 6444 यह संकर किस्म वायर सीड कम्पनी द्वारा विकसित संकर धान की किस्म हैं। इसकी उपज क्षमता 70-80 क्वि. प्रति हैक्टेयर है। यह मध्यम अवधि 130-135 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह ब्लास्ट, झुलसा, शीथ रॉट, भूरा फुदका तथा सफेद फुटका से प्रतिरोधी है।

**डी.आर.आर.एच**-1 यह संकर किस्म वर्ष 1996 में चावल अनुसंधान निदेशालय हैदराबाद द्वारा विकसित की गई हैं। यह किस्म 130-135 दिन में पककर 60 क्वि. प्रति हैक्टेयर उपज देने की क्षमता रखती है। इसका दाना पतला एवं मध्यम लम्बाई वाला होता हैं।

**डी.आर.आर.एच**-2 यह किस्म वर्ष 2005 में चावल अनुसंधान निदेशालय हैदराबाद द्वारा विकसित की गई हैं। यह किस्म 115-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका दाना, लम्बा एवं पतला होता है। इस सकर किस्म की उपज क्षमता 60-65 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म लीफ एवं नेक ब्लास्ट के लिए प्रतिरोधक हैं।

**के.आर.एच**-2 यह किस्म कृषि विश्वविद्यालय बैंगलोर द्वारा 1996 में विकसित की गई हैं। यह किस्म 125-130 दिन में पककर तैयार होती हैं। इसके दाने लम्बे एवं पतले होते हैं। इसकी उपज क्षमता 65-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हैं।

**सी.ओ.आर.एच**.-3 यह संकर किस्म वर्ष 2006 में तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय कोयम्बटूर द्वारा विकसित की गई हैं। यह किस्म 135-140 दिन में पककर तैयार होती हैं। इसका दाना, लम्बा एवं पतला होता है। यह किस्म 60-65 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देने की क्षमता रखती है। यह किस्म ब्लास्ट एवं सफेद पीठ वाले फुदका से प्रतिरोधी हैं।

**सी.आर.एच.आर.-**32 संकर धान की यह किस्म तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय कोयम्बटूर द्वारा 2010 में विकसित की गई हैं। इसकी औसत उपज 50-55 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह किस्म 125-130 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं।

**पंत संकर धान-**1 यह संकर किस्म जी.बी. पंत कृषि विश्वविद्यालय, पतनगर द्वारा सन् 1997 में विकसित की गई है। यह किस्म 120-125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**पी.आर.एच.-**10 यह लम्बे दानों वाली सुगन्धित संकर किस्म है जो 125-130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म में जीवाणु अंगमारी रोग के प्रतिरोकता पाई गई हैं। यह किस्म 60-65 क्विंटल पाई हेक्टेयर उपज देती हैं।

**पंत संकर धान**-3 यह संकर किस्म, जी.बी. पन्त कृषि विश्वविद्यालय पंत नगर द्वारा वर्ष 2004 में विकसित की गई है। यह किस्म 125-130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दानों का आकार पतला एवं लम्बा होता है। इसकी उपज क्षमता 60-65 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म लीफ ब्लास्ट तथा भूरा धब्बा रोगों के लिए प्रतिरोधी है।

**27पी-**11 यह संकर किस्म वर्ष 2010 में प्राईवेट सीड कम्पनी द्वारा विकसित की गई है। यह किस्म 130-135 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस संकर किस्म की औसतन पैदावार 65-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हैं।

**अजय** यह संकर किस्म केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान कटक (उड़ीसा) द्वारा वर्ष 2005 में विकसित की गई हैं। इसका दाना मध्यम लम्बा व इसमें अच्छी मिलिंग गुणवत्ता पाई जाती है। यह संकर किस्म 130-135 दिन में पक जाती है जिसकी उपज क्षमता 70-75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म ब्लास्ट एवं भूरा फुदका से प्रतिरोधक क्षमता रखती है।

**इन्दिरा सोना** यह किस्म इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर द्वारा वर्ष 2006 विकसित की गई है। यह किस्म लगभग 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह संकर किस्म लम्बे, पतले दाने वाली जिसकी उत्पादन क्षमता लगभग 70 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

**सह्याद्री**- यह संकर किस्म क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र करजत (महाराष्ट्र) द्वारा 1998 में विकसित की गई हैं। इस किस्म की उपज क्षमता 65-70 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह झुलसा रोग से प्रतिरोधी हैं।

**जवाहर राईस हाइब्रिड**-5 यह संकर किस्म जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा वर्ष 2007 में विकसित की गयी हैं। यह किस्म 115-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका दाना लम्बा पतला व अच्छी गुणवत्ता युक्त होता हैं।

## 5.3 नर्सरी तैयार करना

1. **खेत की तैयारी एवं क्यारियां बनाना** नर्सरी के लिए दोमट अथवा चिकनी दोमट भूमि का चुनाव करें। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई अवश्य करें। खेत में क्यारियाँ बनाकर अच्छी सिंचाई करने से सभी खरपतवार उग आते है तथा बा आने पर 2-3 जुताईयां हल या ट्रेक्टर से करके भूमि तैयार करें। खेत में अन्तिम जुताई के समय प्रत्येक 500 वर्ग मीटर नर्सरी क्षेत्रफल के हिसाब से 10 कि.ग्रा. यूरिया 15 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट व 5 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश मिट्टी में जुताई के समय मिलावें तथा पाटा लगाकर खेत समतल करें। बुवाई के लिए 1 से 1.5 मीटर चैड़ी एवं 4 से 5 मीटर लम्बी क्यारियां बनायें।
2. **बीज दर** खुशबूदार किस्मों के लिए 25-30 कि.ग्रा. बीज एवं बिना खुशबूदार किस्मों के लिए 30-35 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर के हिसाब से 500 से 600 वर्गमीटर क्षेत्रफल में बोयें। बुवाई में साफ बीज काम में लेवें। संकर किस्मों के लिए 15 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त रहता हैं। धान की सीधी बुवाई हेतु छिड़कवां विधि में 80 कि.ग्रा. एवं पंक्तियों में 60 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती हैं।

**बीजोपचार**

i. **नमक के घोल में बीजोपचार** बीजों को 2 प्रतिशत नमक के घोल में डाल कर भली भाँति हिलावें तथा ऊपर तैरते हुये बीजों को निकाल देंवे तथा बैठे बीजों को साफ पानी में धोकर छाया में सुखा लें तत्पशचात् बुवाई के काम में लेंवे।

ii. **बीज जनित रोगों की रोकथाम हेतु बीजोपचार** ब्लास्ट एवं भूरा धब्बा रोग से बचाव हेतु 1 ग्राम ट्राइसाइक्लेजोल अथवा 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।

1. जीवाणु झुलसा रोग से बचाव हेतु 1.5 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का 45 लीटर पानी में घोल बनावें तथा घोल में लगभग 25 से 30 किलोग्राम बीज को 12 घण्टे तक भिगोयें, इसके बाद पानी से निकालकर दबा दें तथा 24 घण्टे बाद अंकुरित होने पर नर्सरी में बुवाई करें।

**बीज की बुवाई का समय एवं विधि**

बीज की बुवाई मई के अन्तिम सप्ताह से जून द्वितीय सप्ताह तक करें। तैयार की गयी क्यारियों में उपचारित बीजों को छिड़क कर मिट्टी में मिलाकर हल्की सिंचाई करें। सिंचाई एक दिन

छोड़कर दूसरे दिन करने से अकुंरण अच्छा होता है। पौध उगने के बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहे । नर्सरी में हाथ से खरपतवार नियंत्रण करें। रसायन द्वारा खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के 1-2 दिन के अन्दर 50 मिली बेन्थियोंकार्ब (सक्रिय तत्व) प्रति 500 वर्गमीटर क्षेत्रफल में 50-60 लीटर पानी में घोल बनाकर क्यारियों में छिड़कें।

## 5.4 मुख्य खेत की तैयारी

धान की खेती के लिए पानी रोकने की अच्छी क्षमता वाली चिकनी, दोमट एवं चिकनी दोमट मृदा सबसे अच्छी रहती है। समतल खेत का चुनाव करें एवं उसमें जल निकासी का ध्यान रखें। खेत की गर्मियों में गहरी जुताई अवश्य करें। गर्मियों की जुताई से हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा भूमि में वायु का संचार अच्छा होता है। गर्मी की तपन एवं गहरी जुताई से सभी खरपतवार नष्ट हो जाते है एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। खेत की तैयारी के लिए क्यारियां बनाकर पलेवा देवें। बा आने पर 3-4 इंच गहरी 2-3 जुताईयां हल अथवा ट्रेक्टर द्वारा चालित कल्टीवेटर एवं हैरो से करें। रोपाई के तीन सप्ताह पहले भूमि में 8-10 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद अन्तिम जुताई के समय मिट्टी में मिलावें एवं पाटा लगाकर खेत समतल करें। खेत में पानी भरकर अच्छा गारा/गेड़ तैयार करने के बाद ही रोपाई प्रारम्भ करनी चाहिए।

## 5.5 पौध की रोपाई

जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई मध्य तक रोपाई करें। 25-30 दिन वाली पौध की रोपाई करें एवं प्रत्येक स्थान पर 2-3 पौधे लगावें। रोपाई के समय कतार से कतार की दूरी की दूरी 20 सेन्टीमीटर एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी रखें। यदि कतारों में रोपाई संभव नहीं हो तो एक वर्गमीटर में कम से कम 35-40 पौधे अवश्य रखें। संकर धान में लाईन से लाईन की दूरी 20 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखें।

एस.आर.आई विधि में कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी 25 सेमी रखें तथा एक स्थान पर एक ही पौध की रोपाई करें। इस विधि में रोपाई के समय पौध की उम्र 10 से 12 दिन की होनी चाहिए।

## 5.6 उर्वरक प्रबंधन

धान की फसल में असंतुलित उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में लगातार पोषक तत्वों का ह्रास हो रहा है। जिसके फलस्वरूप उतपादकता प्रभावित हो रही है। अतः फसलोत्पाकता बढ़ाने के लिए संतुलित उर्वरक प्रबंधन बहुत ही जरूरी है। धान की फसल को मुख्य रूप से नाइट्रोजन फॉसफोरस एवं पोटाश की आवश्यकता होती हैं। प्रमुख तत्वों के अतिरिक्त धान की फसल में द्वितीयक तत्व (गंधक) एवं सूक्ष्म तत्वों का भी बड़ा महत्व है विशेष रूप से जिंक का। नत्रजन की कमी से पौधे पीले पड़ जाते है तथा विकास रूक जाता है। अधिक मात्रा में नत्रजन देने से फसलों में अन्य पोषक तत्वों का उपयोग बिगड़ जाता है तथा कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है जिसका सीधा असर उत्पादकता पर पड़ता है। नत्रजन का मुख्य स्त्रोत यूरिया है इसमें 46 प्रतिशत मात्रा पायी जाती है।फॉस्फोरस जड़ों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह फसलों में अधिक पुष्प, स्वस्थ बीज एवं शीघ्र पकने में सहायक होता है। सिंगल सुपर फॉस्फेट,

फॉस्फोस का आसान उपलब्ध स्तोत्र है जिसमें 16 प्रतिशत फॉसफोस तथा 12.4 प्रतिशत गंधक पाया जाता है। इसके अलावा डी.ए.पी. में भी 46 प्रतिशत फॉस्फोस तथा 18 प्रतिशत नत्रजन पाया जाता हैं। पोटाश की आवश्यक मात्रा फसल को मजबूती प्रदान करती है तथा कीड़े व बीमारी के प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती हैं। पोटाश की कमी होने पर दाना हल्का बनता है तथा कम चमकीला होता हैं। पोटाश का मुख्य स्त्रोत म्यूरेट ऑफ पोटाश है इसमें 60 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। धान गेहूं बाहुल्य क्षेत्रों मेंजिंक की कमी फसलों में परिलक्षित होती है एवं धान में खेरा रोग जिंक की कमी से होता है। सामान्यतः संतुलित मात्रा में उर्वरक मिट्टी परीक्षण आधार पर ही दिये जाना चाहिए परन्तु यदि ऐसा सम्भव नही हो तो इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों का निम्न सारणी अनुसार प्रयोग करें तो अवश्य ही फसलोत्पादन बढ़े।

**उर्वरक की मात्रा**

**मिट्टी परीक्षण नहीं होने पर उर्वरकों की निम्न मात्रा का प्रयोग करें। (फास्फोरस एस.एस.पी. द्वारा देने पर)**

| **किस्मे** | **पोषक पोषक तत्व कि.ग्रा. प्रति है.** | | | **उर्वरक की मात्रा कि.ग्रा. प्रति हेक्टर** | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | **रोपाई के समय** | | | **फूटान अवस्था पर (रोपाई के 30-35 दिन बाद) यूरिया** | **बालियां निकलते समय (65-70 दिन) यूरिया** |
| | नत्रजन | फॉस्फोरस | पोटाश | एस.एस.पी. | यूरिक | म्यूरेट ऑफ पोटाश | | |
| बिना खुशबु वाली किस्में | 120 | 60 | 30 | 30 | 375 | 130 | 50 | 65 |
| खुशबुदार बोनी किस्में | 90 | 40 | 30 | 250 | 100 | 50 | 50 | 50 |
| खुशबुदार लम्बी किस्में | 60 | 40 | 30 | 250 | 65 | 50 | 32.5 | 32.5 |
| संकर किस्में | 150 | 60 | 60 | 375 | 165 | 100 | 82.5 | 82.5 |
| असिंचित क्षेत्रों के लिए | 60 | 40 | 30 | 250 | 65 | 50 | 32.5 | 32.5 |

**मिट्टी परीक्षण नहीं होने पर उर्वरकों की निम्न मात्रा का प्रयोग करें। (फास्फोरस डी.ए.पी. द्वारा देने पर)**

| **किस्में** | **पोषक तत्व कि.ग्रा. प्रति है.** | | | **उर्वरक की मात्रा कि.ग्रा. प्रति हेक्टर** | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | **रोपाई के समय** | | | **फूटान अवस्था पर (रोपाई के 30-35 दिन बाद) यूरिया** | **बालियां निकलते समय (65-70 दिन) यूरिया** |
| | नत्रजन | फॉस्फोरस | पोटाश | डी.ए.पी. | यूरिया | म्यूरेट ऑफ पोटाश | | |
| बिना खुशबु वाली किस्में | 120 | 60 | 30 | 130 | 100 | 50 | 50 | 50 |
| खुशबुदार बोनी किस्में | 90 | 40 | 30 | 90 | 75 | 50 | 37.5 | 37.5 |
| खुशबुदार लम्बी किस्में | 60 | 40 | 30 | 90 | 50 | 50 | 25 | 25 |
| संकर किस्में | 150 | 60 | 60 | 130 | 125 | 100 | 62.5 | 62.5 |
| असिंचित क्षेत्रों के लिए | 60 | 40 | 30 | 90 | 50 | 50 | 25 | 25 |

## 5.7 सिंचाई एवं जल प्रबन्धन

धान की फसल में वर्षा न होने पर या कम होने पर जब मृदा नमी संतृप्त अवस्था से कम होने लगे तो सिंचाई करना आवश्यक है। जल प्लावित धान की फसल में पहले तो मृदा को संतृप्त करने और फिर उसे लेवयुक्त बनाने के लिए 150-200 से.मी. पानी की आवश्यकता होती है। बाद में रोपाई से पकने तक 80-120 से.मी. पानी की आवश्यकता पड़ती है। धान के खेतों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में निम्नलिखित ढंग से सिंचाई का प्रबन्धन किया जाता है।

1. **सतत् जल प्लावन** इस विधि में सदैव पानी भरा रहता है, अतः मृदा संतृप्त रहती है। मृदा अपचयन के कारण खाद्य तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है और खपतवार नहीं बढ़ने पाते, साथ ही पानी, मृदा तापमान को कम करने वाले कारक के रूप में कार्य

करता है। मृदा की सतह के ऊपर 2.5 से 5 सेमी तक पानी का होना रोपण से फसल के पकने तक वांछनीय है।

**2. सतत् जलप्लावन तथा अन्तरायिक जल निकास**

इस विधि में खेतों में फसल की सभी अवस्था में पानी भरा रहता है। बीच में एक-दो या अधिकबार जल निकास करके मृदा को असंतृप्त करना होता है। इस प्रकार जल निकास से मृदा की घोर अपचायन अवस्था में सुधार होता है। विषैले पदार्थो का आक्सीकरण हो जाता है, शरीर-क्रियात्मक रोगों में कमी होती है।, जड़ों के विकास में सहायता मिलती है तथा फसल के गिरने की संभावना कम रहती है।

**3. एस. आर. आई. में जल प्रबन्धन**

वनस्पति वृद्धि काल में न्यूनतम पानी की आवश्यकता रहती है, केवल भूमि नम रहे तथा बालियां निकलते समय से दाना बनने तक की अवस्था में भूमि पर 1-2 सेमी दिखता हुआ पानी रहे। इस विधि में फसल के अन्य अवस्था के दौरान जल मृदा को संतृप्त अवस्था से नीचे नहीं जाने दिया जाता है। इस विधि में फसल की जल मांग पूरी हो जाती है तथा जल उपयोग भी कम हो जाता है।

**खरपतवार नियंत्रण**

धान के खेतों में मुख्यतः सावां, मोथा, जंगली धान, कनचारा, मकरा, दुद्धी, भंगा (भगेरिया) एवं दादमरी इत्यादि खरपतवार की विभिन्न प्रजातियां अलग-अलग इलाकों में पायी जाती है। रोपित धान में इन खरपतवारों से उत्पादन में लगभग 20-35 प्रतिशत की कमी हो जाती है।

**खरपतवार नियंत्रण की विभिन्न विधियां**

1. **साफ बीजों का प्रयोग :** नर्सरी में बुवाई करते समय साफ-सुथरे बीजों का प्रयोग करें। यदि बीज में कोई मिश्रण है तो बीज को साफ कर लें। यदि सम्भव हो तो बीजों को 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर भली-भांति हिलावें तथा ऊपर तैरते हुए खरपतवारों के बीज एवं अन्य को निकालकर, बैठे बीजों को साफ पानी में धोकर एवं छाया में सुखाकर बुवाई के काम में लेवें।
2. **खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना** : खरपतवारों को हाथ से खींचकर खेत से उखाड़ना सुगम एवं अधिक खर्चीली विधि है। यदि फूल आने से पूर्व ही खरपतवारों को उखाड़कर खेत से निकाल दिया जाता है तो मजदूर लागत में कमी के साथ-साथ अगले वर्ष के लिए खरपतवारों से मुक्ति मिल जाती है। धान की फसल से खरपतवार निकालने का पहला उपयुक्त समय रोपाई के 20 दिन बाद एवं दूसरा रोपाई के 40 दिन बाद है।
3. **कोनोवीडर द्वारा खरपतवार नियंत्रण** : धान उगाने की एस.आर.आई. विधि में कोनोवीडर को 10 दिन बाद 10 दिन के अंतराल पर 2-3 बार खेतों में चलाकर, खरपतवारों को मिट्टी में मिला देने से खरपतवारों का नाश तो होता ही है तथा दूसरी ओर हरी खाद के रूप में भी इनका प्रयोग हो जाता है। ऐसा करने पर खरपतवार की समस्या तो सुलझती

ही है, खेतों में मिट्टी को ऊपर नीचे करने से पौधों की जड़ों को अच्छी हवा, रोशनी तथा खाद भी प्राप्त होती है।

4. **खरपतवारनाशियों द्वारा खरपतवार नियंत्रण** :विभिन्न शाकनाशियों के प्रयोग द्वारा भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। 1 हैक्टर क्षेत्रफल के लिए छिड़काव लायक खरपतवारनाशी (तरल) को घोलने के लिए 500-600 पानी पर्याप्त रहता है। दवा छिड़काव में मुख्य रूप से नेफ-सेक स्प्रेयर एवं फूट स्प्रेयर काम में लिये जाते हैं।

**शाकनाशियों के नाम, मात्रा एवं छिड़कने का समय निम्न सारणी में दिया गया है।**

| **खरपतवार** | **खरपतवार नाशी** | | **मात्रा** | |
|---|---|---|---|---|
| | **तकनीकी नाम** | **व्यापारिक नाम** | **सक्रिय तत्व** | **प्रयुक्त मात्रा** |
| घास कुल वाले खरपतवार | ब्यूटाक्लोर | मचेटी (50 ई.सी.), | 1.5 कि.ग्रा. प्रति है. | 3.0 कि.ग्रा. प्रति है. |
| | प्रेटीलाक्लोर | इरेज (50 ई.सी.) | 0.75 कि.ग्रा. प्रति है. | 1.5 कि.ग्रा. प्रति है. रोपाई के 3-4 दिन बाद |
| घास कुल एवं चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार | साइनेमेथेलिन $ 2, 4डी ईथाइल एस्टर | ऑरगोल्ड प्लस (50 ई.सी.) | 0.375 कि.ग्रा. प्रति है. | 0.750 कि.ग्रा. प्रति है. रोपाई के सात दिन बाद |
| | बिसपाइरीबेक-सोडियम | नोमिनी गोल्ड (100 ग्राम प्रति लीटर एस. सी.) | 0.035 कि.ग्रा. प्रति है. | 350 मि.ली. प्रति है. रोपाई के 15-20 दिन बाद |
| घास कुल एवं चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार | पेन्डीमेथालिन | स्टॉम्प(30 ई.सी.) | 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैं. | 3.3 कि.ग्रा. प्रति है. सीधी बुवाई के 2-3 दिन के अन्दर |

## 5.8 सघनीय चावल प्रणाली (एस.आर.आई.)

धान उत्पादन की एस.आर.आई. तकनीकी एक अत्याधुनिक विधि है। विगत कुछ वर्षो में कम वर्षा एवं पानी की कमी से किसान धान की फसल से वांछित उत्पादन नही ले पा रहे है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए कम पानी में अधिकतम उत्पादन हेतु नयी तकनीक ''एस.आर.आई.'' का विकास किया गया है। इस विधि द्वारा धान की खेती करने से बीज की मात्रा में कमी के साथ-साथ सिंचाई के पानी की मात्रा में 30-40 प्रतिशत की बचत होती है। इसके अलावा फसल कम समय में पककर तैयार हो जाती है एवं कीड़े तथा बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में 15-20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होती है। इस विधि में कार्बनिक खाद के प्रयोग से अच्छी गुणवत्ता वाला दाना मिलता है।

**एस.आर.आई. के सिद्धान्त**

- नर्सरी में 5-6 कि.ग्रा. बीज प्रति 100 वर्गमीटर के हिसाब से प्रयोग करें। जो एक हैक्टेयर धान की रोपाई के लिए पर्याप्त रहेगा।
- 10-12 दिन की पौध की रोपाइ्र करें।
- पौध उखाड़ते समय सावधानी रखे एवं केवल एक पौध प्रति "हिल" लगावें।
- रोपाई के समय खेत में अधिक पानी नहीं भरें।
- 25 सेमी × 25 सेमी की दूरी पर रोपाई करें।
- गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद का प्रयोग अवश्य करें।

**एस.आर.आई. द्वारा धान उगाने के लाभ**

- बीज की मात्रा में कमी।
- पानी की मात्रा में 30-40 प्रतिशत कमी।
- कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप कम हो जाता है।
- उर्वरक व नाशीजीव विष की मात्रा में कमी।
- फसल कम समय में तैयार हो जाती है।
- कार्बनिक खाद के प्रयोग से अच्छी गुणवत्ता वाला दाना मिलता है।
- फसल से अधिक उत्पादन मिलता है।

**एस.आर.आई. विधि द्वारा नर्सरी तैयार करना**

मृदा एवं गोबर की खाद को 2: 1 अनुपात में मिलाकर उभरी हुई 1 से 1.5 मीटर चैड़ी एवं 5-6 मीटर लम्बी क्यारियां बनाये तथा क्यारियों के दोेनो तरफ सिंचाई एवं जल निकास हेतु नालियां बनावें। उभरी हुई क्यारियों में 5-6 किलोग्राम बीज प्रति 100 वर्गमीटर के हिसाब से छिड़क कर मिट्टी में मिलावें। 100 वर्गमीटर में तैयार नर्सरी एक हैक्टेयर क्षेत्रफल की रोपाई के लिए पर्याप्त रहेगी। क्यारियों में प्रति दिन झारे से तब तक पानी छिड़कें जब तक बीज नहीं उगे। बीज उगने के बाद नालियों में पानी भरकर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। साथ ही साथ क्यारियों से खरपतवार उखाड़ते रहे।

**उभरी हुई क्यारियाँ तैयार करें ।** **बीज की बुवाई करें ।**

**मुख्य खेत की तैयारी** धान की खेती के लिए पानी रोकने की अच्छी क्षमता वाली चिकनी, दोमट एवं चिकनी दोमट मृदा सबसे अच्छी रहती है। समतल खेत का चुनाव करें एवं उसमें जल निकासी का ध्यान रखें। खेत की गर्मियों में गहरी जुताई अवश्य करें। गर्मियों की जुताई से हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा भूमि में वायु का संचार अच्छा होता है। गर्मी की तपन एवं गहरी जुताई से सभी खरपतवार नष्ट हो जाते है एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। खेत की तैयारी के लिए क्यारियां बनाकर पलेवा देवें। बा आने पर 3-4 इंच गहरी 2-3 जुताईयां हल अथवा ट्रेक्टर द्वारा चालित कल्टीवेटर एवं हैरो से करें। रोपाई के तीन सप्ताह पहले भूमि में 8-10 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद अन्तिम जुताई के समय मिट्टी में मिलावें एवं पाटा लगाकर

खेत समतल करें। खेत में पानी भरकर अच्छा गारा/गेड़ तैयार करने के बाद ही रोपाई प्रारम्भ करनी चाहिए। खेत की तैयारी की विधियां निम्न प्रकार है।

**पौध की रोपाई** जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई मध्य तक 25-30 दिनो वाली पौध की रोपाई करें एवं प्रत्येक सीन पर 1-2 पौधे लगायें।रोपाई के समय कतार से कतार की दूरी 20 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी रखें। यदि कतारों में रोपाई संभव नहीं हो तो एक वर्गमीटर में कम से कम 35-40 पौधे अवश्य रखें। संकर धान में लाईन से लाईन की दूरी 20 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. रखें।

एस.आर.आई विधि में कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी 25 सेमी रखें तथा एक स्थान पर एक ही पौध की रोपाई करें। इस विधि में रोपाई के समय पौध की उम्र 10 से 12 दिन की होनी चाहिए।

**एस.आर.आई. विधि में (25X25) रोपाई**

**उर्वरक प्रबंधन** धान की फसल में असंतुलित उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में लगातार पोषक तत्वों का ह्रास हो रहा है। जिसके फलस्वरूप उतपादकता प्रभावित हो रही है। अतः फसलोत्पाकता बढ़ाने के लिए संतुलित उर्वरक प्रबंधन बहुत ही जरूरी है। धान की फसल को मुख्य रूप से नाइट्रोजन, फॉसफोरस एवं पोटाश की आवश्यकता होती हैं। प्रमुख तत्वों के अतिरिक्त धान की फसल में द्वितीयक तत्व (गंधक) एवं सूक्ष्म तत्वों का भी बड़ा महत्व है विशेष रूप से जिंक का। नत्रजन की कमी से पौधे पीले पड़ जाते है तथा विकास रूक जाता है। अधिक मात्रा में नत्रजन देने से फसलों में अन्य पोषक तत्वों का उपयोग बिगड़ जाता है तथा कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है जिसका सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है। नत्रजन का मुख्य स्त्रोत यूरिया है जिसमें नत्रजन की मात्रा 46 प्रतिशत पायी जाती है।

फॉस्फोरस जड़ों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह फसलों में अधिक पुष्प, स्वस्थ बीज एवं शीघ्र पकने में सहायक होता है। सिंगल सुपर फॉस्फेट, फॉस्फोस का आसान उपलब्ध स्तोत्र है जिसमें 16 प्रतिशत फॉसफोस तथा 12.4 प्रतिशत गंधक पाया जाता है। इसके अलावा डी.ए.पी. में भी 46 प्रतिशत फॉस्फोस तथा 18 प्रतिशत नत्रजन पाया जाता हैं। पोटाश की आवश्यक मात्रा फसल को मजबूती प्रदान करती है तथा कीड़े व बीमारी के प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती हैं। पोटाश की कमी होने पर दाना हल्का बनता है तथा कम चमकीला होता हैं। पोटाश का मुख्य स्त्रोत म्यूरेट ऑफ पोटाश है इसमें 60 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। सामान्यतः संतुलित मात्रा में उर्वरक मिट्टी परीक्षण आधार पर ही दिये जाना चाहिए परन्तु यदि ऐसा सम्भव नही हो तो इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों का निम्न सारणी अनुसार प्रयोग करने पर उत्पादन अवश्य ही अच्छा प्राप्त होता हैं।

**मिट्टी परीक्षण नहीं होने पर उर्वरकों की निम्न मात्रा का प्रयोग करें।**

| **किस्में** | **पोषक तत्व कि.ग्रा. प्रति है.** | | |
|---|---|---|---|
| | नत्रजन | फॉस्फोरस | पोटाश |
| बिना खुशबु वाली किस्में | 120 | 60 | 30 |
| खुशबुदार बोनी किस्में | 90 | 40 | 30 |
| खुशबुदार लम्बी किस्में | 60 | 40 | 30 |
| संकर किस्में | 150 | 60 | 60 |

**एस.आर.आई. में जल प्रबन्धन**

वनस्पति वृद्धि काल में न्यूनतम पानी की आवश्यकता रहती है, केवल भूमि नम रहे तथा बालियां निकलते समय से दाना बनने तक की अवस्था में भूमि पर 1-2 सेमी दिखता हुआ पानी रहे। इस विधि में फसल के अन्य अवस्था के दौरान जल मृदा को संतृप्त अवस्था से नीचे नहीं जाने दिया जाता है। इस विधि में फसल की

जल मांग पूरी हो जाती है तथा जल उपयोग भी कम हो जाता है। संतृप्त अवस्था पर सिंचाई करें।

**खरपतवार नियंत्रण**

धान के खेतों में मुख्यतः सावां, मोथा, जंगली धान, कनचारा, समक, भंगा (भगेरिया) एवं दादमरी इत्यादि खरपतवार की विभिन्न प्रजातियां अलग-अलग इलाकों में पायी जाती है। रोपित धान में इन खरपतवारों से उत्पादन में लगभग 20-35 प्रतिशत की कमी हो जाती है।खरपतवार नियंत्रण की विधिया निम्न प्रकार है।

**साफ बीजों का प्रयोग** : नर्सरी में बुवाई करते समय साफ-सुथरे बीजों का प्रयोग करें। यदि बीज में कोई मिश्रण है तो बीज को साफ कर लें। यदि सम्भव हो तो बीजों को 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर भली-भांति हिलावें तथा ऊपर तैरते हुए खरपतवारों के बीज एवं अन्य को निकालकर, बैठे बीजों को साफ पानी में धोकर एवं छाया में सुखाकर बुवाई के काम में लेवें।

**कोनोवीडर द्वारा खरपतवार नियंत्रण** : धान उगाने की एस.आर.आई. विधि में कोनोवीडर को 10 दिन बाद 10 दिन के अंतराल पर 2-3 बार खेतों में चलाकर, खरपतवारों को मिट्टी में मिला देने से खरपतवार नष्ट हो जाते है तथा दूसरी ओर हरी खाद के रूप में भी इनका प्रयोग हो जाता है। ऐसा करने पर खरपतवार की समस्या तो सुलझती ही है, खेतों में मिट्टी को ऊपर नीचे करने से पौधों की जड़ों को अच्छी हवा, रोशनी तथा खाद भी प्राप्त होती है।

कोनोविडार दावरा खरपतवार नियंत्रण

## 5.9 कीट नियंत्रण

धान की फसल को साधारणतया तना भेदक गॉल मक्खी, पत्ती का फुदका, तने का फुदका, पत्ती मोड़क तथा कीट गंधीबग हानि पहुँचाने वाले मुख्य हानिकारक कीट है। इसके अतिरिक्त चूहे भी फसल को पर्याप्त हानि पहुँचाते है। प्रमुख हानिकारक कीटों के मुख्य लक्षण व नियंत्रण के उपाय निम्न है।

**1. भूरा पौध फूदका**

**लक्षण** : यह फुदका भूरे रंग का होता हैं। पौधों के कल्लों के बीच में जमीन की सतह से कुछ ऊपर तथा पुराने पर्णच्छद के भीतर पाये जाते हैं। इनको सुबह तथा शाम आसानी से देखा जा सकता हैं। ये तनों पर बैठकर उनका रस चूस लेते है। इनका आक्रमण लगभग फसल की दूधिया अवस्था तथा दाने के भराव के समय होता हैं। इनके रस चूस लेने के कारण तना सूख जाता है तथा दाने खाली रह जाते हैं।

**नियंत्रण :** 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. या 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टेयर का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि छिड़काव सम्भव न हो तो 12 से 15 किलोग्राम फोरेट 10 प्रतिशत अथवा 18-20 कि.ग्रा. कार्बफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

**2. सफेद पीठ वाला पौध फूदका**

**लक्षण :** यह कीट पौधे के निचले हिस्से पर पाये जाते हैं। इनका रंग हल्का सलेटी होता है और पीठ पर एक सफेद धारी होती है जिसके कारण इसको सफेद पीठ वाला फुदका कहते है। यह कीट पौधे के तने से रस चूसकर हानि पहुंचाता है।

**नियंत्रण**: 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. या 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टेयर का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि छिड़काव सम्भव न हो तो 12 से 15 किलोग्राम फोरेट 10 प्रतिशत अथवा 18-20 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

**3. हरा पत्ती फूदका**

**लक्षण** : हरे रंग के ये कीट पत्तियों पर पाये जात है। इस कीट के निम्फ और प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों से रस चूसते है। जिसके फलस्वरूप पत्तियां पीली पड़ जाती हैं।

**नियंत्रण :** 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. या 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टेयर का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि छिड़काव सम्भव न हो तो 12 से 15 किलोग्राम फोरेट 10 प्रतिशत अथवा 18-20 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

**4. गॉल मक्खी**

**लक्षण**: यह कीट धान की फसल को भारी हानि पहुंचाता हैं। डिभंको लार्वा द्वारा खाये जाने के परिणामस्वरूप धान के पौधों के नियमित कल्ले नलिकाकार पिटिकाओं का रूप धारण कर लेते है जो बाद में बाली धारण किये बिना ही सूख जाते हैं। यह कीट पौध अवस्था में ही हानि पहुंचाने लगते है, इसलिए कीट नाशियों का प्रयोग फसल की छोटी अवस्था में ही प्रारम्भ कर देना चाहते हैं।

**नियंत्रण** : 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. या 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टेयर का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि छिड़काव सम्भव न हो तो 12 से 15 किलोग्राम फोरेट 10 प्रतिशत अथवा 18-20 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

**5. तना छेदक**

**लक्षण** : इस कीट की बहुत सी जातियां है। जिनमें पीला तना छेदक धारीदार गुलाबी तना छेदक और सफेद तना छेदक प्रमुख है। यदि तना छेदक कल्ले निकलने की अवस्था में पौधों पर आक्रमण करता है तो तने के केन्द्रीय भाग को हानि पहुँचाता है और परिणामस्वरूप वह सूख जाता हैं। पुष्पगुच्छ कलिका के विकसित होने के बाद आक्रमण होने के फलस्वरूप बालियां सूख जाती है जो दाना रहित होती हैं।

**नियंत्रण :** 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. या 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. को 500-600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव अथवा 12 से 15 कि.ग्रा. फोरेट 10 प्रतिशत कण प्रति हैक्टेयर का भुरकाव करें।

**6. पत्ती लपेट कीट**

**लक्षण** : इस कीट की इल्ली हरे रंग की होती है जो अपने थूक से पत्ती के कारण दोनों किनारों को आपस में जोड़ देती हैं। थूक से सिकुड़ जाने के कारण पत्ती के दोनों किनारे आपस में मिलकर नलिका रूपी हो जाते है। मुड़ी हुई पत्तियों के अन्दर उपस्थित इल्ली सफेद लाइनें बन जाती है और बाद में पत्तियां सूख जाती हैं।

**नियंत्रण** : 500 ग्राम एसीफेट 75 एस.पी. या 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. प्रति हैक्टेयर का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। यदि छिड़काव सम्भव न हो तो 12 से 15 किलोग्राम फोरेट 10 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

**7. गंधी बग**

**लक्षण:** यह कीट पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर उनको हानि पहुंचाता है। इसके शरीर से एक विशेष प्रकार की गंध आती है जिससे उसकी उपस्थिति का पता लग जाता है। इसका प्रकोप दाने में दूध भरने की अवस्था में होता है। यह कीट दाने के रस को चूसता है, जिसके कारण बहुत से दाने खाली रह जाते है। कीट द्वारा चूसा हुआ स्थान मटमैले सफेद रंग का हो जाता है और आस-पास का स्थान गहरा भूरा हो जाता है।

**नियंत्रण** : मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत अथवा कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बालियों में फूल आने के समय भुरकाव करें।

**8. हिस्पा**

**लक्षण** : यह काले रंग का बीटल होता है। इसके शरीर पर नोकदार कांटे होते है। इस कीट की इल्ली और प्रौढ़ पत्तियों का स्लेरोफिल खाकर हानि पहुंचाते है। जिसके परिणामस्वरूप पत्तियों पर सफेद रंग के आयताकार धब्बे बन जाते है और फसल की वृद्धि रूक जाती हैं। मादा कीट पत्तियों के सिरे पर अण्डे देती है। इन अण्डों से निकले ग्रब्स धान की पत्तियों की दोनों सतहों के बीच पाये जाने वाले क्लोरोफिन को खाकर सुरंग बनाती है, जिसके बाद पतली झिल्ली बच जाती है। इस झिल्ली को खोलकर देखा जाये तो इसके बीच से भूरे रंग की सुन्डी निकलती है। प्रौढ़ कीट पत्तियों को खाते है। इस कीट का प्रकोप नर्सरी से लेकर रोपाई के समय तक होता है।

**नियंत्रण** : 1.0 लीटर मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति है. छिड़काव अथवा 15-20 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर भुरकाव करें।

**थ्रिप्स**

**लक्षण** : यह काले रंग के बहुत छोटे कीड़े होते है इसका आक्रमण फसल की प्रारम्भिक अवस्था पर रोपाई के एकदम बाद होता है। इस कीट के निम्फ और पौध पत्तियां का रस चूसते है। ग्रसित पत्तियां मुरझाकर मुड़ जाती हैं।

**नियंत्रण:** 800 मि.ली. मिथाईल डेमेटोन 25 ई.सी. अथवा 500 मि.ली. डाईमिथोएट 30 ई.सी. का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

## 5.10 बीमारियाँ एवं रोकथाम

धान की फसल में बहुत से रोगों का प्रकोप देखा गया है। उनकी सही पहचान कर उचित उपचार करके इनसे होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। इन रोगों के प्रमुख लक्षण एवं नियंत्रण के उपाय निम्न प्रकार है।

**1. झोंका (ब्लास्ट)**

**लक्षण** : रोग के लक्षण पौधों की पत्तियों, डंठलों और बालियों पर दिखाई देते है। पत्तियों पर भूरे रंग के तकुआनुया धब्बे बन जाते हैं। बाली आने की अवस्था में रोग के आक्रमण से बालियों के डंठल गल जाते है। जिसको गला सड़न (नेक ब्लास्ट) कहते हैं।

**नियंत्रण :** 1.0 किलोग्राम मेन्कोजेब अथवा 500 मिली काइटेजिन या 300 ग्राम ट्राइसाइक्लेजोल 500-600 लीटर पानी घोल बनाकर प्रति छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव दोहरायें।

**2. जीवाणुज पत्ती झुलसा**

**लक्षण :** इस रोग में पीले या पुआल रंग के लहर दार क्षतस्थल पत्ती के एक या दोनों किनारों के सिरे से प्रारंभ होकर नीचे की ओर बढ़ते है। यह क्षतस्थल पत्तियों की नसों के समांतर होते है। इसके बाद वे लम्बाई और चैड़ाई, दोनों में बढ़ते है। और पत्तियां सूख जाती है। कभी-कभी क्षतस्थल पत्तियों के बीच या मध्य सिरा के साथ ही पाये जाते है।

**नियंत्रण :** 25 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड़ का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद दोहरायें। नत्रजन का अधिक प्रयोग न करें।

**3. जीवाणुज पत्ती रेखा**

**लक्षण** : इस रोग के आक्रमण से पत्तियों के सिराओं के बीच भूरे रंग की पतली धारियां बन जाती है। बाद में यह धारियां एक-दूसरे से मिलकर पूरी पत्तियों को सुखा देती है। धारियों पर मोती जैसे छोटे जीवाणुओं के ढेर दिखाई देते है। प्रभावित पत्तियों को सूर्य के सामने रखकर देखने से किरणें धारियों से घूमकर आती हुई दिखाई देती हैं।

**नियंत्रण** : 25 ग्राम स्ट्रप्टोसाइक्लिन का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति छिड़काव करें यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद छिड़काव दोहरायें।

**4. पर्णच्छद अंगमारी**

**लक्षण** : पत्र कंचुल पर अनियमित आकार के धब्बे बनते है। जिनका किनारा गहरा भूरा तथा बीच का भाग हल्के रंग का होता है। पत्तियों पर घेरेदार धब्बे बनते है।

**नियंत्रण :** 500 ग्राम कार्बेन्डाजिम अथवा 1.0 कि.ग्रा. मैंकोजेब का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद छिड़काव दोहरायें।

**5. पर्णच्छद सड़न (तना विगलन)**

**लक्षण** : तना विगलन इस रोग के प्रभाव से पर्णच्छद पर चॉकलेटी रंग के धब्बे पड़ जाते है। पर्णच्छद को खोलकर देखने पर बाली के अन्दर सफेद या गुलाबी रंग की फफूंदी उगी हुई दिखाई देती है।

**नियंत्रण** : 1.0 किलोग्राम मेन्कोजेब या 500 मिली काइटेजिन का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो 15 दिन बाद छिड़काव दोहरायें।

**6. अभासी कंड (फाल्स स्मट)**

**लक्षण** : इस रोग के लक्षण बालियाँ के निकलने के बाद स्पष्ट होते है। रोग ग्रस्त दाने पीले से लेकर संतरे के रंग व बाद में जैतूनी हरे हो जाते है तथा आकार में बड़े हो जाते है।

**नियंत्रण** : बालियाँ निकलते समय 500 ग्राम कार्बेन्डाजिम का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। रोग नियंत्रण के लिए इसके वाहन को नियंत्रित करना बहुत जरूरी हैं जिसको नियंत्रण करने के लिए 18-20 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत कण का प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें। साथ ही रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।

**7. भूरा धब्बा रोग**

**लक्षण** : इस रोग के लक्षण प्रांकुरचोल पत्तियों पर्णच्छद तथा तुसो पर पाये जाते है। प्रांकुर चोल पर धब्बा गोलाकार तथा भूरा होता है । पत्तियों पर धब्बे बहुत छोटी बिन्दी से लेकर गोलाकार या अण्ंडाकार होते है। तुष पर भूरे से काले धब्बे पाये जाते है।

**नियंत्रण :** बुवाई से पूर्व बीज को 2 ग्राम थायरम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें। खड़ी फसल रोग के लक्षण दिखाई देने पर 1.0 लीटर मेन्कोजेब या 300 ग्राम ट्राईसाइक्लेजोल को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति है. छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद दोहरायें।

## 5.11 कटाई एवं गहाई

- बालियाँ निकलने के एक माह बाद धान की सभी किस्में पक जाती है। जब दाना सख्त पड़ने लगे तो खेत में पानी नहीं रहना चाहिए ताकि फसल जल्दी पक जावें। अतः धान की कटाई के 10-12 दिन पहले खेत का पूरा पानी निकाल देना चाहिए।
- जब दाने सख्त हो जायें (दांत से काटने पर हल्की कट की आवाज हो) तो कटाई कर लेनी चाहिए। इस समय दाने में लगभग 20 प्रतिशत नमी होती है।
- धान की कटाई प्रायः हांसियों से की जाती है, जमीन की सतह से पौधे काटे जाते है। उनके बंडल बनाकर पौधों को खडे हुए ढेरों में इकट्ठा करके सुखा लेते है। कटाई रीपर द्वारा भी की जा सकती है।
- पौधों के अच्छी तरह सूख जाने पर धान के दानों को डंठलों से अलग कर लेना चाहिए। अब पैर से चलाए जाने वाले तथा शक्ति चालित यंत्र भी उपलब्ध है, जिनकी क्षमता पुराने परम्परागत तरीकों से बहुत अधिक है। यह यंत्र गहाई एवं औसाई दोनों ही क्रियायें साथ-साथ करते हैं।
- गहाई के बाद दानों की सफाई करते समय भूसा, धूल, खरपतवारों के भी रोगग्रस्त व सिकुड़े हुए दाने तथा दूसरी फसलों के दानों को निकालना आवश्यक होता है।

## 5.12 भण्डारण

- बीजों को एक मानक नमी (12-14 प्रतिशत) तक धूप में सुखाया जाना चाहिए जो उनके सुरक्षित भण्डारण के लिए आवश्यक है। इससे बीजों में रोग व कीट कम लगते हैं तथा बीजों की अंकुरण क्षमता बढ़ती है।
- सुरक्षित भण्डारण के लिए धान को बोरों में भरकर ऐसे पक्के भण्डार में रखना चाहिए, जो कि ऊँचाई पर बना हो, जहाँ हवा का प्रवेश न हो तथा नमी एवं चूहो से सुरक्षित हो।
- भण्डारण करने से पहले बोरों व भण्डार को साफ करके सुखा लेना चाहिए तथा अधिकृत रूप से स्वीकृत रासायनिक पदार्थो जैंसे सेल्फॉस अथवा ई.डी.बी. एम्पल का प्रयोग करके उनको हानिकारक जीवनाशक रहित कर लेना चाहिए। भण्डारण में 10 ग्राम सेलफॉस प्रति 3 क्विंटल अनाज की दर से प्रयोग करें।

## 5.13 साराशं

भारतीय कृषि में धान को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी खेती देश के सभी भागों में की जाती है। भारत में धान की खेती राजस्थान जैसे शुष्क क्षेत्र से लेकर असम के भारी वर्षा वाले क्षेत्र कश्मीर की घाटी, पश्चिमी और पूर्वी समुद्री क्षेत्रों तथा केरल के समुद्र तल से नीचे के क्षेत्रों में भी की जाती है। राजस्थान में धान, खरीफ की मुख्य फसल है। वर्तमान में यहां पर इसकी खेती कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, भरतपुर जिलों में सिंचित एवं असिंचित अवस्थाओं में लगभग 1.51 लाख हैक्टर क्षेत्रों में की जाती है तथा उत्पादन 2.28 लाख टन व उत्पादकता 1515 कि.ग्रा. प्रति है. है

## 5.14 प्रश्न उत्तर

1. भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन में धान का हिस्सा प्रतिशत है।

(अ) 44 प्रतिशत (ब) बद्ध 54 प्रतिशत

(स) 64 प्रतिशत (द) 24 प्रतिशत (अ)

2. धान की खुशबूवाली किस्मे है।

(अ) पूसा सुगन्धा - 4 (ब) इम्प्रूव्ड पूसा बासमती-1

(स) माही सुगन्धा (द) सभी (द)

3. वह कीट जो धान के पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर उनको हानि पहुंचाता है। इसके शरीर से एक विशेष प्रकार की गंध आती है

(अ) गॉल मक्खी (ब) गंधी बग

(स) भूरा पौध फूदका (द) तना छेदक (ब)

4. झोंका (ब्लास्ट) का नियंत्रण करते है

(अ) 2 ग्राम थायरम (ब) कार्बोफ्यू रॉन 3 प्रतिशत कण

(स) 500 मिली काइटेजिन (द) 500 ग्राम कार्बेन्डाजिम (स)

5. किस विधि में कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी 25 सेमी रखें तथा एक स्थान पर एक ही पौध की रोपाई करें। इस विधि में रोपाई के समय पौध की उम्र 10 से 12 दिन की होनी चाहिए।

(अ) एस.आर.आई (ब) सीद्यी बुवाई

(स) रोपाई विद्यी (द) सभी (अ)

## 5.15 सर्दभ ग्रन्थ


1. Agricultural Statistics at a Glance, 2010, Department of Agriculture and Cooperative, Ministry of Agriculture Govt. Of India, New Delhi.
2. Anonymous, 2010-11 Rajasthan Agricultural Statistics at a glance, Commissionerate of Agriculture, Jaipur, Rajasthan.
3. खरीफ की प्रमुख फसले उन्नत कृषि विद्यियाँ, खरीफ, 2013ए संयुक्त निदेशक कृषि विस्तारए कोटा खण्ड-कोटा

# इकाई 6

# सोयाबीन

**इकाई की रूपरेखा**


6.0 उद्धेश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 उत्पत्ति
6.3 वितरण एवं क्षेत्रफल
6.4 जलवायु
6.5 भूमि एवं खेत की तैयारी
6.6 बोने का समय एवं अवधि
6.7 बीज दर
6.8 बीजोपचार
6.9 उर्वरक प्रबन्धन
6.10 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं
6.11 खरपतवार प्रबंधन
6.12 सिंचाई प्रबंधन
6.13 रोग प्रबंधन
6.14 कीट प्रबंधन
6.15 कटाई एवं गहाई
6.16 भण्डारण
6.17 सोयाबीन की उत्पादकता में वृद्धि हेतु कार्य योजना
6.18 सारांश
6.19 बोध प्रश्न
6.20 संदर्भ ग्रंथ


## 6.0 उद्धेश्य

सर्वाधिक प्रोटीन (40 प्रतिशत) एवं लगभग 20 प्रतिशत तेल वाली विश्व की चमत्कारिक फसल सोयाबीन संभवतः प्राचीन फसलों में से एक है। सोयाबीन चूंकि सम्पूर्ण भारत की भी एक प्रमुख फसल है। अतः उचित पैदावार लेने हेतु सोयाबीन उत्पादन की उन्नत तकनिक की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि यह एक दलहनी फसल है, लेकिन भारत में इसका उपयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है। अतः बुवाई से लेकर भंडारण तक की जानकारी उचित पैदावार के लिए आवश्यक है।

## 6.1 प्रस्तावना

सोयाबीन भारत वर्ष की एक महत्वपूर्ण तिलहनी नकद फसल के रूप में स्थापित हो गई है। लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन, 20 प्रतिशत तेल एवं औषधीय गुणों वाली सोयाबीन एक चमत्कारिक फसल के रूप में जानी जाती है। यद्यपि यह एक दलहनी फसल है, लेकिन हमारे देश में तेल की आवश्यकता को देखते हुये एवं सोयाबीन में तेल की प्रचुरता के कारण इसको तिलहन वर्ग में रखा गया है। देश मे कुपोषण को दूर करने के लिये सोयाबीन का मिश्रण कर आहार की पौष्टिकता को बढ़ाया जा सकता है।

सोयाबीन से दूध, दही, मक्खन एवं पनीर बनाया जा सकता है। रासायनिक विश्लेषण के अनुसार इसका दूध गाय के दूध के समान माना जाता है। इसके तेल में संतृप्त वसा अम्ल कम होने के कारण इसका तेल हृदय रोगियों के लिये विशेष लाभदायक है। तेल निकालने के बाद इसकी खली में भी अच्छी मात्रा में प्रोटीन व खनिज लवण शेष रहते हैं। अतः यह जानवरों को खिलाने व खाद के रूप में भी उपयोगी पाया गया है।

राजस्थान का सोयाबीन उत्पादन में मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाद तीसरा स्थान है। सन् 2010-11 में सोयाबीन का क्षेत्र 6.90 लाख हैक्टेयर, उत्पादन 7.90 लाख टन एवं उत्पादकता 908 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है। राजस्थान में सोयाबीन की खेती मुख्यतः दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में होती है। कोटा, झालावाड़, बारां एवं बूंदी जिलों के अतिरिक्त चित्तौड़गढ़ एवं प्रतापगढ़ जिले में इसकी खेती व्यापक रूप से की जाती है। उदयपुर एवं बांसवाड़ा जिलों में भी कुछ क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती ळें

## 6.2 उत्पत्ति:

1.01 अधिकांश वैज्ञानिक पूर्वी अथवा दक्षिण-पूर्वी एशिया (चीन, मंचूरिया एवं जापान के कुछ भाग) को सोयाबीन की उत्पत्ति स्थान मानते है। इसको चीन सभ्यता के जीवित रहने के लिए पांच पवित्र खाद्यानों में से एक माना गया है। चीनी पुस्तकों में "सोउ" (sou) के नाम से इसका उल्लेख मिलता है। और संभ्वतः वर्तमान "सोया" (soya) शब्द इन्हीं से बना है। जापान, कोरिया, मंचूरिया एवं मंगोलिया में भी प्राचीन काल से इसकी खेती होने के प्रमाण मिले है।

अति प्राचीन साहित्य में सोयाबीन का उल्लेख नहीं मिलता है एवं इसके भारत में प्रवेश की सही तिथियों का अनुमान लगाना कठिन है। संभवतः उत्तरी भारत में आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों, बंगाल, मणीपुर, खासी एवं नागा पहाड़ियों तथा 6000 फुट की ऊँचाई तक के कुमायु क्षेत्रों में इसकी खेती आदिकाल से की जा रही है। उत्तर भारत की पहाड़ियों में छोटे दाने वाली सोयाबीन की प्रजातियों को उगाया जाता था और वहां के विवाह समारोह में सोयाबीन भोजन का एक भाग/मात्र होती थी। सोयाबीन को हिन्दी में "भट", भटवार, भेटमस, रामकुल्थी, राम कुर्थी आदि नामों से भी जाना जाता था।

सोयाबीन पर अनुसंधान कार्य सर्व प्रथम जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर एवं गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर में अनेक अमरिकी किस्मों का प्रारम्भिक परिक्षण कर, सोयाबीन के लिए भारतीय जलवायु की उपयुक्तता

सिद्ध की। इन परीक्षणों की सफलता से प्रेरित होकर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने सन् 1967 में सोयाबीन पर "अखिल भारतीय समन्वित सोयाबीन अनुसंधान परियोजना" प्रारम्भ की। वर्ममान में इस परियोजना के अन्तर्गत 20 केन्द्रों पर सोयाबीन के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान हो रहा है।

**किसानों के लिये सोयाबीन का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि -**

- यह कम उर्वरक देने पर भी लाभदायक नकदी फसल हैं
- फसल चक्र पद्धति में भी यह उपयुक्त हैं।
- इसकी फसल आवश्यकता से भी अधिक मृदा उर्वरकता बढ़ाती है। यह भूमि में वायु मण्डलीय नत्रजन का जमाव करती है और अगली फसल के लिये 40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर नत्रजन छोड़ती है।

## 6.3 वितरण एवं क्षेत्रफल

1. वैश्विक परिदृश्य:

विश्व के साथ भारत में लगातार बढ़ती हुई खाद्य तेल की मांग को पूरा करने में सोयाबीन महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्ष 2012-13 के आंकलन के अनुसार विश्व में सोयाबीन का क्षेत्रफल 108.75 मि. हैक्टेयर उत्पादन 268.00 मि. टन एवं उत्पादकता 2.5 टन/हैक्टेयर रही, जो कि क्षेत्रफल में 6.1 प्रतिशत की वृद्धि उत्पादन में 2.7 प्रतिशत की वृद्धि तथा उत्पादकता में 2.7 प्रतिशत कमी वर्ष 2011-12 की तुलना दर्शाती है (तालिका 1)। अमेरिका के मुख्य सोयाबीन उत्पादन क्षेत्रों में भयंकर सूखे की स्थिति के उपरान्त भी वर्ष 2012-13 में पूर्व वर्षो की तुलना में वैश्विक सोयाबीन उत्पादन में कोई कमी नहीं आई। दक्षिण अमेरिका (ब्राजील एवं अर्जेन्टीना) में सोयाबीन का उत्पादन अमेरिका में सोयाबीन के कम उत्पादन से ज्यादा अनुमानित है। प्रमुख सोयाबीन उत्पादन देशों में क्षेत्रफल के हिसाब से भारत विश्व में चैथे नंबर पर है, परन्तु उत्पादन के हिसाब से भारत का अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टीना एवं चीन के बाद पांचवा स्थान है। यू.एस.डी.ए. की हाल ही में निकली विश्व कृषि मांग एवं पूर्ति अनुमान रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2012-13 में विश्व में सोयाबीन के अधिक उत्पादन अनुमान के कारण सोयाबीन के भावों में कमी संभावित है। परन्तु चीन के द्वारा सोयाबीन के अधिक अपेक्षित आयात से वैश्विक भावों में कमी को पूरा करने की संभावना है।

2. राष्ट्रीय परिदृष्य:

तिलहन के कुल उत्पादन में 43 प्रतिशत अंश एवं खाद्य तेलों में 25 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ सोयाबीन भारत में सर्वोच्च तिलहनी फसल बनी हुई है। खाद्य तेलों में हिस्सेदारी के अलावा सोयाबीन डी.ओ.सी. के निर्यात से रूपये 6585 करोड़ की विदेशी मुद्रा देश के लिए अर्जित की गई। सोयाबीन एक प्रोटीन समृद्ध फसल के साथ स्वास्थ्य लाभ देने वाले बहुत से न्यूट्रास्यूटिकल रसायनयुक्त होने के कारण देश में सोयाबीन के खाद्य उपयोगों में भी वृद्धि देखी गई है। भारत सरकार ने सोयाबीन के न्यूनतम समर्थन मूल्य को भी रूपये 1650 से बढ़ाकर वर्ष

2012:13 में रूपये 2200/- कर दिया है। हालांकि सोयाबीन के बाजार भाव न्यूनतम समर्थन मूल्य से कहीं ज्यादा, रूपये 3000-4500 प्रति क्विंटल रहे है।

देश में वर्ष 2011 में सोयाबीन 10.33 मि. हैक्टेयर क्षेत्रफल से 1127 किलोग्राम/हैक्टेयर औसत उत्पादकता के साथ 11.65 मि. टन कुल उत्पादन रहा। वर्ष 2012 में सोयाबीन के अंतर्गत 10.69 मि. हैक्टेयर क्षेत्रफल से 1185 किलोग्राम/हैक्टेयर की उत्पादकता के साथ 12.67 मि.टन उत्पादन होने का अनुमान है (तालिका 2)। पूर्व वर्ष के अनुपात में उत्पादन में 8.8 प्रतिशत की वृद्धि एवं उत्पादकता 5.1 प्रतिशत की वृद्धि अनुमानित है। भारत में कुल सोयाबीन के उत्पादन में 95 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान प्रमुख सोयाबीन उत्पादक राज्य बने हुए है।

**तालिका 1: विश्व में सोयाबीन का उत्पादन एवं उत्पादकता।**

क्षेत्रफल (मि. हैक्टैयर), उत्पादन (मि. टन), उत्पादकता (किग्रा/हैक्टेयर)

| देशवर्ष | 2011-12 वर्ष | | | 2012-13 | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | क्षेत्रफल | उत्पादन | उत्पादकता | क्षेत्रफल | उत्पादन | उत्पादकता |
| यू.एस.ए. | 29.80 | 83.17 | 2791 | 30.80 | 82.06 | 2664 |
| ब्राजील | 23.97 | 74.82 | 3121 | 27.50 | 83.50 | 3036 |
| अर्जेन्टीना | 18.76 | 48.88 | 2605 | 19.35 | 51.50 | 2661 |
| चीन | 7.65 | 14.49 | 1893 | 7.20 | 12.60 | 1750 |
| भारत | 10.28$ | 12.28$ | 1207 | 10.80 | 12.55र# | 1162 |
| विश्व | 102.99 | 260.92 | 2533 | 108.75 | 268.00 | 2464 |

# = DAC, MOA

$=2nd advance estimates 2012-13, DAC

**तालिका 2: देश में सोयाबीन का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता।**

क्षेत्रफल (मि. हैक्टैयर), उत्पादन (मि. टन), उत्पादकता (किग्रा/हैक्टेयर)

| देश | खरीफ 2011 | | | खरीफ 2012 | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | क्षेत्रफल | उत्पादन | उत्पादकता | क्षेत्रफल | उत्पादन | उत्पादकता |
| मध्य प्रदेश | 5.73 | 6.17 | 1076 | 5.81 | 6.69 | 1150 |
| महाराष्ट्र | 3.06 | 3.56 | 1163 | 3.21 | 3.99 | 1243 |
| राजस्थान | 0.89 | 1.25 | 1393 | 0.99 | 1.23 | 1249 |
| आन्ध्र प्रदेश | 0.16 | 0.16 | 1050 | 0.19 | 0.22 | 1113 |
| कर्नाटक | 0.22 | 0.23 | 1070 | 0.20 | 0.22 | 1103 |
| छत्तीसगढ़ | 0.15 | 0.15 | 1025 | 0.15 | 0.17 | 1155 |
| शेष भारत | 0.12 | 0.13 | 1010 | 0.14 | 0.16 | 1143 |
| कुल योग | 10.33 | 11.65 | 1127 | 10.69 | 12.67 | 1185 |

## 6.4 जलवायु

सोयाबीन की फसल साधारण शीत से लेकर साधारण उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में आसानी से उगाई जा सकती है।

अ. तापमान: इसके बीज को 60 डिग्री फार्नेहाइट या कुल अधिक तापमान में अच्छा अंकुरित होने में 7 से 10 दिन लग जाते हैं, जबकि 70-90 डिग्री फार्नेहाइट तापक्रम पर ये केवल तीन-चार दिन में अंकुरित हो जाते है। 50 डिग्री फार्नेहाइट से कम तापक्रम पर पौधों की वृद्धि बहुत ही कम होती है। सोयाबीन में फूल आने के समय पर तापमान का विशेष प्रभाव पड़ता है। 75 से 77 डिग्री फार्नेहाइट तक प्रति 10 डिग्री की वृद्धि होने पर फूलने का समय 2 से 3 दिन बढ़ जाता है। बहुत अधिक तापमान (100 डिग्री फार्नेहाइट) से अधिक होने पर भी सोयाबीन की वृद्धि, विकास एवं बीजों के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तापमान कम होने पर तेल की मात्रा में कमी हो जाती है।

ब. सोयाबीन की अधिकांश किस्मों में दिन छोटे व राते लम्बी होने पर ही फूल आता है। फूलने तक की अवधि, फूलने से फलियां लगने तक की अवधि, पकने की अवधि, गांठों की संख्या तथा पौधों की ऊँचाई पर दिन की लम्बाई का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। दिन बढ़े होने पर उपरोक्त सभी अवस्थाओं की अवधि में वृद्धि हो जाती है। सोयाबीन में फूल तभी आता है जबकि दिन की लम्बाई एक क्रान्तिक अवधि से कम हो, इसलिए इसको अल्प प्रकाश पेक्षी पौधा कहते है।

स. सोयाबीन में बीजों के अच्छे अंकुरण के लिए अधिक नमी तथा लगातार कम नमी की दोनों ही दशाएं हानि कारक है। अंकुरण के पश्चात कुछ समय तक अधिक या कम नमी का पौधों पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। अच्छी फसल के लिए कम से कम 60 से 75 सेंमी वर्षा की आवश्यकता होती है। यदि पुष्पीय कलियां विकसित होने से 2 से 4 सप्ताह पूर्व पानी की कमी हो जाये तो इससे पौधों की वानष्पतिक वृद्धि घट जाती है। परिणाम स्वरूप बहुत अधिक संख्या में फूल तथा फलियां गिर जाती है। फलियों के पकते समय वर्षा होने पर फलियों पर अनेक बीमारियां लग जाती है। जिससे वे सड़ जाती है तथा बीज की उत्तमता भी घट जाती है। अतः फलियों के पकते समय वर्षा का होना सोयाबीन के लिए हानिकारक होता है।

## 6.5 भूमि एवं खेत की तैयारी

सोयाबीन के लिये चिकनी भारी उपजाऊ, अच्छे जल निकास वाली तथा ऊसर रहित मिट्टी उपयुक्त रहती है। फसल की अच्छी वृद्धि के लिये खेत को भली भांति तैयार करना चाहियें। गर्मी के मौसम में एक गहरी जुताई करना चाहिये जिससे भूमि में उपस्थित कीड़े, रोग एवं खरपतवार के बीजो की संख्या में कमी होती है तथा भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है। खेत से पूर्व फसल के अवशेष व जड़े निकाल कर उसमें भली भांति सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिला दें। उसके बाद दो बार बखर या कल्टीवेटर से जुताई कर ढेले फोड़कर भूमि को भुरभुरी कर लें तथा पाटा चलाकर खेत को समतल कर लें। खेत की अच्छी तैयारी अधिक अंकुरण के लिये आवश्यक है।

## 6.6 बोने का समय एवं अवधि:

सोयाबीन की बुवाई मानसून आने के साथ ही करना चाहिये। बुवाई के समय भूमि में कम से कम 10 से.मी. की गहराई तक पर्याप्त नमी होना चाहिये। सोयाबीन की बुवाई के लिये जून के तीसरे सप्ताह से जुलाई का प्रथम सप्ताह सबसे अधिक उपयुक्त समय है। देरी से बुवाई करने पर पैदावार में कमी होती है। जहां सिंचाई का साधन उपलब्ध हो वहां वर्षा का इन्तजार न करते हुये पलेवा देकर बुवाई करें।

बुवाई सीड ड्रिल या हल के साथ नायला बांधकर पक्तियों में करें। सोयाबीन की बुवाई पक्तियों में 30 से 45 से.मी. की दूरी पर करें तथा पौधों की संख्या 4.50 लाख प्रति हैक्टेयर होनी चाहिये। अच्छे अंकुरण के लिये पर्याप्त नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है।

## 6.7 बीज दर:

उचित अंकुरण के लिये छोटे एवं मध्यम दाने वाली किस्मों का 80 किलो बीज प्रति हैक्टेयर एवं मोटे दाने वाली किस्मों का 100 किलो बीज प्रति हैक्टेयर की दर से बोना चाहिये।

## 6.8 बीजोपचार:

बोने से पूर्व बीजों को फफूंदनाशक दवाओं से आवश्य उपचारित करें। इसके लिये बीज को 3 ग्राम थायरम या 1 ग्राम कार्बोण्डेजिम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। बीजों को ड्रम या घड़े में डालकर फफूंदनाशकों से भली भांति उपचारित करें जिससे बीजों पर दवा की एक परत बन जाये। बीजोपचार से बीज की सतह पर लगी फफूंद का विनाश होता है और भूमि में रहने वाले रोगाणुओं का भी नाश होकर अंकुरण बढ़ता है।

इसके पश्चात् बीजों को जीवाणु कल्चर से उपचारित करना आवश्यक है। इस हेतु एक लीटर गर्म पानी में 250 ग्राम गुड़ का घोल बनायें एवं ठण्डा करने के बाद 500 ग्राम राइजोबियम कल्चर एवं 500 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर प्रति हैक्टेयर की दर से मिलायें। कल्चर मिले घोल को बीजों में हल्के हाथ से मिलायें, फिर छाया में सुखाकर तत्काल बो देना चाहिये। इससे लगभग 10 किलो नत्रजन एवं 20 किलो फास्फेट की बचत होती है।

## 6.9 उर्वरक प्रबन्धन:

बुवाई से पूर्व 20 किलो नत्रजन, 40 किलो फॉस्फोरस एवं 40 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर दें। यदि राइजोबियम कल्चर से उपचारित नहीं किया गया है तो 40 किलो नत्रजन एवं 40 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर दें।

कल्चर से उपचारित बीजों को डी.ए.पी. के साथ मिलाकर कभी न बोऐं, इससे बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है।

**सोयाबीन** - गेहूँ फसल चक्र में दोनों फसलों का अधिक उत्पादन लेने हेतु 3 वर्ष में एक बार चीनी मिल उत्सर्जित पदार्थ प्रेसमड और इसके उपलब्ध न होने पर 2 वर्ष में एक बार अर्द्ध-शुष्क जल कुम्भी कुट्टी की हुई (जहां उपलब्ध हो) दस टन प्रति हैक्टेयर की दर से सोयाबीन की बुवाई से पूर्व अंतिम जुताई के साथ अच्छी प्रकार से मिलाऐं।

**पोषण प्रबन्धन:**

| रासायनिक | | मात्रा (कि. ग्रा.) | |
|---|---|---|---|
| | प्रति है. | प्रति एकड़ | प्रति बीघा |
| यूरिया(46: नत्रजन) | 43 | 17 | 11 |
| सूपर फॉस्फेट(16: स्फुर) | 250 | 100 | 40 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| म्यूरेट ऑफ पोटाष (60: पोटाष) | 66 | 28 | 10 |
| या | | | |
| डी.ए.पी. (18 व 46: नत्रजन व स्फुर) | 90 | 38 | 15 |
| म्यूरेट ऑफ पोटाष (60: पोटाष) | 66 | 28 | 10 |
| जिप्सम(18-22: गंधक) | 250 | 100 | 40 |

## 6.10 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं:

| क्र सं. | किस्मों का नाम | पकने की अवधि | उपज (क्विं/है.) |
|---|---|---|---|
| 1 | जे.एस.95-60 | 80-85 दिन | 18-20 |
| 2 | एम.ए.यू.एस.47 | 85-90 दिन | 18-20 |
| 3 | जे.एस.93-05 | 90-95 दिन | 25-30 |
| 4 | जे.एस.71-05 | 90-95 दिन | 20-25 |
| 5 | अहिल्या-3 | 90-99 दिन | 20-25 |
| 6 | मैक्स-13 | 90-100 दिन | 18-20 |
| 7 | मैक्स 58 | 90-100 दिन | 18-20 |
| 8 | अहिल्या-2 | 96-99 दिन | 20-25 |
| 9 | अहिल्या-4 | 96-101 दिन | 25-30 |
| 10 | पंजाब-1 | 95-100 दिन | 18-20 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 11 | जे.एस. 335 | 95-100 दिन | 25-30 |
| 12 | पी.के. 472 | 100-105 दिन | 20-25 |
| 13 | पूसा 16 | 100-105 दिन | 20-25 |
| 14 | जे.एस.75-46 | 100-106 दिन | 20-25 |
| 15 | अहिल्या-1 | 103-106 दिन | 20-22 |
| 16 | जे.एस.80-21 | 105-110 दिन | 20-22 |
| 17 | आर के एस .24 | 98-100 दिन | 25-30 |
| 18 | प्रताप सोया.1 | 90-95 दिन | 25-30 |
| 19 | प्रताप सोया.2 | 90-95 दिन | 25-30 |
| 20 | आर के एस .45 | 90-95 दिन | 25-30 |

हमारे क्षेत्र में सोयाबीन की खेती का प्रारम्भ काली तूर नामक किस्म से हुआ था। जिसके दाने काले रंग के थे। उसके पश्चात् पीले दानों वाली टी-9 किस्म प्रकाश में आई। इसकी सफलता के बाद अलंकार, अंकुर, शिलाजीत, पंजाब-1 किस्में किसानों द्वारा पसन्द की गई। बाद में गौरव, मोनेटा, एम.ए.सी.एस.-13 (मैक्स-13), मैक्स-58, पूसा-16, पूसा-20, पूसा-24 किस्में धीरे-धीरे प्रचलन में आई। आजकल निम्नलिखित किस्में किसानों द्वारा प्रयोग में लायी जा रही है।

**(1) पी.के. 472:**

मोटे, पीले दानों वाली मध्यम ऊँचाई की इस किस्म का पौधा सीधा होता है। पत्तियां चैड़ी, गहरे हरे रंग की होती है। इसके फूल का रंग सफेद होता है तथा तना पत्तियां एवं फलियों पर स्लेटी रंग के रोये होते है। फलियां गुच्छों में लगती है। यह पकने में 110-115 दिन का समय लेती है और पैदावार 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसके 100 दानों का भार 13-15 ग्राम होता है।

हायलम का रंग हल्का भूरा होता है। यह किस्म पीला मोजेक, पर्ण धब्बा एवं बेक्टीरियल बीमारियों से प्रतिरोधी होने के साथ-साथ कई प्रकार के कीड़ो से भी प्रतिरोधी होती है। इसमें फलियां चटकने की समस्या नहीं है।

**(2) जे.एस. 335:**

पीले दाने वाली तथा शीघ्र पकने वाली (100-105 दिन) इस किस्म में फूल बैंगनी रंग के होते है तथा फलियां चिकनी एवं चटकती नहीं हैं। दाना पीला, मध्यम आकार का तथा काली नाभिका (हायलम) वाला होता है। अच्छी अंकुरण क्षमता वाली इस किस्म की पैदावार 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा एवं अंगमारी रोगों के लिये प्रतिरोधी तथा मोजेक एवं तना मक्खी के लिये सहनशील है।

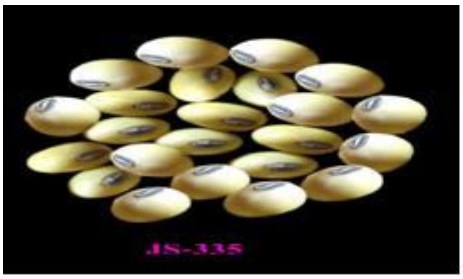

**(3) मैक्स 450:**

छोटे एवं पीले दानों वाली, मध्यम ऊँचाई की यह किस्म लगभग 105 दिन में पककर तैयार हो जाती है। बैंगनी पुष्प, अर्ध-सीमित वृद्धि, भूरे रोये, काली नाभिका वाली इस किस्म के 100 दानों का भार 8-10 ग्राम तथा उपज 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा तथा अन्य पत्ती रोगों से प्रतिरोधक तथा पत्ती खाने वाले कीड़ों से सहनशील होती है।

**(4) एन.आर.सी. 12 (अहिल्या-2):**

100-105 दिन में पकने वाली पीले दानों वाली इस किस्म में बैगनी फूल पाये जाते है। उत्तम अंकुरण क्षमता, दाना मध्यम पीला, नाभिका भूरी से काली होती है एवं 100 दानों का भार 10-12 ग्राम होता है। इसकी उपज क्षमता 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म जीवाणु पत्ती धब्बा तथा अन्य पर्ण भक्षी कीड़ों से, मोजेक तथा तना मक्खी के लिये सहनशील हैं।

**(5) एन.आर.सी. 37 (अहिल्या-4):**

चौड़ी, गहरी हरी पत्तियों वाली इस किस्म के पौधे सीधे रहते है। 100-105 दिन में पकने वाली इस किस्म के फूल सफेद, उत्तम अंकुरण, दाना मध्यम मोटा तथा नाभिका गहरी भूरी होती है। इसके

100 दानों का भार 10-13 ग्राम एवं पैदावार 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। यह किस्म भी जीवाणु पत्ती धब्बा एवं तना गलन रोग से मध्य प्रतिरोधी, तना मक्खी एवं पर्ण भक्षी कीटों से सहनशील होती है।

**(6) प्रताप सोया-1 (आर.ए.यू.एस. 5):**

गहरे बैंगनी फूलों एवं पीले दानों वाली इस किस्म के पौधे मध्यम ऊँचाई के तथा सीधे होते है। 95 दिन में पकने वाली इस किस्म की पत्तियां गहरी हरी तथा भूरे रोये वाली होती है। 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पैदावार देने वाली इस किस्म के 100 दानों का भार 10-12 ग्राम होता है। यह किस्म गर्डल बीटल नामक कीड़े से अत्यधिक प्रतिरोधी है। पर्ण भक्षी कीटों, पर्ण धब्बा एवं तना सड़न रोग से मध्यम प्रतिरोधी इस किस्म में तेल की मात्रा भी अधिक होती है।

**(7) जे.एस. 93-05:**

संकरी पत्तियों एवं बैंगनी फूलों वाली यह किस्म 90 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस किस्म में अंकुरण क्षमता उत्तम, दाना मध्यम मोटा तथा 100 दानों का भार 9-10 ग्राम होता है। यह किस्म कई प्रकार के रोगों एवं कीड़ों से मध्यम प्रतिरोधी है।

**(8) जे.एस. 97-52**

यह मध्यम अवधि एवं मध्यम दाने वाली प्रजाति है। यह अक्टूबर 2008 में केन्द्रीय प्रजाति अनुशंसा समिति (सी वी आर सी) नई दिल्ली द्वारा मध्य क्षेत्र के मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र व उत्तर-पूर्व के छत्तीसगढ़, झारखण्ड़ व मेघालय आदि प्रदेशों के लिये अनुशंसित है। यह व्यापक क्षेत्र के लिये अनुकूल है तथा विभिन्न जलवायवीय क्षेत्रों में अधिक उपज देने की क्षमता रखती है। इसमें बहु रोधी क्षमताऐं है। यह प्रमुख रोगों जैसे पीला मोजेक, जड़ सड़न, प्रमुख कीटों जैसे तना छेदक एवं पत्ती भक्षक कीटों एवं अधिक नमी के लिये प्रतिरोधी/सहनशील है। यह प्रजाति अपने विशिष्ट आकारीय लक्षणों जैसे सफेद फूल, हल्के रंग की फलियां, तने एवं पत्तियों पर रोंये एवं गहरी काली नाभिका (हाइलम) के साथ समरूपता एवं नवीनता रखती है। जे.एस. 97-52 के बीजों में अधिक अंकुरण एवं लम्बे समय तक भण्ड़ारण के बाद भी वांछनीय अंकुरण की विशेष क्षमता है। बीज दर 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, लाईन से लाईन की दूरी 45 से.मी. रखें। अच्छे पोषक स्तर वाली भारी मिट्टी एवं कुशल जल प्रबन्धन में उत्पादन क्षमता 25-30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है तथा 98-102 दिन में तैयार हो जाती है।

**(9) जे.एस. 95-60**

जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश द्वारा विकसित यह भारत में अतिशीघ्र पकने वाली किस्म है। यह जे.एस. 93-05 से भी 8-10 दिन पूर्व पककर तैयार हो जती है।

दाने का आकार अण्ड़ाकार-बोल्ड, नाभिका हल्की भूरी, दाना चमकदार पीला होता है तथा अंकुरण क्षमता 85-90 प्रतिशत होती है। फूलों का रंग नीला होता है। तना, पŸियाँ व फली चिकनी होती है। पŸियाँ गहरे हरे रंग की होती है।

जड़ सड़न व पर्णीय बीमारियों, पŸी चूसक कीटों, पŸियां काटने वाले कीटों के लिये प्रतिरोधी सहनशील क्षमता होती है तथा यह 85-88 दिन में पक जाती है।

बीज दर 80 किलो प्रति हैक्टेयर एवं लाइन से लाइन की दूरी 30 से.मी. पर औसत उत्पादन 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है।

**(10) प्रताप सोया-2**

यह किस्म उचित परिस्थितियों में 90-95 दिन में पककर 25-30 क्विंटल/हैक्टेयर की उपज देती है। इसमें तेल की मात्रा 18-20 प्रतिशत पायी जाती है। यह किस्म तम्बाकू इल्ली, गर्डल बीटल तथा अन्य पत्तियां खाने वाली कीटों से मध्यम प्रतिरोधी, पत्ती धब्बा रोग तथा अन्य बीमारियों से भी मध्यम प्रतिरोधी पायी गई है।

**(11) प्रताप राज-24 (आर.के.एस. 24)**

मध्यम ऊँचाई की यह किस्म 95-100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। फूल सफेद, पत्तियां गहरी हरी रंग की चैड़ी, तना मजबूत तथा पत्तियों, तने और फलियों पर भूरे रंग के रोये पाये जाते है। बीज हल्के पीले रंग के भूरी नाभिका वाले होते है। उचित परिस्थितियों में इसकी पैदावार 25-30 क्विं0/है0 होती है। इस किस्म में तेल की मात्रा 21.5 प्रतिशत होती है। यह किस्म गर्डल, बीटल, सेमी लूपर तथा तम्बाकू इल्ली से मध्यम प्रतिरोधी पायी गई है तथा पीत विषाणु रोग, चार कोल रोट (तना गलन) तथा पत्ती धब्बा रोगों से भी मध्य प्रतिरोधी पायी गई है।

## 6.11 खरपतवार प्रबंधन:

सोयाबीन फसल के अतिरिक्त उगने वाले अन्य पौधे खरपतवार कहलाते हैं । सोयाबीन उत्पादन मैं खरपतवार एक गम्भीर समस्या है । जो प्रकाश, जल, वायु एवं खनिजों इत्यादि के लिये सोयाबीन से प्रतिस्पर्दा करके उपज में भारी कमी हो लाते है।

**क्यों जरूरी है खरपतवार नियंत्रण:-** खरपतवारों से होने वाले नुकसान को हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते हैं जैसा कि कीड़ों एवं बीमारियों के नुकसान को देखा जा सकता है। यही कारण है कि किसान खरपतवारों के नियंत्रण में देरी कर जाते है। सोयाबीन खरीफ की फसल होने से इसमें विशेष रूप से खरपतवारों का शुरू से ही अधिक प्रकोप रहता है। सोयाबीन के साथ-साथ एवं इससे पूर्व उग कर खरपतवार, भूमि में मौजूद पोषक तत्वों, ऊपर से दिये गये उर्वरकों ( नत्रजन 25-65, फास्फोरस 5-11 व पोटाश 45-102 किग्रा./हैक्टेयर ) एवं जमीन की नमी को तेजी से अवशोषित करते हैं और अपनी वृद्धि तेजी से करते हैं जिसके कारण सोयाबीन की फसल को समुचित पोषक तत्व व जल प्राप्त नही हो पाता है। फलस्वरूप फसल की वृद्धि धीमी होती है एवं उपज में भारी कमी हो जाती है।

कई खरपतवार कीड़ों एवं बीमारियों को आश्रय देते है और बाद में यह कीट एवं बीमारियां फसलों में लग जाती है।

वर्षा न होने की स्थिति में खरपतवार भूमि की नमी को तेजी से ग्रहण कर ज्यादा पानी वाष्पोत्सर्जन द्वारा उड़ाते है जिससे फसल को पानी कम उपलब्ध होता है।

अन्ततः ज्यादा खरपतवारों के कारण फसल को काटने में भी परेशानी होती है, जिससे अधिक समय एवं धन खर्च होता है।

अनुसंधानों द्वारा यह स्पष्ट हो चुका है कि खरपतवार के वजन उनके शुष्क पदार्थ एवं सोयाबीन की प्रति पौधें, कुल उपज में नकारात्मक संबंध होता है। अनियंत्रित खरपतवारों द्वारा सोयाबीन में प्रति पौधें पर फलियां, दानों का भार व आकार, शाखाएं एवं उपज कम ( 25-85 प्रतिशत ) हो जाती है। खरपतवार सोयाबीन की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हंै जो स्थान, प्रजाति, समय, खरपतवारों की सघनता, शस्य, जलवायवीय स्थितियों एवं प्रबंधन के स्तर पर निर्भर करती है। सोयाबीन की फसल में मुख्य रूप से सांवा, सुरली, कुंडीजरा, रजान, हजारदाना, दुद्धी, दिवालिया, लहसुवा, भंगरा, भोखना, मोग्दया आदि खरपतवार प्रमुख रूप से पाये जाते है।

**खरपतवार नियंत्रण का क्रांतिक समय:-** सोयाबीन में खरपतवारों के प्रभाव का क्रांतिक समय बोने के 3-5 सप्ताह तक है। इस समय सोयाबीन को खरपतवारों से मुक्त रखा जाये तो अधिक उपज व लाभ मिलता है। अतः जहां तक संभव हो सोयाबीन में खरपतवार नियंत्रण बुवाई के 15-30 दिन तक करना जरूरी होता है।

**सोयाबीन की खड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण निराई-गुड़ाई द्वारा:-** बुवाई के साथ ही खरपतवारों का निकलना शुरू हो जाता है। जहां तक हो सके सोयाबीन को शुरू की अवस्था में खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिये। सोयाबीन की फसल में 15-20 तथा 30-40 दिनों की अवस्था पर खुरपी, कुदाली या अन्य कृषि यंत्रों से दो निराई-गुड़ाई अवश्य करें, इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मृदा में वायु संचार बढ़ने से सोयाबीन की अच्छी वृद्धि एवं उपज में बढ़ोत्तरी होती है, साथ ही नमी संरक्ष्ण भी होता है।

**डोरा विधि द्वारा:-** सोयाबीन की बुवाई यदि 30-45 सेमी. पर की गई है तो कतारों के मध्य 10-15 सेमी. के फाल (ब्लेड) वाले कल्टीवेटर या कुल्फा/डोरा को बैंलों/ट्रेक्टर द्वारा चलाकर भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है, परन्तु इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि पौधों की जड़ें न कटे व उखड़ने न पाये।

**रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण:-** प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने से एवं समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण कम समय में अधिक क्षेत्र में हाथों से श्रमिक द्वारा खरपतावार नियंत्रण कठिन हो जाता है, ऐसी स्थितियों में, खरपतवारों का रसायनिक नियंत्रण काफी कारगर साबित होता है। रसायनों द्वारा खरपतवारों के नियंत्रण से लागत भी कम आती है, समय की बचत होती है, और सोयाबीन की फसल को हानि नहीं पहुँचती है। खरपतवारनाशक, खरपतवारों को शीघ्र नष्ट कर देते है जिससे उनकी पुनः वृद्धि नही होती है, फूल व बीज नही बनते है तथा उनका प्रसारण नही हो पाता है जिससे अगले वर्ष फसल में खरपतवारों का प्रकोप काफी हद तक कम हो जाता है।

प्रयुक्त किये जाने वाले (अंकुरण पश्चात वाले) खरपतवार नाशक चुनिंदा प्रकार के होते हैं, जो खरपतवारों को भिन्न-भिन्न रसायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नही पहुँचाते है। चूंकि यह खरपतवारनाशक सोयाबीन की खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते है, अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियां रखनी चाहिये। जैसे विशिष्ट खरपतवारों के लिए विशिष्ट खरपतवारनाशक (तालिका-1) की सही मात्रा, सही समय, सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर कभी-कभी प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है।

**सरफेक्टेंट का प्रयोग अवश्य करें:-** खरीफ के मौसम में खरपतवारों के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशकों का छिड़काव करते-करते या 2-3 घंटे बाद बारिश भी आ जाती है और छिड़काव किये गये खरपतवारनाशक की काफी मात्रा पत्तियों से छिटक कर नीचे गिर जाती है और आशातीत परिणाम नही मिलते है। खरीफ में इन सभी से बचने के लिए दवाई चिपकाने व फैलाने वाला पदार्थ 'सरफेक्टेंट' 0.5% यानि करीब 500 मिली लीटर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिलाकर स्प्रे करने से खरपतवारनाशक, खरपतवारों की सम्पूर्ण पत्तियों पर फैलकर चिपक जाते हैं जिससे यदि 2-3 घंटे बाद बारिश आ भी जाती है तो दवाई का नुकसान काफी कम होता है। अतः सोयाबीन में खरपतवारनाशकों के साथ 'सरफेक्टेंट' मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो पाता है। स्प्रेयर की टंकी में पहले खरपतवारनाशक मिलाये तथा बाद में सरफेक्टेंट को डालकर स्प्रे करें।

**तालिका 1: सोयाबीन की फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशक (रसायन) तथा उनका विवरण।**

| | रसायन का नाम | रसायन का व्यावसायिक नाम | व्यावसायिक रसायन की मात्रा (ली/हे) |
|---|---|---|---|
| अ. | बुवाई से पूर्व उपयोगी रसायन: | | |
| 1 | फ्लूक्लोरालीन | बासालीन | 2.22 |
| 2 | ट्राइफ्लूरालीन | ट्रेफलान, फ्लोरा, ट्राइलेक्स आदि | 2.08 |
| ब. | बुवाई के तुरंत बाद (निर्गमन पूर्व) उपयोगी-रसायन: | | |
| 1 | एलाक्लोर | लासो, बोलाक्लोर, षोल आदि | 4.00 |
| 2 | एलाक्लोर दानेदार | लोसो-दानेदार | 20 कि.ग्रा. |
| 3 | म्टालोक्लोर | डुआल | 2.00 |
| 4 | क्लोमोझोन | कमाण्ड | 2.00 |
| 5 | पेन्डीमीथेलीन | स्टाम्प, टाटा पनीडा | 3.33 |
| स. | खड़ी फसल में उपयोगी रसायन (15 से 20 दिन बुवाई के बाद) | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 | इमाझेतापीर | परस्यूट | 1.00 |
| 2 | क्विझालोफॉप ईथाइल | टरगा सूपर | 1.00 |
| 3 | फिनॉक्सीप्रॉप-पी-ईथाइल | व्हिप सूपर | 0.75 |
| 4 | क्लोरीमुरान ईथाइल | क्लोबेन | 36 ग्रा. |

**खरपतवारनाशकों के प्रयोग संबंधी सावधानियां:**

1. रसायन छिड़कने वाले किट/मास्क का प्रयोग करें।
2. फ्लेटपेन/फ्लड जेट नोजल लगाकर छिड़काव करें।,
3. उचित समय पर सही मात्रा का प्रयोग करें।
4. छिड़काव हेतु निर्धारित रसायन मात्रा का पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
5. वायु के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें ताकि रसायन शरीर पर न गिरे।
6. छिड़काव के समय बिड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या अन्य चीज न खायें व खाली पेट स्प्रे न करें।
7. छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से करें।
8. छिड़काव पश्चात स्प्रेयर को अच्छी तरह साफ करके रखें।
9. रसायन के डिब्बों को तोड़कर, भूमि में गहरा गाढ़ देवें।
10. यदि हो सके तो छिड़काव रसायन की खरीद रसीद, अन्य जानकारियां जैसे नाम आदि कागज या डायरी में नोट करें।
11. पूर्णरूप से खाली पेट स्प्रे न करें एवं हो सकें तो एक साथी जरूर साथ ले जावें।
12. रसायनों को न सूंघे, न चखें और न ही स्पर्श करें अन्यथा जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
13. नींदानाशकों को लकड़ी की सहायता से घोलें और स्प्रे करने वाले के शरीर पर किसी प्रकार का घाव आदि न हो।
14. छिड़काव पश्चात शरीर व कपड़ों को साबुन से अच्छी तरह साफ करें।
15. खरपतवारनाशक छिड़कते समय या बाद में किसी प्रकार का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव हो तो तुरंत पास के अस्पताल में डॉक्टर को दिखायें।

## 6.12 सिंचाई प्रबन्धन:

सोयाबीन की फसल को वैसे तो सामान्य वर्षा की स्थिति में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु फूल आने एवं फलियों में दाना बनते समय पानी की कमी नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि इस समय पानी न मिलने पर फूल एवं फलियां झड जाती है, दाना छोटा रह जाता है एवं उपज की मात्रा में भी भारी कमी आ जाती है। साथ ही, पानी की कमी से दानों में प्रोटीन की मात्रा भी प्रभावित होती है। अतः उस समय वर्षा नहीं हो तो आवश्यकतानुसार 1-2 सिंचाई अवश्य करें।

## 6.13 रोग प्रबंधन:

- **पीलिया रोग:-** फसल में जब भी पीलापन दिखाई दे तभी 0.1 प्रतिशत गंधक के तेजाब या 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट ( हरा कसीस ) का छिड़काव करें।
- **जड़ व तना गलन रोग:-** सोयाबीन के अल्पायु वाले 15-20 दिन के पौधे इस रोग के आक्रमण से सूख कर मर जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट करें। अगले वर्ष उस खेत में सोयाबीन की बुवाई न करें। रोकथाम हेतु डेढ़ से दो किलो मेन्कोजेब का 600-700 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- **विषाणु रोग:-**सोयाबीन पर कई प्रकार के विषाणु रोगों का आक्रमण होता है जिसमें पीला विषाणु (यलो मोजेक) सोयाबीन विषाणु मुख्य है। इसके कारण पौधे की बढ़वार रूक जाती है, वे छोटे रह जाते हैं तथा रोगग्रसित पौधे के पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं और उनकी नसें साफ दिखाई देती है। 30-40 दिन की फसन पर केवल कुछ पौधो में ये लक्षण दिखाई देते हैं जो धीरे-धीरे बढ़कर पूरे खेत में फैल जाते हैं। रोगग्रस्त बीजों में 10 दिन की फसल पर ही यह रोग लग जाता है।

  रोकथाम हेतु रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट करें। रोग कीटो द्वारा फैलता है, अतः इसकी रोकथाम हेतु डायमिथोएट / मेटासिस्टोक्स 500-600 मिलीलीटर या फॉस्फोमिडोन 200 मिली लीटर दवा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15 दिन बाद पुनः छिड़काव करें। छिड़काव में स्टीकर या टीपोल मिलायें।
- **जीवाणु रोग:** यह रोग फसल में 40 दिन की अवस्था में लगता है। इसमें भूरे रंग के पश्चूलस बन जाते है। आर्द्रता के कारण रोग अधिक बढ़ता है। रोग ग्रस्त पौधों की पत्तियां गिर जाती हैं।

  रोकथाम हेतु 2 ग्राम स्टेप्टोसाइक्लिन 20 लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़कें। एक हैक्टेयर हेतु 50 ग्राम स्ट्रेप्ओसाइक्लिन की आवश्यकता होती है। आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें।
- **पत्ती धब्बा रोग:** बुवाई के 30 से 40 दिन बाद पत्तियों पर हल्के भूरे से गहरे भूरे धब्बे सरकोस्पोरा सोजिना, माइरोथिसियम रोराइडम, फिल्लोस्टिकटा सोजिकोला आदि फफूंद के कारण होते है। प्रारम्भ में ये छोटे होते है, लेकिन बाद में नमी के कारण ये आकार में बढ़ जाते है।

  रोकथाम हेतु एक से सवा किलो मैनकोजेब प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़कें।
- **माइकोप्लाज्मा:** सूक्ष्म जीवियों के कारण यह रोग होता हैं रोग ग्रस्त पौधें छोटे रह जाते है एवं उनमें जगह-जगह फुटान हो जाती है। कलियां अधिक बनती है। फलियां कम लगती है तथा छोटी रह जाती हैं कीड़े इस रोग को फेलाने में सहायक होते है। अतः कीट नियनत्रण हेतु डायमिथोएट या मिथाइल डिमेटोन 500 मिली लीटर दवा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर छिड़कें।

## 6.14 कीट प्रबन्धन

**फड़का:**

सोयाबीन की फसल उगते ही 5-7 दिन में फड़कें का प्रकोप शुरू हो जाता है। इनका प्रजनन खेतों की डोलियों पर उगी घास में होता हैं। ये जमीन की सतह पर फुदकते हुये नयी पत्तियों को काटते है तथा अधिक प्रकोप होने पर पूरी फसल नष्ट हो जाती है। नियन्त्रण हेतु मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिशत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकें। ध्यान रखें कि खेत की डोलियों पर 7-10 दिन के बाद भुरकाव करना आवश्यक है।

**तना व पत्ती छेदक:**

- तना व पत्ती छेदक एक ही प्रवर्ग के कीट है। इनके वयस्क विशेष प्रकार की छोटी मक्खी है। तना मक्खी पौधों के तने व कोमल टहनी के जोड़ पर ऊभरी छाल की सतह के नीचे अण्डा देती है। इनसे 3 से 5 दिन में लटे निकल कर कोमल टहनी के बीच का गूदा खा जाती है, फलस्वरूप टहनी मुरझा जाती है।
- पत्ती छेदक के अण्डे पत्ती की ऊपरी सतह पर दिये जाते है। जिनसे 3 से 5 दिन में लटें निकल कर पत्ती की दोनों सतह के बीच सुरंग बनाती है। हर सुरंग में एक लट होती है। सुरंग के कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया कम होने से पैदावार कम होती है।

  नियंत्रण हेतु फैन्थयॉन या लेबासिड या क्यूनॉलफॉस 500-700 मिली लीटर या मिथाइल पैराथयॉन 300-500 मिली लीटर को प्रति हैक्टेयर की दर से 500-700 लीटर पानी में घोलकर अच्छी प्रकार से छिड़के। आवश्यकतानुसार तीन सप्ताह बाद पुलः छिड़काव दोहरावें।

**फुदके (तेला-जैसिड्स):**

सोयाबीन की फसल में तेला कीट बहुत नुकसान करता है। वे छोटे-छोटे 3 से 5 मिली लीटर लम्बे कीट पत्तियों का रस चूसते है फलस्वरूप पत्तियॉ पीली पड़कर सूख जाती है और पैदावार प्रभावित होती है। ये कीट विषाणु रोग (वायरस) को फैलाने में भी मदद करते है। वैंसे इनका प्रकोप फसल के पूरे समय रहता है, किन्तु उगने के तीसरे सप्ताह से फलियॉ आने तक अधिक होता है।

- इन कीटो की रोकथाम हेतु संस्थानिक (सिस्टेमिक) कीटनाशक दवा अधिक उपयोगी रहती है। डायमिथोएट-30 ई.सी. या फारमोथियॉन या मिथाइल डिमेटोन 400-600 मिली लीटर दवा को प्रति हैक्टेयर की दर से 400-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार तीन सप्ताह पश्चात् छिड़काव पुनः दोहरावें।

**गर्डल बीटल:**

यह इस फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है। भृंग अथवा बीटल प्रवर्ग के इस कीट का वयस्क करीबन 10 से 12 मिली मीटर लम्बा व 3 से 4 मिली मीटर चैड़ा लाल काले रंग का कड़े पंख वाला कीट है। अन्य भृंग की अपेक्षा यह तेजी से उड़ता है जो 25-30 दिन की सोयाबीन या ढेचा की फसल पर देखा जा सकता है। अनुमानतः 25-30 दिन की फसल पर वयस्क मादा पत्तियों के तनें या डंठल पर 1-1.5 सेन्टीमीटर के फासले पर दो घेरे (कुण्डलियॉ) बनाती है तथा

इन घेरे के बीच एक अण्डा देती है। अण्डे 5-6 दिन में पीले हो जाते है तथा इनसे 1.5-2 मिली मीटर लम्बाई की पीले रंग की लट् निकलती है। ये लट्ठे डण्ठल का गूदा खाती हुई तने की तरफ जाकर तने में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार शाखाओं पर भी घेरे बनाकर अण्डे देती है। पूर्ण विकसित लटे 2-3 सेन्टीमीटर लम्बी व 4-5 मिली मीटर मोटी होती है। ये गहरे पीले रंग की होती है। तने के गूद्दे को खाकर खोखला कर देती है। बाद में ये शंकु अवस्था में जमीन में या तने में रहती है। जिनसे व्यस्क निकलते है। इनके कारण 20-30 प्रतिशत तक पैदावार में हानि होती है। जल्दी बोयी गई फसल पर इसका प्रकोप ज्यादा होता है।

- रोकथाम हेतु 35-40 दिन की फसल पर फेन्थियॉन या डायमिथेएट 30 ई.सी. या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. 600-7000 मिली लीटर दवा की प्रति हैक्टेयर की दर से 400-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये। तीन सप्ताह बाद छिड़काव/भुरकाव दोहरावें। गर्डल बीटल के नियन्त्रण हेतु ढे. चा की फसल अच्छीपटेफसल के रूप में पाई गई है। आधा किलो ऐसीफेट घुलनशील चूण्र प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़कें।

**बालो वाली लट्:**

फली लगने के समय काली, लाल व भूरे रंग के बालों वाली लट् पत्तियों को खाकर छलनी कर देती है तथा पत्तियों की नसों का जाल सा रह जाता है। शुरू में प्रकोप एक-दो स्थानों पर केन्द्रित रहता है जहॉ मादा 500-600 अण्डे देती है। बाद में लटे चारों तरफ फेल कर आकार में बढ़ते हुए पत्तियों को खाती है, जिसका प्रभाव पैदावार पर पड़ता है। शुरू में इसका प्रकोप कुछ स्थानों पर ही होता है। पत्तियॉ सफेद तथा नसे दूर से दिखाई देती है। ऐसे पौधों को अण्डो व लटों सहित निकाल कर नष्ट कर देंवे अथवा उसी समय कीटनाशक का भुरकाव/छिड़काव करें।

- कीट प्रभावित पोधों को अण्डों व लट्ठो सहित उखाड़ कर नष्ट करें। रोकथाम हेतु क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाईल पैराथयॉन 2 प्रतिशत 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें। फोरेट 10 जी. 15 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलावें। यह ध्यान रखें कि तना मक्खी में फोरेट केवल एण्डेमिक क्षेत्रों में ही काम में लेंवे।

**सोयाबीन की हरी अर्ध कुण्डलक (सेमीलूपर):**

इस कीट का प्रोढ़ पत्तियों पर अण्डे देता है, जिससे इल्लियॉ निकल कर पत्ती को खेती है। अधिक प्रकोप होने की दशा में लट्ठे पत्तियों को खाकर छलनी कर देती है।

- रोकथाम के लिये ट्राइजोफॉस 40 ई.सी. का 800 मिली लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 25 तथा 45 दिन बाद छिड़काव करें। या
- रोकथाम हेतु कीटों का प्रकोप दिखाई देने पर प्रति हैक्टेयर 1 लीटर बी.टी. का समुचित पानी की मात्रा में घोल बनाकर छिड़काव करें।
- 30-35 दिन की फसल अवस्था पर प्रति हैक्टेयर 1.5 लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या क्लोरोपायरिफॉस 20 ई.सी. का समुचित पानी की मात्रा में घोल बनाकर छिडकाव करें। आवश्यकता होने पर 40-50 (15 दिन बाद) दिन की फसल अवस्था पर छिड़काव पुनः दोहरावें।

- सुरक्षित लूफेन्यूरान 5 ई.सी. 500 मिली लीटर या डाइफ्लूबेन्जुरान 25 डब्ल्यू.पी. 350 ग्राम को समुचित पानी की मात्रा में घोल बनाकर कीट की प्रारम्भिक अवस्था में छिड़काव करें। आवश्यकता होने पर 15 दिन बाद पुनः दोहरावें।
- बायोकीटनाशक (बी.टी.) व रासायनिक कीटनाशक मोनोक्रोटोफॉस और फफूंदनाशक बेविस्टिन या टोपसिन-एम का टेंक आधारित सम्मिश्रण सोयाबीन में कीट (ग्रीन सेमीलूपर) के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है।

सोयाबीन में कीटों के प्रकोप के नियन्त्रण हेतु विभिन्न कीटनाशकों में क्लोरोपायरीफाॅस आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक उपयुक्त है।

**सोयाबीन में मुख्य कीटों का आर्थिक हानिस्तर**

| कीट का नाम | आर्थिक हानि स्तर एवं फसल की अवस्था |
|---|---|
| 1 हरी अर्द्धकुण्डलक इल्ली | 4 इल्लियां/मीटर, फूल उगने की अवस्था में |
| 2 तम्बाकू इल्ली | 10 इल्लियां/मीटर, फूल उगने की अवस्था में<br>3 इल्लियां/मीटर, फली लगने की अवस्था में |

## 6.15 कटाई एव गहाई:

सोयाबीन की फसल की कटाई पत्तियों पीली पड़ते ही करनी चाहिये। काटी गई फसल को खलिहान में पहुँचाना आवश्यक है। देरी से कटाई करने पर फलियाँ चटकने से दाने झड़ने की संभावना बढ़ जाती है। कटाई के समय दानों में नमी 15-17 प्रतिशत तक रहनी चाहिये।

चूंकि कटाई के समय नमी की मात्रा अधिक रहती है। अतः खलिहान में भी फसल उलटते-पलटते फफूंद लग जायेगी जिससे बीज अंकुरण क्षमता कम हो जायेगी एवं दाना भी खराब हो जायेगा।

फसल को 2-3 दिन सुखाकर थ्रेशर से धीमी गति (300-400 आर.पी.एम.) पर गहाई करें। गहाई के समय इस बात का ध्यान रखें कि बीज का छिलका न उतरे एवं बीज में दरार न पड़े। थ्रेशर की गति को कम करने के लिये बड़ी पुली लगाएं। बहुत अधिक सूखी फसल की गहाई से दाना अधिक टूटता है।

## 6.16 भण्डारण:

बीज का भण्डारण दानों को 3-4 दिन अच्छी तरह सुखाकर ही करें। भण्डारण बोरियों में करें एव ठण्डे और हवादार स्थान पर रखें।

यदि फसल बीज के लिये तैयार की गई है तो उसकी गहाई थ्रेशर से न करें वरना अंकुरण क्षमता प्रभावित हो सकती है।

## 6.17 सोयाबीन की उत्पादकता में वृद्धि हेतु कार्य योजना:-

- गर्मी में गहरी जुताई करें जिससे कीट के शंकू सतह पर आकर तापमान से नष्ट हो जाऐं।

- जहाँ तक संभव हो तम्बाकू इल्ली विरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- सिफारिशानुसार बीज दर (80 किलो प्रति हैक्टेयर) का प्रयोग करें एवं उचित पौध संख्या हेतु कतार से कतार की दूरी 30-45 सेमी. रखें।
- स्किप रो बिजाई (प्रत्येक दस पंक्तियों के बाद एक पंक्ति खाली छोड़े, जिससे सिंचाई, दवा का छिड़काव व कीट सर्वेक्षण में सुविधा रहे) करें।
- खेत एवं आस-पास की सफाई तथा खरपतवार का प्रबन्धन करें।
- फसल चक्र में सोयाबीन के अलावा अन्य फसलें जैंसे ज्वार, धान, अरहर, मक्का, मूंॅग, उड़द आदि का समावेश करें।
- खड़ी फसल में यूरिया का छिड़काव नहीं करें।
- बोने से पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता जाँच लें।
- बीज को पहले फफूंदनाशक दवा से तत्पश्चात कल्चर से उपचारित कर तुरन्त बो दें।
- उर्वरकों का प्रयोग अवश्य करें
- उर्वरकों को बीज के साथ कभी न मिलायें
- बुवाई ठीक समय पर करें
- उन्नत किस्मों का बीज काम लें।
- खरपतवार नाशक दवा का प्रयोग अवश्य करें।
- बुवाई के समय फोरेट का प्रयोग करें।
- फलियो का हरापन समाप्त होते ही तथा पत्तियाँ पीली पड़ते ही फसल काट लें।
- फसल काटने के 2-3 दिन बाद थ्रेशर से धीमी गति पर गहाई करें।

## 6.18 सारांश:

उपर्युक्त वर्णित इकाई में आप सोयाबीन की उन्नत खेती के बारे में परिचित हुए होगें। इस इकाई में सोयाबीन की उत्पत्ति से लेकर भंडारण तक वर्णन किया गया है। उक्त अध्याय को पढने के बाद सोयाबीन में लगने वाले रोग व कीट की समस्या से अवगत हो गये होंगे साथ ही, उनका निदान भी दिया गया है। सोयाबीन में सबसे ज्यादा खरपतवार से हानि होती है। उसका भी इसमें निदान दिया गया है। सोयाबीन में आज तिलहनी एवं दलहनी दोनों रूपों में जाना जाता है, लेकिन तिलहनी में आज भारत के क्षेत्रफल एवं उत्पादन के हिसाब से प्रथम स्थान है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने सोयाबीन को " गोल्डन बीन " की उपाधि दी। क्योंकि यह पौष्टिक तत्वों से परिपूर्ण है और स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभों के लिए उपयुक्त है। इसमें लगभग 40 प्रतिशत प्रोटीन है जो कि दालों में सर्वाधिक है। प्रोटीन उत्तम गुणवत्ता व कम कीमत का है। इसके प्रोटीन में सभी आवश्यक अमिनों अम्ल मनुष्य के उपयुक्त मात्रा व अनुपात में उपस्थित है। सोयाबीन में 20 प्रतिशत तेल होता है। जिसमें ओमेगा-6 एवं ओमेगा-3 आवश्यक वसीय अम्ल अधिक मात्रा में पाये जाते है और ये अम्ल हृदय रोगी के लिए विशेषरूप से उत्तम होते है।

## 6.19 बोध प्रश्न

प्रश्न 1. सोयाबीन की खेती का वर्णन कीजिए। अन्य फसलों की तुलना में इसकी महत्व समझाइयें ?

प्रश्न 2. राजस्थान में सोयाबीन की खेती के महत्व एवं उसके भविष्य पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये ?

प्रश्न 3. सोयाबीन में खरपतवार प्रबन्धन कैंसे करें ?

प्रश्न 4. सोयाबीन की उन्नत खेती के लिए निम्न पर टिप्पणी लिखिए।

1. उन्नत जातियां 2. बोने का समय व विधि 3. सिंचाई 4. उर्वरक प्रबन्ध
5. रोग एवं उपचार 6. बीज उपचार 7. कीट पतंगे एवं उनकी रोकथाम

प्रश्न 5. टिप्पणी लिखिए।

1. आर्थिक महत्व 2. जलवायु की आवश्यकता 3. राइजोबियम कल्चर
4. खरीफ में उगाई जाने वाली दलहन फसलों के नाम

## 6.20 संदर्भ ग्रंथः


1. सिंह, ओ.पी. एवं श्रीवास्तव, एस.के., 1989, सोयाबीन (संकलित लेख), एग्रो बोटनिकल पब्लिशर्स, बीकानेर, पृष्ठः 1-256.
2. राम, हरिहर एवं त्रिखा, रविन्द्र नाथ, 1997, सोयाबीन की खेती, कृषि सूचना एवं प्रकाशन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली-110012, पृष्ठ संख्या 1-239.
3. तोमर, सदाचारी सिंह एवं नेणवाणी, एम. एम., 1999, सोयाबीनः कृषि, इन्जीनियरी, रसायन एवं पोषण, प्रकाशन विभाग जयपुर, पृष्ठ 1-140.
4. अनाम (एनोनिमस) 2012-13, निदेशक का प्रतिवेदन एवं परीक्षणों का सारांश - तालिकांए
5. अखिल भारतीय समन्वित सोयाबीन अनुसंधान परियोजना, पृष्ठ 9, सोयाबीन अनुसंधान निदेशालय, इन्दौर।

# इकाई 7

# बाजरा

**इकाई की रूपरेखा**


7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 वितरण
7.3 जलवायु
7.4 भूमि एवं इसकी तैयारी
7.5 भूमि उपचार
7.6 उन्नत किस्में
7.7 बीज एवं बीज उपचार
7.8 बुवाई का समय एवं विधि
7.9 अन्तःशस्य
7.10 पोषण प्रबन्ध
7.11 निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबन्ध
7.12 सिंचाई प्रबन्ध
7.13 पादप संरक्षण
7.14 कटाई एवं गहाई
7.15 उपज
7.16 भण्डारण
7.17 फसल को सूखे से बचाने के प्रभावी बिन्दू
7.18 संरांश
7.19 बहु चयनात्मक प्रश्न
7.20 सन्दर्भ


## 7.0 उद्देश्य:

भारत के शुष्क (बारानी) एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में बाजरा की फसल का प्रमुख स्थान है। मोटे अनाजों में बाजरा एक प्रमुख फसल हैं। बारानी क्षेत्रों में रहने वाले गरीब आदमियों के लिए बाजरा मुख्य भोजन का स्त्रोत है सुखे की स्थिती में बाजरा की फसल को अगर प्रर्याप्त नमी में बुवाई कर देते है तो वह कुछ पैदावार अवश्य देती है, क्योंकि इस फसल में एक विषेष गुण है कि पानी की कमी में यह फसल अपनी बढ़वार को कम करके बालियां निकालने, फूल बनने एवं दाना आदि कि क्रिया में चली जाती है, जबकि अन्य फसले सुखे कि स्थिती में वही नष्ट हो जाती है। यह अन्य खाद्यान्न फसलों की तुलना में अति शुष्क, कम उपजाऊ एवं कम उर्वरता वाली भूमि

में अधिक पैदावार देती है क्योंकि बाजरा में जड़ो का विकास शीघ्र होने पर भूमि से अधिक नमी एवं पोषक तत्वों का अवशोषण करता है।

## 7.1 प्रस्तावना:

बाजरा में अधिक मात्रा में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण पाये जाते है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 11.6 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 67.0 प्रतिशत, वसा की मात्रा 5.0 प्रतिशत तथा खनिज लवण 2.7 प्रतिशत पाये जाते है। बाजरे में गेहूँ की तुलना में अधिक कैलोरी पायी जाती है, क्योंकि इसमें 50 प्रतिशत से अधिक पालीअसंप्तृत वसा होती है। बाजरा ही एक ऐसी फसल है जिसके दाने में ग्लूटेन नहीं पाया जाता तथा उसको पकाने पर क्षारीय गुणवत्ता के कारण गेहूँ से अलर्जी वाले मरीजो के लिये एक अच्छा भोजन का स्त्रोत भी है।

## 7.2 वितरण

सम्पूर्ण भारत वर्ष में बाजरे की खेती खरीफ (वर्षा) मौसम में मुख्यतया राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और महाराष्ट्र में की जाती हैं। क्योंकि इन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है अतः कम पानी की मांग वाली बाजरा फसल को आसानी से उगाया जा सकता है। परन्तु इसकी खेती रबी (वर्षा पश्चात्) के मौसम में आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं पांडिचेरी में की जाती है। जायद में बाजरे की खेती गुजरात राज्य में अधिक उत्पादकता तथा अच्छी गुणवत्ता युक्त की जाती है। राजस्थान में इसकी खेती सभी जिलो विशेषकर बाडमेर, नागौर, जोधपुर, जयपुर, सीकर, झुन्झुनू, चुरू, बीकानेर व भरतपुर इत्यादि में सफलतापूर्वक ली जा रही है।

शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए अल्प अवधि की यह फसल सूखा सहन करके भी खाद्यान्न के रूप में सुविख्यात है। वर्ष 2009 के आंकड़ो के अनुसार भारत में इसका कुल क्षेत्रफल 8.7 मिलियन हैक्टेयर, उत्पादन 8.9 मिलियन टन तथा उत्पादकता 1014 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर थी। राजस्थान में इसका क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता क्रमशः 5.49 मिलियन हैक्टेयर, 6.09 मिलियन टन तथा 1110 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर है (Anonymous, 2010-11).

## 7.3 जलवायु:

बाजरा शीघ्र बढनें वाला पौधा है । आमतौर पर इसकी खेती कम वर्षा वाले क्षेत्रों मे की जाती है। बाजरा की वानस्पतिक वृदि के लिए नम तथा उष्ण मौसम अधिक उपयुक्त रहता है । अधिक वर्षा फसल को हानि पहुंचाती है ।

शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में इसकी उत्पादकता वर्षा पर निर्भर करती है। जिन क्षेत्रों में औसतन 250-300 मि.मि. वर्षा होती है वहां पर इसकी फसल का उत्पादन लिया जा सकता है, किन्तु जिन क्षेत्रो में वर्षा 400-750 मि.मि. तक होती है। वहां पर इसकी पैदावार बहुत अच्छी होती है। बाजरे में अन्य धान्य फसलों की तुलना में अधिक तापमान के प्रति सहनषीलता पायी जाती है। इसके लिए 20 से 28 डिग्री सेन्टीग्रेड़ तापक्रम उपयुक्त रहता है। विभिन्न राज्यों में वर्षानुसार बाजरा उत्पादन की स्थिती सारणी 1 में दी गई है -

**सारणी 1: विभिन्न राज्यों में वर्षानुसार बाजरा उत्पादन की स्थिती:-**

| क्र.सं. | राज्य | भारत के कुल क्षेत्रफल का हिस्सा (प्रतिशत) | औसतन वर्षा (मि.मी.) | उत्पादकता (किग्रा./है.) |
|---|---|---|---|---|
| 1 | राजस्थान | 51.0 | 494 | 788 |
| 2 | महाराष्ट्र | 15.3 | 939 | 673 |
| 3 | गुजरात | 10.6 | 842 | 1277 |
| 4 | उत्तर प्रदेश | 9.2 | 960 | 1235 |
| 5 | हरियाणा | 6.2 | 617 | 1331 |
| 6 | कर्नाटक | 3.0 | 928 | 532 |
| 7 | मध्य प्रदेश | 1.9 | 1017 | 1150 |
| 8 | तमिलनाडु | 1.4 | 998 | 1144 |
| 9 | आन्ध्रप्रदेश | 1.1 | 911 | 872 |

## 7.4 भूमि एवं इसकी तैयारी:

बाजरे की अच्छी पैदावार के लिए बलुई, बलुई दोमट एवं अन्य प्रकार की हल्की मिट्टी उपयुक्त होती है। भारी मिट्टी एवं जल भराव वाली भूमि बाजरा की खेती के लिए उपयुक्त नहीं रहती है। भूमि का जल निकास उत्तम होना आवश्यक है।

ग्रीष्म ऋतु में खेत की गहरी जुताई करने से भूमि में मौजूद खरपतवार हानिकारक कीड़े, मकोड़े और बिमारिया फैलाने वाले विषाणु नष्ट हो जाते है साथ ही भूमि की जल संचय करने की क्षमता बढ़ जाती है। वर्षा ऋतु के शुरू होने पर दो या तीन जुताई कर इसे एकदम भुरभुरी बनानी चाहिए। चूंकि बाजरा का बीज छोटा होता है अतः इसकी बुवाई अधिक गहरी नहीं करें।

## 7.5 भूमि उपचार:

यदि खेत में भूमिगत कीटों की समस्या हो तो खेत का भूमि उपचार करना चाहिए। खेतों में बुवाई से पूर्व फोरेट 10 जी 25 किलो प्रति हैक्टेयर डाले। जिन क्षेत्रों में केवल दीमक की समस्या हो तो क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत डस्ट या कार्बोरिल 5 प्रतिशत डस्ट 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलाकर जुताई करें। जहां पर सफेद लट की समस्या हो तो मानसून पूर्व की वर्षा के समय भूमि से प्रौढ़ भृंग निकलकर परजीवी वृक्षों जैंसे खेजड़ी, बेर, नीम, अमरूद एवं आम आदि पर रात्रि को बैठकर एकत्र होते है तथा प्रजनन कार्य करते है। ऐसी स्थिति में रात्रि में ही पेड़ों पर मोनोक्राटोफॉस 36 एस.एल. 1.0 से 1.5 मि.ली. या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 3.0 मि.ली. या कार्बोरिल 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

अच्छा तो यह रहे कि बांस से पेड़ो की टहनियों को हिलाकर भृंगों को नीचे गिरने पर कीटनाशक दवा का छिड़काव करें। सफेद लट का प्रकोप होने पर फोरेट 10 प्रतिषत कण या क्यूनॉलफॉस 5 प्रतिषत चूर्ण 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बीज के साथ उपयोग करना चाहिए ।

## 7.6 उन्नत किस्में:

विभिन्न राज्यों के लिए बाजरे की अनुमोदित उन्नत किस्में सारणी-2 में दर्शायी गई है।

**सारणी 2 - विभिन्न राज्यों के लिए अनुमोदित बाजरे की उन्नत किस्में:-**

| **क्र.सं.** | **किस्म का नाम** | **पकने की अवधि (दिनों में)** | **उत्पादन क्षमता (क्विं./है.)** | **अनुमोदित राज्य** | **टिप्पणी** |
|---|---|---|---|---|---|
| **संकर किस्में** | | | | | |
| 1 | एच.एच.बी.-67 | 62 | 20-25 | राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, तमिलनाडु | अगेती व पछेती बुवाई हेतु उपयुक्त है। ये तुलासिता रोगरोधी किस्म है। |
| 2 | पुसा-444 | 80 | 18-24 | राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु | - |
| 3 | पुसा-605 | 74-80 | 20-25 | हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान | अगेती, सामान्य व पछेती बुवाई हेतु उपयुक्त है। |
| 4 | पुसा-415 | 78 | 20-24 | गुजरात, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश | - |
| 5 | जी.एच.बी-558 | 75-80 | 22-25 | गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, | - |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | राजस्थान, तमिलनाडु | |
| 6 | जी.एच.बी-557 | 73-77 | 20-25 | गुजरात, हरियाणा | - |
| 7 | जी.एच.बी-316 | 80-85 | 22-28 | गुजरात, हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश | - |
| 8 | आर.एच.बी-121 | 75-78 | 18-20 | गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश | ये किस्म जोगिया रोग रोधी है। |
| 9 | जी.के. -1004 | 75-80 | 20-24 | आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक महाराष्ट्र, तमिलनाडु | ग्रीष्मकालीन एवं खरीफ दोनो के लिए |
| 10 | आई.सी.एम.एच.-356 | 75-80 | 18-24 | राजस्थान, गुजरात, हरियाणा मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु | सूखे के लिए मध्यम सहनशील व डाउनी मिल्डयु रोगरोधी |
| 11 | पी.ए.सी.-903 | 75-82 | 20-24 | आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु | - |
| 12 | आईसीपीटी-8203 | 70-75 | 15-20 | राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश | सूखारोधी व डाउनी मिल्डयु रोगरोधी |
| 13 | एम.एच.-179 | 85-90 | 20-25 | राजस्थानये | किस्म जोगिया रोग रोधी है। |
| **संकुल किस्में** | | | | | |
| 1 | राज-171 | 80-85 | 16-20 | राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, | दोहरे उपयोग दाना एवं चारा दोनों के लिए |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | उत्तर प्रदेश, पंजाब | |
| 2 | आर.सी.बी.-2 | 80-85 | 15-20 | राजस्थान | मोटे दाने एवं अधिक फूटान वाली किस्म। |
| 3 | डब्ल्यू.सी.सी.-75 | 85-90 | 15-16 | राजस्थान | तुलासिता रोगरोधी किस्म है। |
| 4 | पुसा कम्पोजिट (एम.पी. 334) | 78 | 14-18 | राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाब | सिंचित क्षेत्रों के लिए |
| 5 | आईसीएमवी.-221 | 70-80 | 18-22 | महाराष्ट्र, कर्नाटक, पांडीचेरी, तमिलनाडु | अगेती फसल के लिए |
| 6 | एम.पी.-406 (सी.जेड.पी. 9802) | 75-77 | 20-22 | | राजस्थान, गुजरात, हरियाणाअगेती एवं दोहरे उपयोग (दाना एवं चारा के लिए) |

## 7.7 बीज एवं बीज उपचार:

बाजरा की अच्छी फसल के लिए सामान्यतः 4-5 किलो बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। संकर एवं प्रमाणित बीज 4 किलो प्रति हैक्टेयर ही बोंये।

गुन्दिया या चैंपा से फसल को बचाने के लिए बीज को 20 प्रतिषत नमक के धोल (1 किलो नमक 5 लीटर पानी) में लगभग पांच मिनट तक डुबोएं। ऊपर तैरते हुए हल्के बीजों एवं अन्य बिजातीय पदार्थ को छलनी से निकालें। फिर साफ पानी से दो बार धोकर छाया में सुखायें। इसके बाद बीज को केप्टान 3 ग्राम या थायरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज में मिलाकर बीज उपचार करें। दीमक की रोकथाम हेतु 4 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस प्रति किलों बीज की दर से उपचार करें। इसके बाद 600 ग्राम प्रति हैक्टेयर एजेटॉबेक्टर कल्चर से उपचारित कर बुवाई करें। इस प्रकार कल्चर से उपयारित बीज की बुवाई करने से 19-20 किलो नत्रजन/है. की बचत की जा सकती है। बाजरे के बीज को थायोयूरिया से बीज उपचार 500 पी.पी.एम. (आधा ग्राम थायोयूरिया प्रति लीटर पानी में धोल बनाकर) करने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है।

## 7.8 बुवाई का समय एवं विधि:

बाजरा की बुवाई सामान्यतया जून मध्य से जुलाई के तृतीय सप्ताह तक की जाती है। किन्तु शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में वर्षा नियमित नहीं होने से जब भी पहली अच्छी वर्षा हो उसी

समय बुवाई करना चाहिए। बीज को 3 से 5 सेमी गहरा बोये जिससे अंकुरण सफलता पूर्वक हो सकें। कतार से कतार की दूरी 40-45 सेन्टीमीटर तथा पौधों से पौधों की दूरी 15 सेमी रखते हुये इसके कूंड/ऊमरे पूरब-पश्चिम दिशा में निकालकर बुवाई करें। अधिक पैदावार लेने के लिए एक हैक्टेयर बाजरे के खेत में पौधों की वांछित संख्या 1 लाख 75 हजार से 2 लाख तक उपयुक्त रहती है। बाजरे की बुवाई मुख्यतया तीन विधियों द्वारा की जाती है:-

i. **पण्समतल सतह पर सीधी बुवाई:** बाजरे की लाइनों में सीधी बुवाई हल या सीड़ ड्रिल के द्वारा 45 सेमी की दूरी पर करें।

ii. **पपण्बेड विधि:** कम पानी की स्थिती में अधिक नमी का सदुपयोग करने के लिए या जहाँ जल भराव अधिक होता है वहां बेड विधि से बुवाई करना अधिक लाभदायक पाया गया है।

iii. **पपपण्वृहत क्यारी एवं नाली विधि:** भारी मिट्टी और अधिक वर्षा वाले क्षैत्रों में इस विधि द्वारा बाजरे की बुवाई करने से फसल में उचित जल निकास, मृदा वातन और नमी संरक्षण रहता है।

## 7.9 अन्तःशस्य:

अनिश्चित वर्षा वाले क्षैत्रों में निश्चित तौर पर बाजरे में अन्तःशस्यावर्तन द्वारा मिश्रित फसल बोना लाभदायक रहता है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग दलहन एवं तिलहन फसलें बाजरे के साथ उगाई जाती है। अन्तःफसलीकरण के लिए बाजरा की कतारों की दूरी 45 सेमी से बढ़ाकर 60 सेमी तथा बाजरा की दो कतारों (30/60 सेमी) के मध्य विभिन्न फसलें बो दी जाती है। अन्तःफसलीकरण से अन्य किसी लागत के बिना किसानों को अतिरिक्त आय बोनस के रूप में प्राप्त होती है और मौसम के प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कम से कम एक फसल पैदावार देने में सक्षम रहती है।

**सारणी 3: बाजरे में अन्तःशस्यार्वतन के लिए उपयुक्त फसले:-**

| क्र.सं. | अनुमोदित फसलें | राज्य/क्षेत्र | कतार अनुपात |
|---|---|---|---|
| 1 | बाजरा+ग्वार | राजस्थान, हरियाणा | - |
| 2 | बाजरा+लोबिया | राजस्थान, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु | 2:1 अनुपात |
| 3 | बाजरा+मूंग | राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु | 2:1 अनुपात |
| 4 | बाजरा+मोठ | पश्चिम राजस्थान, महाराष्ट्र | 2:1 अनुपात |
| 5 | बाजरा+अरहर/सोयाबीन | महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, | 2:1/4:2 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | तमिलनाडु | अनुपात |
| 6 | बाजरा+तिल | उत्तरर प्रदेश, गुजरात | - |
| 7 | बाजरा+सूरजमुखी | महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु | 4:2 अनुपात |
| 8 | बाजरा+उड़द | महाराष्ट्र | 2:1 अनुपात |

## 7.10 पोषण प्रबन्ध:

किसानों द्वारा बाजरे की फसल में रासायनिक उर्वरक का प्रयोग बहुत कम या नही के बराबर किया जा रहा है। अच्छा तो यह रहे कि बुवाई पूर्व भूमि का परीक्षण कराकर सिफारिश के अनुसार ही रासायनिक खाद का उपयोग करें। बाजरे की अधिक उपज लेने के लिए देषी खाद के साथ-साथ उर्वरकों का भी प्रयोग करना चाहिए। बाजरे में प्रति हैक्टेयर 10-15 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर/कम्पोस्ट की खाद बुवाई पूर्व डालें। इसके अलावा देशी प्रजाति के लिए 40-50 किलो नत्रजन, 30-40 किलो फॉस्फोरस तथा 20-30 किलो पोटाश तथा संकर प्रजाति के लिए 60-90 किलो नत्रजन, 40-50 किलो फॉस्फोरस व 30-40 किलो पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा और फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई पूर्व डालें। नत्रजन की शेष आधी मात्रा बुआई 25-30 दिन बाद वर्षा वाले दिन छिटकंवा विधि द्वारा देना लाभदायक रहता है।

थायोयूरिया जैव-नियामक का पर्णीय छिड़काव 1000 पीपीएम (एक ग्राम थोयोयूरिया प्रति लीटर पानी में धोल बनाकर) करने से बाजरे की उपज में बढ़ोत्तरी की जा सकती है क्योंकि सूखे की स्थिति में पौधों के अन्दर सल्फाहाइड्री समूह की मात्रा में कमी होने के कारण प्रोटीन की क्रियाषीलता कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में सल्फाहाइड्रील समूह युक्त रसायन (SH Group) का प्रयोग निष्चित ही प्रभावकारी व उपयोगी साबित होता है। थायोयूरिया जैव नियामक के प्रयोग से बाजरे की उत्पादकता पर प्रभाव सारणी-4 में दर्शाया गया है।

**सारणी - 4: थायोयूरिया के प्रयोग से बाजरे की उत्पादकता पर प्रभाव:-**

| उपचार | दानों की उपज (किग्रा/है.) | | अनुपचारित पर बढ़ोत्तरी | | औसत शुद्ध लाभ (रू./है.) |
|---|---|---|---|---|---|
| | जोधपुर (कृ.अ.केन्द्र) | जयपुर (कृ.अ.केन्द्र) | जोधपुर (कृ.अ.केन्द्र) | जयपुर (कृ.अ.केन्द्र) | |
| अनुपचारित | 1880 | 1475 | - | - | - |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| बीजोपचार | 1980 | 1623 | 100 | 148 | 500 |
| पर्णीय छिड़काव | 2060 | 1621 | 180 | 217 | 400 |
| बीजोपचार व पर्णीय छिड़काव | 2110 | - | 230 | - | 662 |

नोट:- थायोयूरिया से बीजोपचार 500 पीपीएम घोल से एवं पर्णीय छिडकाव 1000 पीपीएम (जोधपुर में) व 500 पीपीएम (जयपुर में) पर कार्य किया गया है।

## 7.11 निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबन्ध:

खरीफ में तापमान और नमी की अवस्थाये वानस्पतिक बढ़वार के अनुकूल होने से खरपतवारों की समस्या अधिक होती है। फलस्वरूप वे फसल की पैदावार को कम करते है। बुवाई के 30 से 35 दिन तक खेत को खरपतवार रहित रखे। अतः इनका समय पर नियंत्रण अति आवश्यक होता है। इसके लिए बुवाई के तीसरे-चैथे सप्ताह तक खेत में समय-समय (दो बार) पर निराई-गुड़ाई करें अथवा कुलपा चलावें। निराई-गुडाई करना संभव न हो वहां बाजरे की शुद्ध फसल (दलहनी मिश्रित फसल साथ में नहीं बोई गई हो) लेने के लिए खरपतनाशी रसायनों जैंसे एट्राजिन 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 600-1000 लीटर पानी में धोलकर बुवाई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पूर्व भूमि में छिड़काव करें। इस छिड़काव से खेत सभी प्रकार के खरपतवारों से मुक्त रहेगा। जहां रसायन का छिड़काव किया गया हो वहां पर 30 दिन तक भूमि में निराई-गुड़ाई नहीं करें।

जहाँ अन्त्रशस्यावर्तित फसल हो वहाँ केवल निराई-गुडाई करके खरपतवार निकाले एवं गुडाई 5 सेमी से अधिक गहरी नहीं होनी चाहिए या खरपतवारनाशी दवा पेन्डीमिथेलीन का 0.75-1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व को 600 लीटर पानी में घोलकर बीज अंकुरण से पूर्व भूमि में छिड़काव करें।

**परजीवी खरपतवार अगिंया रूखड़ी (स्ट्राइगा):**

यह अर्धजड परजीवी एक वर्षीय खरपतवार है, जो सामान्यतः बाजरा व घास कुल की अन्य फसलों की जड़ों पर आक्रमण कर फसल को कमजोर कर देता है। इस अर्धपरजीवी खरपतवार के अंकुरण व बढवार हेतु साधारण मृदा, आर्द्रता व तापमान 30-35 डिग्री से उपयुक्त होता है।

**रोकथाम के उपाय :**

- फसल चक्र में परिवर्तन करें।
- कम अंतराल पर निराई-गुड़ाई करें।
- स्ट्राइगोल के समान यौगिक रसायन जी.आर. 7 या जी.आर. 45 का प्रति हैक्टेयर 0.1-0.8 किलोग्राम उपयोग से रूखड़ी के बीज तो अंकुरित होते है परन्तु परपोषी (होस्ट) के अभाव में स्वतः नष्ट हो जाते है। अतः इसे आत्मघाती मृत्यु भी कहते है।
- पेन्डीमिथेलिन (1.5 कि.ग्रा.) या आक्सीफ्लूरफेन (0.15 कि.ग्रा.) या 2, 4-डी (1.0 कि.ग्रा) का निर्देशित छिड़काव भी उपयोगी पाया गया है।

- पाश (ट्रेप) फसलों (कपास, सोयाबीन, सूरजमुखी, चंवला, मूंगफली व अरण्डी) के कारण अगिंया के बीजों का अंकुरण हो जाता है परन्तु परपोषी के अभाव से स्वतः नष्ट हो जाते है।

## 7.12 सिंचाई प्रबन्ध:

बाजरा की सिंचित फसल की आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए । फसल की क्रान्तिक अवस्था जैंसे पौधों में फुटान होते समय, सिट्टे निकलते समय व दाना बनने की अवस्था प्रमुख है। अतः इन अवस्थाओं पर नमी की कमी हो तो सिंचाई अवश्य करें। कम पानी की स्थिति में सिंचाई फव्वारा विधि से ही करने पर पानी का अधिकतम सदुपयोग होता है।

## 7.13 पादप संरक्षण:

**प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रण:**

बाजरे की फसल में सफेद लट्, दीमक, कातरा एवं रूट बग का प्रकोप अधिक होता है जिससे फसल उत्पादन काफी कम प्राप्त होता है।

**सफेद लट्:**

बाजरे की फसल में सफेद लट् का प्रकोप शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में सामान्यतया देखा जाता है। इस कीट की लट् एवं प्रौढ़ अवस्था दोनों ही नुकसान पहुंचाती है। बाजरे की फसल में इस कीट का समय रहते हुए नियंत्रण नही किया जावे तो पैदावार में काफी कमी होती है। इस कीट के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित उपाय करना चाहिए।

**नियंत्रण के उपाय:**

- बुवाई से पूर्व खेत में फोरेट 10 प्रतिशत कण या क्यूनॉलफॉस 5 प्रतिशत चूर्ण 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से डालकर बाजरे की बुवाई करें।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके सफेद लट् के अण्ड़ों को नष्ट करे।

**दीमक:**

बाजरे की फसल में दीमक का प्रकोप खड़ी फसल में होता है तथा रोगग्रस्त पौधे सुखने लगते है। इस कीट की अधिकता से खेत में खड़े पौधे खंडों/टुकड़ों में सूखे हुए दिखाई देते है। प्रभावित पौधों को उखाड़ कर देखने पर जड़ें दीमक से नष्ट की हुई मिलती है एवं रोगग्रसित पौधे सामान्य पौधों की अपेक्षा आसानी से उखड़ जाते है। बाजरे की फसल को दीमक के प्रकोप से बचाने हेतु निम्न उपाय करे।

**नियंत्रण के उपाय:**

- बुवाई से पूर्व क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में भुरकाव करें।
- खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 4 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से सिंचाई पानी के साथ प्रयोग करें।
- खेत की साफ-सफाई एवं पुरानी फसलों के सूखे डंठल आदि को हटा देना चाहिए।
- खेत में कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग नही करें।

**कातरा (लाल रोयेंदार लट):**

बाजरे की फसलों में कातरे का प्रकोप विशेषकर होता है। इस कीट की लट् अवस्था ही फसल को नुकसान पहुंचाती है। मानसून की वर्षा शुरू होते ही कातरे के पतंगे जमीन से निकलने लगते है और बाजरे की फसल को नुकसान पहुंचाते है। इस कीट के नियंत्रण हेतु निम्न उपाय करे।

**नियंत्रण के उपाय:**

- प्रकाश पास का प्रयोग कर प्रौढ़ पतंगों को नष्ट करने से लट् का प्रकोप कम होता है। इसके लिए खेत की मेढ़ों पर गैस, लालटेन या बिजली का बल्ब लगाकर नीचे केरोसीन मिले पानी से भरी परात रख देना चाहिए जिससे पतंगे प्रकश की तरफ आकर्षित होकर पानी में गिरकर मर जायेंगे।
- फसल पर प्रकोप दिखाई देते ही मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिषत या मैलाथियॉन 5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें।

**रूट बाग :**

रूट बग का प्रकोप दिखाई देते ही 25 किलो मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रशित चूर्ण का प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें। जहाँ रूट बग का प्रकोप प्रति वर्ष होता हो वहाँ यह उपचार अवश्य अपनायें।

**प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम:**

बाजरे की फसल में सामान्यतया कई प्रकार के फफूंद जनित रोगों का प्रकोप होता है जिससे बाजरे का उत्पादन काफी गिर जाता है।

**हरित बाली रोग (जोगिया/ग्रीन ईयर):**

यह रोग ***स्क्लेरोस्पोरा ग्रेमिनीकोला*** नामक फफूंद द्वारा फैलता है। इस रोग के लक्षण सामान्यतया पत्तियों पर दिखाई देते है। इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियां पीली पड़ कर बाद में कथई व भूरे रंग की हो जाती है तथा रोगग्रसित पौधों की बढ़वार रूक जाती है। बाली पर रोग का प्रकोप होने पर बाली छोटी एवं मुड़ी हुई पत्तियों के आकार में बदल जाती है तथा रोगग्रसित बाली में दाने नही बनते है।

**रोकथाम के उपाय:**

- रोगरोधी किस्में जैसे एच.एच.बी.-67, एम.एच.-179 एवं डब्ल्यू.सी.सी.-75 आदि का प्रयोग करें।
- एप्रोन एस.डी.-35 नामक दवा 6 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करें।
- खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देते ही मेन्कोंजेब 2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

**अरगट रोग (गूंदिया या चेपा):**

यह रोग ***क्लेवीसेप्स फ्यूजीफोरमिस*** नामक फफूंद द्वारा होता है तथा बाजरे की फसल इस रोग के कारण सबसे अधिक प्रभावित होती है। बाजरे की बालियों में फूल आने के समय इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। अतः रोगग्रसित बालियों के फूलों में से हल्के गुलाबी रंग का गाढ़ा

तथा चिपचिपा द्रव निकलता है जो सूखने पर बालियों पर कठोर परत सी बना लेता है तथा रोगग्रसित बालियों में दाने नहीं बनते है। रोगग्रसित बालियों में "अरगोटिन" नामक एक विषैला पदार्थ पाया जाता है जो मनुष्यों तथा पशुओं में बीमारी पैदा करता है अतः रोगग्रसित दानों को न तो मनुष्य को खाना चाहिए और न ही ऐसे दानों को पशुओं को खिलाना चाहिए।

**रोकथाम के उपाय:**

- बुवाई से पूर्व बीजों को नमक के 20 प्रतिशत घोल में उपचारित करना चाहिए। रोगग्रसित दाने पानी में ऊपर तैरने लगते है तथा नीचे बैठे स्वस्थ दानों को साफ पानी से 2 या 3 बार धोकर, अन्त में सुखाकर बुवाई के काम में लेना चाहिए।
- सिट्टे निकलते समय मैन्कोंजेब 1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। आवष्यकतानुसार छिड़काव पुनः दोहरावें।
- बाजरे की फसल के आस-पास अंजन घास को नही पनपने देवें क्योंकि यह रोग के रोगजनक का वाहक होती है।

### 7.14.2.3 कंडुआ रोग:

यह **टोलीपोस्पोरीयम पेनिसिलेरी** नामक फफूंद जनित रोग होता है। इस रोग से ग्रसित बालियों में दानों के स्थान पर फफूंद के बीजाणुओं का काला चूर्ण बन जाता है। जिससे दाने खाने योग्य नही रहते है। इस रोग के बीजाणुओं का प्रसारण एक से दूसरे स्थान पर हवा द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप फसलों पर सामान्यतया फूल आने की अवस्था में होता है।

**रोकथाम के उपाय:**

- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके बीजाणुओं को नष्ट करे।
- उचित फसल चक्र अपनाये।
- सदैव प्रमाणित बीजों का ही प्रयोग करे।
- बुवाई से पूर्व बीजों को थायरम 2 से 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बुवाई करें।
- रोगग्रसित बालियों को काटकर खेत से बाहर नष्ट कर देवें।

### 14.3 पक्षियों से बचाव:

पक्षियों की कुछ प्रजातियां अंकुरण के समय पौधे को उखाड़ देते है जिससे काफी हानि होती है। लगभग 10 प्रजातियों के पक्षी बाजरे की फसल को पकने के समय 10 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाते है। घरेलू चिड़ियां अन्य पक्षियों की अपेक्षा अधिक घातक होती है। पक्षियों से होने वाले नुकसान को रोकने के लिए खेत में चिड़ियों के बैठने के स्थानों को हटा दें और पेड़ों की शाखाओं को काट दें।

**15.0 कटाई एवं गहाई:** बाजरा की फसल अक्टूबर के पहले सप्ताह तक पककर तैयार हो जाती है। खड़ी फसल में हँसिया से सिरे काटकर खलिहान मे सुखाये जाते है। कई क्षेत्रों में पहले फसल काट ली जाती है और फिर सिट्टे तोडे जाते है । तब दानो मे नमी की मात्रा 20 प्रतिशत हो तभी

सिट्टे पौधौं से अलग करने चाहिए। सिट्टो को सुखाकर मंडाई बेलों द्वारा या शक्ति चालित थ्रेसर से कर लते है।

**16.0 उपज:-** उन्नत विधियों से बाजरा की खेती करने पर औसत 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर दाने की उपज मिल जाती है।

**17.0 भण्डारण:** दानो को अच्छी तरह सुखाने के बाद जब नमी 12-14 प्रतिशत हो तभी भण्डारण करना चाहिए।

## 18.0 बाजरे की फसल को सूखे के प्रकोप से बचाने के प्रभावी बिन्दू:

- पौधे से पौधे की दूरी बढ़ाकर व खड़ी फसल में पौधो की छटाई करके प्रति हैक्टेयर पौधों की संख्या कम करना।
- बाजरा की पंक्तियों के बीच में बुवाई के 20 व 40 दिन बाद कसोला या खुरपी द्वारा भूमि की ऊपरी सतह की पपड़ी तोड़ने से कैपीलरी के द्वारा वाष्पीकरण क्रिया कम होने से भूमि के अन्दर की नमी को संचित करने में सहायता मिलती है।
- फसल पंक्तियों के बीच में गेहूँ एवं अन्य फसल का भूसा फैला दे जो कि खरपतवारों की बढ़वार को रोकने के साथ-साथ नमी संरक्षण में सहायक होते है।
- फसल पर दो बार केओलिन नामक वाष्पोत्सर्जन अवरोधक के 6 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें ताकि पत्तियों पर सूर्य की किरणों के प्रभाव को कम करके पत्तियों द्वारा पानी के वाष्पीकरण को कम कर सकते है।
- खरपतवारों को समय पर नष्ट करें जिससे भूमि की नमी बेकार न जाये। उखाड़े हुये खरपतवारों को फसल की दो कतारों के मध्य पलवार के रूप में बिछा देवें (इनसीटू मल्चींग), जिससे यह खरपतवार मल्च का कार्य करेंगे, दूसरा खरपतवार नहीं उगने देंगे तथा नमी संरक्षरण में सहायक होंगे। साथ ही साथ भूमि में जीवां ष की मात्रा बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगे।
- थायोयूरिया नामक जैव-नियामक के प्रयोग से बाजरे के पौधों के अन्दर जैव-नियमन (Bioregulation)के फलस्वरूप सूखा सहनशीलता उत्पन्न की जा सकती है।
- सूखे की स्थिति में बाजरे की फसल पर 2 प्रतिशत यूरिया का पर्णीय छिड़काव करने से उपज में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।
- फसल को कीट और बिमारियों से बचाने के लिए उपयुक्त दवा का समय पर छिड़काव करें। इससे बाजरे के पौधे स्वस्थ एवं शक्तिशाली होकर उपलब्ध जल का दक्षतापूर्ण उपयोग कर सकते है।

## 19.0 संरांश:

मोटे अनाजों में बाजरा एक मुख्य फसल हैं। भारत के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में बाजरा की फसल का प्रमुख स्थान है। क्योंकि इन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है अतः कम पानी की मांग वाली बाजरा फसल को आसानी से उगाया जा सकता है। तथा अल्प अवधि की यह फसल सूखा सहन करके भी खाद्यान्न के रूप में सुविख्यात हैं। क्योंकि सुखे की स्थिती में बाजरा की

फसल कुछ पैदावार अवश्य देती है। बाजरे की खेती मुख्यतः खरीफ मौसम में की जाती हैं। बारानी क्षेत्रों में रहने वाले गरीब आदमियों के लिए बाजरा मुख्य भोजन का स्त्रोत है, क्यों कि बाजरा में ऊर्जा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण अधिक मात्रा में पाये जाते है। वेज्ञानिक तरिके से खेती करके बाजरा का अधिक उत्पादन लिया जा सकता है ।

## 20.0 बहु चयनात्मक प्रश्न:

6. धान्य फसलों में सर्वाधिक वसा कि मात्रा कौनसी फसल में पाई जाती है -

(अ) चावल (ब) गैंहू (स) मक्का (द) बाजरा {द}

7. निम्नलिखित किस्मों में से बाजरे की संकुल किस्म है -

(अ) डब्ल्यू.सी.सी.-75 (ब) एम.एच.-179 (स) पुसा-605 (द) आईसीपीटी-8203 {अ}

8. बाजरे में हरित बाली रोग फैलता है -

(अ) वाइरस द्वारा (ब) फफुंद द्वारा (स) जीवाणु द्वारा (द) उपरोक्त सभी {ब}

9. सर्वाधिक बाजरा उत्पादन कौनसे राज्य में होता है -

(अ) महाराष्ट्र (ब) गुजरात (स) राजस्थान (द) उत्तर प्रदेश {स}

10. गुन्दिया रोग से बचने के लिए बाजरे के बीज को उपचारित करना चाहिए -

(अ) नमक के 20 प्रतिशत धोल से (ब) मेन्कोजेब के 2 प्रतिशत धोल से

(स) सोडियम सल्फेट के 1 प्रतिशत धोल से (द) उपरोक्त सभी {अ}

## 21.0 सन्दर्भ:


7 Anonymous, 2010-11, Rajasthan Agricultural Statistics at a glance, Commissionerate of Agriculture, Jaipur, Rajasthan. ।

8 मीणा, ऐ. के., तेतरवाल, जे. पी., राम, बलदेव एवं मीणा, एस. एन. 2011, बाजरे के प्रमुख कीट एवं रोग तथा उनका प्रबंधन । राजस्थान खेती प्रताप (09): 10-11.

9 Pal, M., Deka, J. and Rai, R.K. 1996, Fundamentals of Cereal Crop Production., Tata McGraw-Hill publishing company limited, New Delhi, pp: 94-108.

10 तारा, सी. एवं सिंह, एस. पी. 2010, बाजरे की उन्नत उत्पादन तकनीकी, प्रसार दूत (06): 5-10.

11 तेतरवाल, जे. पी. एवं राम, बलदेव 2010, कम वर्षा के लिए उपयुक्त है बाजरे की खेती, खाद पत्रिका 51 (06): 20-24.

12 तेतरवाल, जे. पी., मीणा, ऐ. के., राम, बलदेव एवं तेतरवाल, ऐ. एस. 2012, केसै करे बाजरे में उचित फसल संरक्षण, हरित क्रान्ति (07): 6-7.

13 Singh, Chhidda. 1999., Modern Techniques of raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New delhi. pp:112-125.

14 Singh, S.S., 1993, Crop Management under Irrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, new Delhi, pp:113-123

# इकाई 8

# बरसीम

**इकाई की रूपरेखा**


8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 महत्व एवं उपयोग

8.3 उत्पत्ति एवं इतिहास

8.4 वितरण एवं क्षेत्रफल

8.5 जलवायु

8.6 भूमि

8.7 भूमि की तैयारी एवं उपचार

8.8 उन्नत जातियाँ

8.9 बीज का चुनाव

8.10 बीज दर

8.11 बुवाई का समय

8.12 बुवाई की विधि

8.13 खाद तथा उर्वरक

8.14 सिंचाई एवं जल निकास

8.15 फसल चक्र

8.16 मिश्रित खेती

8.17 कीट नियन्त्रण

8.18 रोग नियन्त्रण

8.19 बरसीम चारे की फसल में कीट नियंत्रण में घ्यान देने हेतु सावधानियां

8.20 कटाई

8.21 उपज

8.22 बीज उत्पादन

8.23 बीज हेतु कटाई प्रबन्ध

8.24 बीज उपज

8.25 सारांश

8.26 बहु चयनात्मक प्रश्न

8.27 संदर्भ ग्रन्थ

## 8.0 उद्देश्य

हरे चारे की कमी से किसान दूसरे स्त्रोंत शुष्क चारें जैसे मक्का, ज्वार की कड़वी, गेहूँ के भूसे, धान का पराल आदि पर निर्भर रहते है, जिससे दुधारू एवं भारवाहक पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं कार्य क्षमता दोनों ही अपेक्षाकृत कम होती है। पशुओं में इन्हे बढ़ाने हेतु पौष्टिक हरे चारे का उत्पादन आवश्यक है, हरे चारे की पौष्टिकता में वृद्धि हेतु दलहन एवं गैर दलहन/घासें एक दूसरे के साथ मिलाकर उगावें, क्योंकि दलहन चारे में प्रोटीन एवं गैर दलहन में कार्बोहाईड्रेड अधिक मात्रा में पाया जाता है अतः दोनो पदार्थ पशु स्वास्थ्य एवं दुग्ध क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

## 8.1 प्रस्तावना

| | |
|---|---|
| वानस्पतिक नाम (Botanical Name) | ट्राइफोलियम ऐलेक्जैड्रिनम (Trifolium alexndrinum L.) |
| कुल (Family) | लेग्यूमीनोसी (Leguminoceae) |

कृषि वैज्ञानिकों ने ''हरित क्रान्ति'' के द्वारा भारत को खाधान्न में आत्मनिर्भय बनाया साथ ही पशु चराई के लिए पर्याप्त भू-संसाधन है, जिनका क्षेत्रफल लगभग 30.42 करोड़ हैक्टेयर है और सकल प्रतिवेदन क्षेत्र का 39.8 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त लगभग 0.83 करोड़ हैक्टेयर भूमि में चारे की फसलें उगाई जाती है, इसके बावजूद पर्याप्त चारे का प्रबन्ध नही हो पाता। देश में लगभग 41.59 करोड़ पशुओं हेतु चारा जुटाना आज भी समस्या बनी हुई है। भारत में संसार की 15 प्रतिशत पशु व 17 प्रतिशत मानव जनसंख्या निवास करती है जबकि भौगोलिक क्षेत्रफल मात्र 3 प्रतिशत ही है। मानव जनसंख्या में लगातार बढ़ने के कारण खाद्यान्न फसलों एवं सब्जियों के उत्पादन का दबाव बढ़ता जा रहा है। इसलिए हरे चारे वाली फसलो के अन्तर्गत क्षेत्रफल कम होता जा रहा है। देश में लगभग 5 प्रतिशत कृषि भूमि क्षेत्र में ही चारा उगाया जा रहा है। जिसके कारण दूधारू पशुओ हेतु गुणवत्तापूर्ण हरे चारे की कमी होती जा रही है। हालांकि भारत का दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान है परन्तु भविष्य में इसे बनाए रखने के लिए हमें चारे की उपलबद्धता को बढ़ाना होगा।

हरे चारे की कमी से किसान दूसरे स्त्रोंत शुष्क चारें पर र्निभर रहता है। कुछ क्षेत्रों में जानवर (पशु) हरे चारे की अपेक्षा शुष्क चारा मक्का, ज्वार की कड़वी, गेहूँ के भूसे, धान का पराल आदि पर निर्भर रहते है, जिससे दुधारू एवं भारवाहक पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं कार्य क्षमता दोनों ही अपेक्षाकृत कम होती है। पशुओं में इन्हे बढ़ाने हेतु पौष्टिक हरे चारे का उत्पादन आवश्यक है, हरे चारे की पौष्टिकता में वृद्धि हेतु दलहन एवं गैर दलहन/घासें एक दूसरे के साथ मिलाकर उगावें, क्योंकि दलहन चारे में प्रोटीन एवं गैर दलहन में कार्बोहाईड्रेड अधिक मात्रा में पाया जाता है अतः दोनांे पदार्थ पशु स्वास्थ्य एवं दुग्ध क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। इससे उच्च पौष्टिकता का हरा चारा तो प्राप्त होगा साथ ही उत्पादन भी बढ़ेगा और मृदा उर्वरता भी प्रभावित नही होगी।

## 8.2 महत्व एवं उपयोग

बरसीम पिछली शताब्दी से हमारे देश के उत्तरी क्षेत्र में रबी में चारे की एक मुख्य फसल है। इसके चारे में 20 प्रतिशत क्रुड़ प्रोटीन एवं 70 प्रतिशत शुष्क पाचक पदार्थ की मात्रा पायी जाती है। बरसीम सभी पशुओं, विशेषकर दुधारू पशुओं के लिए एक उत्तम पौष्टिक एवं स्वादिष्ट हरा चारा है। बरसीम का चारा पौष्टिक होने के साथ-साथ पाचनशील भी होता है। चारे को दुधारू पशुओं को खिलाने से दुध की मात्रा में वृद्धि होती है। रबी के मौसम में जब हरे चारें का प्रायः आभाव होता है, उससे लगातार चारा प्राप्त होता रहता है। शहर के निकटवर्ती क्षेत्रों में यह फसल नकद पैसा कमाने का एक अच्छा साधन है। बरसीम से उत्तम किस्म की साइलेज भी तैयार की जा सकती है। अन्तिम कटाई के समय खेत में फसल की पलटाई करके इसे हरी खाद के रूप में भी प्रयोग कर सकते है। यह लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में भी बरसीम की फसल अच्छी उपज देती है। दलहनी फसल होने के कारण यह मृदा उर्वरा में वृद्धि करती है।

## 8.3 उत्पत्ति एवं इतिहास

वैज्ञानिकों का मत है कि बरसीम का जन्म स्थान एशिया महानगर या मिश्र देश है। इसी कारण इसे इजिप्शिन क्लोवर भी कहते है। मिश्र में बरसीम बहुत प्राचीन काल से उगाई जा रही है। भारत में बरसीम की फसल सन् 1904 ई0 में सर फ्लेचर द्वारा सर्वप्रथम मीरपुर खास फार्म सिन्ध में उगाई गई। इसके पश्चात् इसके अच्छे गुणों के कारण इसकी खेती भारत के अन्य भागों, विशेष रूप से उत्तरी भारत में पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी व उत्तरी भागों में प्रारम्भ की गई क्योंकि उत्तरी भारत की जलवायु बरसीम की खेती के लिये अधिक अनुकूल साबित हुई है।

## 8.4 वितरण एवं क्षेत्रफल

बरसीम की फसल के बारे में भारत में लोगों को थोड़े समय पूर्व ही ज्ञान हुआ है। अतः हमारे देश में बरसीम की खेती विस्तृत रूप से नही की जाती है। भारत में बरसीम की खेती केवल पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल व हिमाचल प्रदेश के पाला रहित, नम या सिंचित क्षेत्रों में की जा रही है।

## 8.5 जलवायु

शरद् ऋतु में उत्तरी भारत में पाई जाने वाली जलवायु बरसीम की फसल के लिए सबसे उत्तम है। अतः बरसीम की अच्छी वृद्धि के लिये अर्ध शुष्क एवं ठण्डी जलवायु की आवश्यकता होती है। अगर फसल से बीज लेना होता है तो फसल को पकाने के समय कुछ अधिक तापक्रम की आवश्यकता होती है। उन सभी क्षेत्रों पर जहां 150 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा होती है बरसीम को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। अधिक वर्षा वाले स्थान बरसीम की फसल के लिए अनुकूल नही है। क्योंकि भूमि में अधिक पानी भर जाने से जड़ों में पायें जाने वाले जीवाणु क्रियाशीलता बन्द कर देते है और जड़े सड़ जाती है। कम वर्षा वाले स्थानों पर बरसीम को सिंचाइयों की समुचित व्यवस्था होने पर ही उगाया जा सकता है।

बरसीम के अंकुरण व वृद्धि के लिये 150-250 से. ग्रे. तापमान उत्तम है। तापमान 400 से. ग्रे. से अधिक होने पर इसके पौधे कटाई के बाद दोबारा वृद्धि नही करते। अधिक तापमान एवं अधिक वर्षा के कारण दक्षिणी भारत की जलवायु बरसीम की फसल के लिये अनुकूल नही होती है। जहाँ फसल बीज के लिये ली गई है तो बीज पकते समय वर्षा का होना हानिकारक होता है।

## 8.6 भूमि

बरसीम दलहनी फसल है। इसकी जड़ों में सूक्ष्म जीवाणु पाये जाते है। प्रत्येक अवस्था में इन जीवाणुओं का क्रियाशील रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। अतः बरसीम की सफल खेती के लिये भूमियों में जल निकास का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये तथा मृदा वायु संचार अच्छा होना चाहिए। बरसीम की जड़ों में जीवाणु की उपस्थिति के कारण प्रत्येक प्रकार की भूमियों पर इस फसल को नही उगाया जा सकता है। उपजाऊ दोमट भूमियां बरसीम की फसल के लिए सबसे उत्तम होती है। बरसीम की अच्छी पैदावार के लिये भूमियों की उर्वरा शक्ति अच्छी होनी चाहिये। धान की भारी मृदाओं में बरसीम की फसल सफलतापूर्वक उगाई जाती है। मृदा पी. एच. (pH) का फसल पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। क्षारीय भूमियों पर बरसीम को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, परन्तु अम्लीय भूमियों पर बरसीम की खेती बिल्कुल सम्भव नही है। हल्की मृदाओं में सिचांई की संख्या बढ़ाकर बरसीम की फसल ले सकते है।

## 8.7 भूमि की तैयारी एवं उपचार

इसकी सर्वोत्तम बढ़वार अच्छे जल निकास एवं वायु संचार वाली तथा अधिक जल धारण क्षमता वाली दोमट भूमि में होती है। हल्की भूमि में इसे अधिक सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। बरसीम की फसल सामान्यतः मक्का, ज्वार, बाजरा व धान की फसल के बाद उगाई जाती है। इन फसलों की कटाई के बाद एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके 3-4 बार देशी हल या हैरो चलाकर खेत की बुआई के लिये तैयार करते ही पाटा चलाकर खेतों को समतल बना देना चाहियें। बाद में उचित आकार की क्यारियाँ बना लेना चाहिए जिससे सिंचाइयां सुविधापूर्वक होती है। खेत में ढेले नही रखने चाहिये अन्यथा बीजों का जमाव कम होगा। कुडा करकट भी इक्ट्ठा करके जला देना चाहिये। दीमक एवं अन्य भूमिगत कीड़ों की रोकथाम के लिए अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से खेत में अन्तिम जुताई पर बिखेर कर करनी चाहिए।

## 8.8 उन्नत जातियाँ

बरसीम की जातियों को उनमें पाये जाने वाले क्रोमोजोम की संख्या के आधार पर डिप्लायड व ट्रेट्राप्लायड दो वर्गों में विभाजित करते है।

**(अ) डिप्लायड (Diploid) जातियाँ:-** डिप्लायड किस्में कम तापमान पर बहुत ही कम बढ़ती है। जब तापमान बढ़ने लगता है तो इन किस्मों से चारा अधिक मिलता है। अतः सर्दियों में कम तापमान पर इन किस्मों से चारा बहुत कम मिल पाता है। अतः नवम्बर से मई तक बराबर हरा चारा लेने के लिये दोनों प्रकार की डिप्लायड व ट्रेट्राप्लायड किस्मों के बीज मिलाकर बोना चाहिये।

1 **मसकावी:-** भारत में प्रारम्भ से ही यह जाति अपनाई गई है। चैधरी चरण सिंह हिसार कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित पहली किस्म है। पौधे सीधे बढ़ने वाले, तने मुलायम व पत्तियों के किनारे गोल होते है। फूल गोलाकार व सफेद रंग के होते है। 800 कु./है. हरा चारा प्राप्त हो जाता है। यह प्रजाति उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, पंजाब व हिमाचल के लिये उपयुक्त है। यह किस्म पाले के प्रति सहनशील है। नवम्बर-दिसम्बर में ही हरा चारा दे देती है।

2 **बरसीम लुधियाना 1 (BL1):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 1180 कु0 तक हरा चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। 15 मई तक यह किस्म हरी बनी रहती है। देशी किस्म मिसकावी की अपेक्षा 25-30 प्रतिशत तक अधिक चारा प्राप्त हो जाता है। इस किस्म के पौधों में शाखायें काफी संख्या में फूटती है।

3 **वरदान (S-99.1):-** भारतीय घास एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी से विकसित यह जाति 726 कु0 तक हरा चारा तथा 139 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। इस किस्म के पौधों में शाखायें काफी संख्या में फूटती है।

4 **बुन्देल बरसीम-2 (JHB-146):-** भारतीय घास एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी से विकसित यह जाति 850 कु0 तक हरा चारा तथा 110 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह किस्म जड़ गलन, तना गलन एवं अन्य कीटों के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी है।

5 **जवाहर बरसीम-1:-** जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर से विकसित यह जाति 870 कु0 तक हरा चारा तथा 155 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है।

6 **जवाहर बरसीम-5 (JB-5) :-** जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर से विकसित यह जाति 670 कु0 तक हरा चारा तथा 130 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है।

7 **हिसार बरसीम-1 (HFB-600) : -** चैधरी चरण सिंह हिसार कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित यह जाति 735 कु0 तक हरा चारा तथा 142 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह किस्म जड़ गलन, तना गलन एवं अन्य कीटों के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी है।

8 **बरसीम लुधियाना 2 (BL 2):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 765 कु0 तक हरा चारा तथा 155 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है।

9 **बरसीम लुधियाना 10 (BL 10):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 1050 कु0 तक हरा चारा तथा 188 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह पंजाब में 15 जून तक हरा चारे की उपज देती है।

10 **बरसीम लुधियाना 22 (BL 22):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 620 कु0 तक हरा चारा तथा 123 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह पंजाब में जून के अन्तिम सप्ताह तक हरा चारे की उपज देती है।

11 **बरसीम लुधियाना 42 (BL 42):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 750 कु0 तक हरा चारा तथा 122 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह पंजाब में बरदान किस्म से भी एक माह देरी तक हरा चारे की उपज देती है। इस किस्म में दाना उपज 6.5 कु0 प्रति हैक्टेयर होता है।

12 **बरसीम लुधियाना 180 (BL 180):-** पंजाब कृषि वि. वि. लुधियाना से विकसित यह जाति 625 कु0 तक हरा चारा तथा 90 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह पंजाब में लम्बे समय तक हरा चारे की उपज देती है। इस किस्म में दाना उपज 3.4 कु0 प्रति हैक्टेयर होता है।

13 इस वर्ग में अन्य उन्नत जातियाँ खदरावी एवं फाइली आदि किस्में है।

**(ब) ट्रेट्राप्लायड (Teraploid) जातियाँ:-** ट्रेट्राप्लायड जातियाँ सर्दियों में कम तापमान पर भी तेजी से बढ़ती है। इनकी पत्तियां मुलायम होती है। गर्मियों में इनकी वृद्धि कम हो जाती हैं क्योंकि जब इनका तापमान 270 से. ग्रे. से अधिक होने लगता है तो कटाई के बाद दोबारा पौधों में फूटान नही होती है।

1 **पूसा जायन्टः-** भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित यह प्रजाति देशी किस्मों की तुलना में 15 प्रतिशत तक अधिक उपज देती है। इसकी पत्तियाँ चैड़ी, अपेक्षाकृत मोटी, मुलायम व हरे रंग की होती है। यह किस्म पाले को सहन कर लेती है तथा देशी जातियों की अपेक्षा इसके फूल बड़े आकार के होते है।

2 **बुन्देल बरसीम-3 (JHTB-96.4):-** भारतीय घास एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी से विकसित यह जाति 560 कु0 तक हरा चारा तथा 90 कु0 शुष्क चारा प्रति हैक्टर तक दे देते है। यह किस्म जड़ गलन एवं तना गलन के प्रति सहनशील तथा ड़ाउनी मिल्ड़यू के प्रति प्रतिरोधी पायी गयी है।

3 इस वर्ग में अन्य उन्नत जातियाँ टाईप-526, टाईप-678, टाईप-724, टाईप-560 ए, टाईप-780 व एस. 99-1 आदि है।

उन्नत किस्मों की पत्तियाँ चैड़ी होती है तथा शाखायें भी अधिक होती हैं जिसके फलस्वरूप वे पैदावार तथा पौष्टिकता में उच्चतम होती है। उन्नतशील जातियाँ प्रारम्भ की 2-3 कटाईयों में देशी जातियों की तुलना में अधिक उपज देती है व बाद में इनकी उपज घट जाती है। अतः चारे की अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिये उन्नतशील और देशी किस्मों का बीज मिलाकर क्रमशः 1:3 से 1:1 के अनुपात में बोना अधिक लाभदायक रहता है। यदि चाहें तो मसकावी एवं पूसा जॉइन्ट दोनों किस्मों का आधा -आधा बीज मिलाकर भी बुवाई कर सकते है। शुरू की 2 से 3 कटाईयाँ में द्विगुणित किस्में अपेक्षाकृत अधिक उपज देती है।

## 8.9 बीज का चुनाव

बीज सदैव स्वस्थ, मोटा, पीले रंग वाला तथा खरपतवार रहित होना चाहियें। बोने से पूर्व बरसीम के बीजों की सफाई एवं बैक्टीरिया कल्चर से बीजोंपचार निम्न प्रकार करते है।

कासनी नामक खरपतवार के बीज बरसीम के बीज के साथ साधारणतया मिले हुये पाये जाते है अतः कासनी के बीजों को अलग करने के लिये बरसीम के बीजों को 5 प्रतिशत नमक के घोल में डालकर कुछ समय के लिये रखते है। कासनी के बीज हल्के होने के कारण घोल के ऊपर तैरने लगते है। इनको घोल से अलग कर दिया जाता है।

किसी खेत में अगर बरसीम पहली बार ही बुवाई कर रहे है तो बीजों को बोने से पहले *राइजोबियम ट्राइफोलिआई* नामक बैक्टीरिया से उपचारित करके बोयें। इसके लिये एक किलोग्राम राइजोबियम संवर्ध (कल्चर) को एक लीटर पानी में 10 प्रतिशत गुड़ के घोल में मिला कर छाया में सुखाते है। संवर्ध (कल्चर) मिलाए हुए बीज को 24 घण्टे के अन्दर खेत में बो देना चाहिये। संवर्ध अगर बीज के साथ नही मिलाते तो फसल बहुत कमजोर रहती है और कभी-कभी पूरी-पूरी फसल ही नष्ट हो जाती है।

यदि बरसीम संवर्ध उपलब्ध न हो सके तो ऐसे खेत से जहां पिछले वर्षों में बरसीम बोई गई हो, ऊपरी 5-6 सेमी. सतह की 4-5 क्विंटल मिट्टी लेकर नये खेत में समान रूप से बखेर देना चाहिये। बरसीम बोये गये खेत की ऊपरी सतह की मिट्टी बीजों के भार से दो गुनी मात्रा में लेकर बीजों के साथ मिलाकर बुआई करनी चाहिये। इस विधि से भी राइजोबियम संवर्ध मिलाने की विधि के बराबर ही लाभ मिलता है। बीज को थायरम 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. से उपचारित करके बुवाई करें।

## 8.10 बीज दर

साधारणतया: बीज दर 25-35 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर रखी जाती है। यदि बीज स्वस्थ तथा पीले रंग का हो तो बीज दर प्रति हैक्टर कम की जा सकती है। अगेती व पछेती बुआई में बीज दर 35 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तक रखते है। देशी किस्मों का बीज छोटा होने के कारण 25 कि.ग्रा. व उन्नत किस्मों का बीज बड़ा होने के कारण 35 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग किया जाता है। परन्तु पूसा जॉइन्ट के लिए 50 कि.ग्रा. बीज की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है।

## 8.11 बुवाई का समय

बरसीम से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये बुआई मध्यम अक्टूबर तक हो जानी चाहिये। उत्तरी भारत में जब तापमान 300 से.ग्रे. से कम होने लगता है तो बरसीम की बुआई कर देते है। देर से बुआई करने से कम तापमान पर बीजों का अंकुरण अच्छा नही होता तथा पौधों की वृद्धि भी बहुत धीरे-धीरे होती है तथा पहली कटाई काफी देर में करनी पड़ती है। फसल की अगेती बुआई करने पर फसल को देर से होने वाली वर्षा से हानि पहुंच सकती है तथा खेत में खरपतवार भी अधिक उगते है।

## 8.12 बुवाई की विधि

बरसीम की बुवाई खेत में 5-7 सेमी. पानी भरने के बाद की जाती है। बुवाई की यह विधि काफी प्रचलित है। लेकिन कई क्षेत्रों में बुवाई करने के बाद खेत में 5-7 सेमी. पानी भरा जाता है। कई किसान बीजों के अंकुरण के बाद भी खेत में पानी भरते है। यदि खेत में पानी भर कर बुआई करनी हो तो खेत की तैयारी के बाद उसमें सुविधानुसार क्यारियां बना लेनी चाहिये।

क्यारियों में पानी भर कर पटेला या किसी अन्य कृषि यन्त्र से पानी गदला कर देते है। इसके बाद छिटकवां विधि से बुआई कर देते है। इस प्रकार बीज के ऊपर मिट्टी की एक पतली परत जम जाती है जिससें अंकुरण के लिये बीज को उचित नमी मिलती रहती है और चिड़ियाँ भी बीजों को नुकसान नही पहुंचा सकती। इस विधि से बुआई करने पर बीजों का अंकुरण काफी अच्छा होता है।

धान उगाने वाले क्षेत्रों में धान या कपास की खड़ी फसल में बरसीम की बुआई की जाती है। इस विधि से बुआई करने पर बीज को 12 घन्टे तक पानी में भिगोकर छाया में सुखा लिया जाता है। सितम्बर के दूसरे पखवाड़े में धान के खेत में बरसीम का बीज भिगोकर छिटक दिया जाता है। बुआई के समय खेत में थोड़ा पानी रहना चाहिये।

देशी जातियों की प्रारम्भिक कटाइयों से चारे की उपज कम प्राप्त होती है। अतः प्रारम्भ में अधिक उपज लेने के लिए इसका बीज सरसों या लाही या गोभिया सरसों (2-4 कि.ग्रा./है.), जई या सैंजी (40-50 कि.ग्रा./है.) के साथ मिलाकर बोना चाहिए। अगर उन्नतशील बरसीम का बीज उपलब्ध है तो उसे 1:1 या 1:3 के अनुपात में देशी बरसीम के साथ मिलाकर बोना चाहिए।

## 8.13 खाद तथा उर्वरक

मिट्टी में जीवांश कायम रखने के लिये 15-20 टन प्रति हैक्टेयर अच्छी पकी हुई गोबर की खाद खेत तैयार करते समय या 20 दिन पहले डाल देना चाहियें। बरसीम की फसल को 20-30 कि.ग्रा. नत्रजन व 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। नत्रजन व फॉस्फोरस की मात्रा भूमि में बुवाई से पूर्व अन्तिम हैरो अथवा हल चलाते समय मिला देनी चाहिए। नत्रजन की यह मात्रा प्रारम्भ में देने से पौधों की प्रारम्भिक बढवार अच्छी होती है तथा जड़ों में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ बन जाती है। इन ग्रन्थियों में पाया जाने वाला '*राईजोबियम*' नामक जीवाणु वातावरण में पाई जाने वाली नत्रजन को बरसीम के पौधों के लिये भोजन के रूप में बदलने लगते है और इस प्रकार बाद में पौधे अपनी नत्रजन की आवश्यकता स्वयं पूरी कर लेते है। फॉस्फोरस देने से जड़ों की वृद्धि एवं जड़ों में पाई जाने वाली ग्रन्थियों की वृद्धि में काफी सहायक है। बरसीम के खेत में बोरोन व मोल्बिडेनम की कमी होने पर उपज में कमी आनी आरम्भ हो जाती है अतः ऐसी अवस्था में मोल्बिडेनम व बोरोन देना काफी लाभदायक पाया गया है।

## 8.14 सिंचाई एवं जल निकास

प्रारम्भ में अच्छे अंकुरण व वृद्धि के लिये 7-10 दिन के अन्तर पर हल्की-हल्की दो सिचाइयाँ देना लाभदायक है। बाद में मृदा एवं मौसम के अनुसार 15-20 दिन के अन्तर पर सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। भारी मृदाओं में सिंचाई कम तथा अधिक अन्तर पर करते है परन्तु हल्की भूमियों में सिंचाईयों की संख्या अधिक व दो सिंचाइयों के बीच का समय कम होता है। प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई करना अति आवश्यक है। साधारणतयाः बरसीम की फसल को 12-16 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। सर्दियों के पश्चात् माह मार्च-अप्रैल में सिंचाई 10-15 दिन के अन्तर से करते है। आवश्यकता से अधिक पानी बरसीम के बीजों के अंकुरण व वृद्धि के लिये हानिकारक होता है।

## 8.15 फसल चक्र

खरीफ की फसल के बाद रबी की ऋतु में बरसीम सफलतापूर्वक उगाई जाती है। बरसीम के लिये सिंचाई के साधनों का होना अति आवश्यक है।

बरसीम के प्रमुख फसल-चक्र निम्नलिखित है।

1. धान - बरसीम
2. मक्का - बरसीम, कपास - बरसीम
3. ज्वार/मक्का (चारे के लिये) - बरसीम
4. मक्का (दाना) - बरसीम - मक्का (चारा)
5. मक्का (दाना) - बरसीम - मूंग
6. सूडान घास - बरसीम
7. ज्वार/बाजरा - बरसीम - मक्का + लोबिया

## 8.16 मिश्रित खेती

नैपियर घास या हाथी घास के खेत में बरसीम की फसल उगा सकते है क्योंकि सर्दियों में नैपियर घास की वृद्धि नही होती है अतः इस समय पर बरसीम ले सकते है तथा खरीफ में फिर से नैपियर घास वृद्धि कर जाती है। प्रारम्भिक कटाई तक सरसों, गोभिया सरसों, लाही, जई व सैंजी को बरसीम के साथ मिला कर बोना लाभदायक है। शुरू की कटाईयों से अधिक चारा उत्पादन के लिये बरसीम को जई के साथ मिलाकर बोना चाहिये। दोनो फसलों की बीज दर का आधा-आधा बीज मिलाकर बोयें। जई नही बोने पर दो किलोग्राम सरसों का बीज प्रति हैक्टेयर बरसीम के बीज में मिलाकर बोना चाहिए।

## 8.17 कीट नियन्त्रण

सेमीलूपर बरसीम को हानि पहुचाने वाला प्रमुख कीट है। अन्य कीटो में चने की सुंडी, थ्रिप्स, एफिड व ग्रासहोपर भी फसल को हानि पहुंचाते है। कीटों का प्रकोप होने पर पूरे खेत की कटाई एक साथ करके कीटनाशी दवा का बुरकाव या छिड़काव करे।

1. **सेमीलूपर -** वयस्क के अगले पंखों पर सुनहरी वाई के आकार का चिन्ह होता है। वयस्क लूपर या गिड़ार हल्के रंग में बदलते है व बाद में भूरे व हरे रंग के हो जाते है। सिरे का भाग पिछे की तुलना में नुकीला होता है। गिड़ार पत्ती का एक भाग खाती है। अगस्त माह से आक्रमण प्रारम्भ होकर सितम्बर-अक्टूबर में भारी आक्रमण होता है। इसकी रोकथाम के लिये 5 प्रतिशत डिप्ट्रेक्स ड़स्ट का 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बुरकना चाहिय एवं छिड़काव के 20 दिन बाद ही पशुओं कों चारा खिलाइयें।
2. **एल्फा एल्फा एफिड़ या माहू -** कीट के वयस्क छोटे होते है, शीघ्र ही भूरे व पीले रंग में बदलते है। निम्फ व वयस्क पौधों का रस चूसते है एवं पत्तियों पर क्लोरोसिस व नसे पीली पड़ जाती है। पौधे की वृद्धि रूक जाती है। बीजांकुर नष्ट हो जाता है तथा प्रोटीन व कैरोटीन की मात्रा में 50 प्रतिशत कम हो जाती है। कीट पत्तियों पर शहद की तरह का चिप-चिपा पदार्थ छोड़ते है जिसके कारण पत्तियों पर फफूंदी व मोल्ड़ लग जाते है। इसके नियंत्रण के

लिये 0.01 प्रतिशत मैटासिक्सटॉक्स या 0.05 प्रतिशत मैलाथियॉन या ड़ायजिनान के 800 लीटर घोल का छिड़काव प्रति हैक्टेयर करना चाहिए।

3. **पत्तियों का कुतरा (लीफ होपर) -** कीट हरे पीले व भूरे रंग के होते है। अधिकतर पत्तियों की निचली सतह पर ठहरते है तथा इसका रस चूसते रहते है। पत्तियों का रंग पीला, सफेद, लाल या भूरा दिखाई पड़ने लगता है। भारी आक्रमण पर पौधे झुलसे नजर आते है। इसकी रोकथाम के लिये 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस का घोल छिड़कना चाहिए।
4. **एल्फा एल्फा वीविल -** वयस्क कीटों का रंग गहरा भूरा या काला होता है। शरीर पर छोटे-छोटे भूरे बाल होते है। लार्वा का रंग हरा होता है एवं इसके पैर नही होते है तथा शरीर के नीचले भाग पर अच्छी तरह से विकसित डोलियाँ होती है जो इसके चलने फिरने में सहायता करती है। यह कीट पत्तियों को छेद करके खाते है। इसकी रोकथाम के लिये 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस का घोल छिड़कना चाहिए।
5. **लूसर्न गिड़ार या सूंड़ी -** वयस्क के अगले पंख भूरे व पीले एवं लाल धब्बे लिये होते है। पिछले पंख सफेद व गहरी धारियां लिये होते है। गिड़ार 2-5 से.मी. तक लम्बे होते है। गिड़ार का रंग हरा तथा धारीद्धार होता है। वयस्क पत्तियों की निचली सतह पर अंड़े देती है, लार्वा या सूंड़ी बहुत तेजी से पत्ती खाती है और शीघ्र ही पत्तियों का रंग कागज की तरह सफेद हो जाता है। अन्त में पत्तियों की मुख्य शिरा ही शेष रह जाती है। इसका आक्रमण फरवरी-मार्च में होता है। इसकी रोकथाम के लिये 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस का घोल छिड़कना चाहिए। ध्यान रहे कि छिड़काव के 20 दिन बाद ही पशुओं को चारा खिलाइयें।
6. **बिहार रोयेंदार गिड़ार -** कीट का रंग भूरा नारंगी होता है तथा पंखों पर काले धब्बे पाये जाते है। गिड़ार रोयेंदार व उदर अथवा नीचे से काले रंग के होते है। ऊपर की सतह अथवा पीठ की तरफ नारंगी पीले रंग की होती है। गिड़ार हरी पत्तियों को खाते है। एक पत्ती समाप्त होने पर दूसरी पर पहुंच जाते है। यह गिड़ार अनेक वनस्पत्तियों पर निर्वाह कर सकता है। जैसे रिजका, ज्वार, लोबिया व सोयाबीन आदि। इसकी रोकथाम के लिये 0.05 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस का घोल छिड़कना चाहिए।
7. **चने का कुतरा -** वयस्क धूसरित सफेद रंग के होते है। अगले पंखों पर पट्टियाँ, दो काली धारीदार कतारों में जो पंख के आधार पर होती है प्रारम्भ होती है। इसके लार्वा रात में आक्रमण करते है व दिन में मृदा सतह पर छिप जाते है। बीजांकुरों को भारी हानि पहुंचाते है। इसकी रोकथाम के लिये 0.2 प्रतिशत सेविन का 800-1000 लीटर घोल प्रति हैक्टेयर छिड़कना चाहिए। छिड़काव के 20 दिन तक पशुओं को हरा चारा नही खिलाइयें।

## 8.18 रोग नियन्त्रण

पत्तियों का रंग कभी-कभी कांसे के रंग के समान हो जाता है जो वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में पाया जाता है। यह रोग फॉस्फोरस देने से व उचित जल निकास का प्रबन्ध करने पर नियन्त्रण में हो जाता है। तना सड़न रोग बरसीम में फफूंद से लगता है।

1. **लुसर्न गेरूई (रस्ट) -** मार्च-अप्रेल में इनका आक्रमण होता है। पत्ती एवं तने पर लाल-भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है। इनकी रोकथाम के लिये 0.2 प्रतिशत ड़ाइथेन एम-45 या ड़ाइथेन जैड़-78 के घोल का छिड़काव करना चाहिये एवं 15-20 दिन तक चारे की कटाई न करे।
2. **मृदुरोमिल आसिता (ड़ाउनी मिल्ड्यू) -** इस बिमारी का प्रकोप सर्दियों में होता है जब हवा में अधिक नमी होती है। रोग के कारण पत्तियां खराब हो जाती है। जैसे ही रोग प्रारम्भ हो, फसल को काट लेनी चाहिये। यदि बिमारी फिर भी नियंत्रित न हो तो 0.2 प्रतिशत ड़ाइथेन जैड़-78 के 800 लीटर घोल को प्रति हैक्टेयर छिड़कना चाहिये या 1.0 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण के छिड़काव से भी रोग नियंत्रित किया जा सकता है। छिड़काव के बाद 15-20 दिन तक फसल को पशुओं को नही खिलाना चाहिये।

## 8.19 बरसीम चारे की फसल में कीट नियंत्रण में घ्यान देने हेतु सावधानियां

चारे की फसलों में कीट पतंगों के नियंत्रण के लिये क्लोरिनेटिड़, हाइड्रोकार्बन कीट रसायन जैसे ड़ी. ड़ी. टी.,बी.एच.सी., हैप्टाक्लोर, एल्ड्रीन-ड़ाइएल्ड्रीन व क्लोरड़ेन आदि का प्रयोग नही करना चाहिये। क्योंकि ये रसायन मृदा, पौधों तथा पशुओं की उत्तिका में स्थित होते है तथा रक्त श्रृंखला में इकटठें होते है। जैसे ड़ी. ड़ी. टी. व बी. एच. सी., पशुओं के वसा उत्तियों में एकत्रित होते है तथा वहां से रक्त व दूध में धीरे-धीरे पहुंचते है। इस प्रकार मांस व दूध के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते है और इस प्रकार हमारे शरीर में अव्यवस्था पैदा करते है। सुरक्षित एवं प्रभावयुक्त नियंत्रण के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिये।

1. कीटों को क्षरण देने वाले खरपतवारों जैसे बथुआ बरसीम के गिड़ार को व मकांेय को एफिड़स् शरण देते है अतः इन कीट पतंगों को नियंत्रित करने के लिये बथ्ुाआ व मकांेय को नष्ट करना चाहिये।
2. जिन फसलों के बीज अथवा बीजांकुरों पर कीट पतंगों का आक्रमण होता है उनकी बीज दर ड़ेढ गुनी कर देनी चाहिये।
3. सभी प्रकार की सूंडियों अथवा गिड़ारों जैसे बिहार रोयेंदार गिड़ार, बरसीम गिड़ार के अण्ड़ों व लार्वा या गिड़ारों को नष्ट करना चाहिये।
4. कीट पतंगों के मध्यम आक्रमण पर फसल को काटकर पशुओं को खिला देना चाहिये। दवाई छिड़कने के 20-25 दिन बाद ही खेत से चारे की कटाई करे।

## 8.20 कटाई

बुआई के 50-60 दिन बाद बरसीम की पहली कटाई कर सकते है। इसके बाद 25-30 दिन के अन्तराल पर कटाई करते रहना चाहिये। सर्दियों में फरवरी के मध्य तक 30-35 दिन के अन्तर पर तथा उसके बाद 25-30 दिन के अन्तर पर आगामी कटाईयाँ की जा सकती है। पौधों को जमीन की सतह से 5-7 सेमी. की ऊंचाई पर काटना चाहिये। इस तरह बढ़ने वाली कलियों

को नुकसान नही होगा और चारे की बढ़वार अच्छी होगी। बरसीम जई के मिश्रण की पहली कटाई 60 दिन बाद करनी चाहिये।

## 8.21 उपज

उन्नत विधियों से बरसीम की खेती करने पर 1000-1200 क्विंटल प्रति हैक्टर तक हरा चारा मिलता है एवं इस चारे में 15-18 प्रतिशत तक शुष्क पदार्थ पाया जाता है। यदि फरवरी के बाद फसल को बीज के लिए छोड़ दिया जाता है तो करीब 700 किलो बीज तथा 600 क्विंटल हरा चारा प्रति हैक्टयर प्राप्त होता है।

## 8.22 बीज उत्पादन

बीज तैयार करने के लिये बरसीम को कतारों में बोना चाहिये। इससे खरपतवारों की प्रभावी रोकथाम की जा सकती है। तीन कटाईयां करने के बाद फसल को बीज के लिये छोड़ देना चाहिये। इसका सबसे उचित समय फरवरी का अन्तिम सप्ताह या मार्च का पहला सप्ताह होता है। तीसरी कटाई के बाद खेत में तब तक सिंचाई नही करनी चाहिये, जब तक पौधों में फूल वाली कलियां न निकलने लगें। फूलों वाली कलियां दिखाई देते ही सिंचाई शुरू कर देनी चाहिये। इससे चारे की बढ़वार रूक जायेगी और फूल अधिक खिलेगें। यदि बुवाई देर से की जाये या जिन क्षेत्रों में मार्च में अधिक गर्मी पड़ने लगे वहां केवल दो कटाईयों के बाद ही फसल को बीज के लिये छोड़ देना चाहिये। अप्रैल में फूल खिलने लगते है और मई के पहले सप्ताह में बीज तैयार हो जाता है। इसके बाद फसल को काटकर बीज निकाल ले। अच्छी फसल से एक हैक्टर में करीब 6-7 क्विंटल बीज मिल जाता है परन्तु देर तक कटाई करते रहने पर बीज की उपज कम होती है एवं उत्पन्न बीजों का अंकुरण प्रतिशत कम होता है।

## 8.23 बीज हेतु कटाई प्रबन्ध

इन फसलों के बीज मध्य मई तक पककर तैयार हो जाते है। बरसीम की फसल की कटाई उस वक्त करनी चाहिये जब पुष्प मुँड मुरझाकर कत्थई रंग के पड़ जायें तथा फसल की पत्तियाँ सूखने लगी हो। पकी हुई फसल को सुबह के समय जब मौसम नम रहे, काटकर एकत्रित कर ले ताकि बीजों को खेत में झड़ने से रोका जा सके। फसलों को खलियान में लाकर अच्छी तरह सूखने के बाद बीज अलग कर लेने चाहिए।

## 8.24 बीज उपज

उन्नत शस्य क्रियाओं को अपनाकर किसान बरसीम की फसल से 400-500 क्विंटल हरे चारे की पैदावार के अलावा 6-8 क्विंटल बीज प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त कर सकता है।

साधारणतयाः बरसीम के बीजों को भण्डारण करते समय अधिक ध्यान रखा जाता है क्योंकि बरसीम के बीज चमकीले पीले रंग के होते है यदि इनको नम स्थितियों में भण्डारण करने से भूरे से चॉकलेटी रंग के हो जाते है। अतः बीजों को अच्छी तरह सुखाकर शुष्क एवं ठण्डी जगह भण्डारण करना चाहिये। अन्यथा बीजों की अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

## 8.25 सारांश

उन्नत विधियों से बरसीम की खेती करने पर पहली कटाई बुआई के 50-60 दिन बाद तथा बाद की कटाईयाँ 25-30 दिन के अन्तराल पर करके 1000-1200 क्विंटल प्रति हैक्टर हरा चारा मिलता है। यदि बरसीम को बीज उत्पादन के लिए है तो करीब 700 किलो बीज तथा 600 क्विंटल हरा चारा प्रति हैक्टयर प्राप्त होता है। अधिक हरा चारा प्राप्त करने हेतु प्रारम्भिक कटाई तक सरसों, गोभिया सरसों, लाही, जई व सैंजी को बरसीम के साथ मिला कर बोना लाभदायक है। दोनो फसलों की बीज दर का आधा-आधा बीज मिलाकर बोयें। जई नही बोने पर दो किलोग्राम सरसों का बीज प्रति हैक्टेयर बरसीम के बीज में मिलाकर बोना चाहिए। बरसीम के बीजों को भण्डारण हेतु अच्छी तरह सुखाकर शुष्क एवं ठण्डी जगह भण्डारण करना चाहिये। अन्यथा बीजों की अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

## 8.26 बहुचयनात्मक प्रश्न

1. बरसीम की उपयुक्त बीज दर (कि.ग्रा./है.) क्या है-
   (क) 40-45 (ख) 25-35 (ग) 10-15 (ड़) 15-20
2. बरसीम के बीजों में किस मुख्य खरपतवार के बीज पाये जाते है-
   (क) कासनी (ख) बथुआ (ग) अमरबेल (ड़) हिरनखुरी
3. बरसीम के चारे में कितने प्रतिशत शुष्क पदार्थ पाया जाता है-
   (क) 20-25 (ख) 15-18 (ग) 15-20 (ड़) 10-15
4. बरसीम को हानि पहुचाने वाला प्रमुख कीट है-
   (क) थ्रिप्स (ख) सेमीलूपर (ग) एफिड़ (ड़) ग्रासहोपर
5. बरसीम की ट्रेट्राप्लायड किस्म कोनसी है-
   (क) मसकावी(ख) खदरावी (ग) पूसा जायन्ट (ड़) बरसीम लुधियाना-1

**बहुचयनात्मक प्रश्नों के उत्तर**

1.(ख) 2. (क) 3. (ख) 4. (ख) 5. (ग)

## 8.27 सन्दर्भ ग्रन्थ


1. Singh, S.S. 1993., Crop Management under lirrigated and Rainfed Conditions. Kalyani Publishers,New Delhi,pp : 373-377.
2. Singh,Chhidda. 1999.,Modern Techniques of Raising Field Crops,Oxford &IBH publishing company private limited,New Delhi,pp : 388-394.
3. Kumar,R.V.,Singh, D.N.,Kantwa,S.R. and Faruqui, S.A., 2012,Data Base of Forage Crop Varieties (Updated Edition),OGFRI,Jhansi (UP) ,pp : 212-226.

4. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर
5. शर्मा, रामफूल एवं शर्मा, रविकान्त, 2003, बरसीम एवं रिजका का चारे के साथ बीज उत्पादन, विश्व कृषि संचार, पेज 15-16
6. गोलाड़ा, शंकर लाल एवं शर्मा, जी. एल., 2012, वैज्ञानिक विधियों द्वारा हरा चारा उत्पादन, पेज 13-17

# इकाई 9

# मक्का

**इकाई की रूपरेखा**


9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 महत्व एवं उपयोग

9.3 जलवायु

9.4 वर्गीकरण

9.5 मक्का की वृद्धि अवस्थांये

9.6 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताए

9.7 खेत की तैयारी

9.8 बीज दर व बुवाई

9.9 पोषक तत्व प्रबंधन

9.10 खरपतवार प्रबंधन

9.11 कीट प्रबंधन

9.12 रोग प्रबंधन

9.13 सारांश

9.14 बोध प्रश्न

9.15 संदर्भ ग्रंथ


## 9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- मक्का उत्पादन की उन्नत तकनिकी ज्ञात कर पाऐंगें।
- मक्का की जलवायु, भूमि, बुआई, तकनीकी आदि।
- मक्का में खाद की मात्रा, सिचाई आदि।
- मक्का के कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

## 9.1 प्रस्तावना

मक्का को विश्व में खाद्यान्न फसलों की रानी कहा जाता हैं क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक हैं। वर्तमान में 24 प्रतिशत मक्का का उपयोग मानव आहार, 44 प्रतिशत कुक्कुट आहार, 16 प्रतिशत पशु आहार, 14 प्रतिशत स्टार्च (मड़), 1 प्रतिशत बीज के रूप में होता हैं। भारत में मक्का विशेष रूप से गरीब जनता का मुख्य भोजन हैं। मक्का में विटामिन 'ए' तथा 'ई' भी पर्याप्त मात्रा में होती हैं । मक्का के भ्रूण में तेल 30-40 प्रतिशत तक पाया जाता हैं।

मक्का का वानस्पतिक नाम- जिया मेज (Zea mays. L)

| | | |
|---|---|---|
| कुल (Family) | – | ग्रेमीनी (Granrinae) |
| उपकुल (Tribe) | – | मायड़ी (Maydae) |
| वंश (Genus) | – | जिया (Zea) |
| जाति (Species) | – | मेज (Mays) |

## 9.2 महत्व एवं उपयोग (Importance & Utility)

मक्का की खेती मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों से की जाती हैं जैसे-

(1) दाने के लिये

(2) चारे के लिये

(3) हरे भुट्टे के लिये

मक्का के दाने का उपयोग जानवरों के रातिव (राशन), कुक्कुट व पक्षी के भोजन के रूप में किया जाता है लेकिन अमेरिका में मक्का की खेती सूअरों को खिलाने के लिये की जाती हैं। मक्का के दानों में स्टार्च की मात्रा अधिक होने से इसका उपयोग औद्योगिक रूप से शराब व स्टार्च बनाने के काम आती है। मक्का के दानों को भून कर व चूरा बना कर (Corn Flakes) काम में लिया जा सकता हैं।

मक्का से ग्लूकोज, इथेनाल, शराब आदि के अलावा मक्का के स्टीप (steep) जल में एक जीवाणु (Penicillum notatum) पैदा कर के इससे पैन्सेलीन दवा तैयार की जाती है। एसिटिक व लैक्टिक अम्ल, रेयन, कागज, प्लास्टिक , गोंद, रंग, कृत्रिम रबड़ व चमड़ा , जूते की पॉलिश, पैकिंग पदार्थ के रूप में काम में आने के कारण अमेरिका में बड़े पैमाने पर इसकी खेत की जाती हैं।

शहरों के आस पास अगेती बुवाई करके हरे भुट्टे के रूप में मक्का का प्रयोग किया जाता है तथा पौधों को हरे चारे के रूप में प्रयोग में लेते है। इसके अलावा गुणवत्ता मक्का को आहार के रूप में प्राथमिकता दी जा रही हैं। कि इसके प्रोटीन में लाइसीन (Lysine) तथा ट्रिप्टोफेन (Tryptophan) नामक दो अमीनो अम्ल सामान्य मक्का की तुलना में अधिक होते है अतः गरीब जनता में गुणवत्ता मक्का का प्रयोग कर कुपोषण से होने वाली बीमारियों से बचा जा सकता है पशु आहार में भी इसका उपयोग लाभकारी होता है। मक्का में विटामिन 'ए' तथा 'ई' भी पर्याप्त मात्रा में होती हैं । मक्का के भ्रूण में तेल 30-40 प्रतिशत तक पाया जाता हैं।

## 9.3 जलवायु

मक्का एक ग्रीष्मकालीन फसल है। अतः इसे गर्म-तर जलवायु में उगाया जाता है वैसे मक्का को काफी बड़े क्षेत्र में विभिन्न जलवायु में उगाया जा सकता है लेकिन लगभग 85 प्रतिशत मक्का की खेती मानसून मौसम में की जाती है क्योंकि रात के तापमान में 15.60 सें. या 600 से. ग्रे. से नीचे आने पर मक्का की वृद्धि एकदम रूक जाती है। अतः इसकी बुवाई के समय वायुमण्डल का तापमान 180-200 सें. ग्रे. होना चाहिये, अगर तापमान 90-100 सें. ग्रे.

से कम होगा तो बीजों में अंकुरण उचित रूप से नहीं होगा। बीजों के अंकुरित होने से लेकर नर मंजरी (Tasseling) निकलने तक तापमान का असर बहुत अधिक होता है।

बोवाई के 60 दिन तक का तापमान $22^0$ सें. ग्रे. से अधिक होने पर पर मंजरी निकलने के समय में 2-3 दिन की कमी आ जाती हैं। मक्का के पकने की अवस्था को छोडकर शेष सभी अवस्थाओं में तापमान लगभग $25^0$ सें. ग्रे. के आस-पास रहना अच्छा रहता हैं। पकते समय गर्म व शुष्क वातावरण ठीक रहता हैं। पाला फसल के लिये किसी भी अवस्था में हानिकारक होता हैं तथा फसल पूर्णरूप से नष्ट हो जाती है।

मक्का की खेती वृहद रूप से जहाँ वार्षिक वर्षा 25 से 400 से. मी. तक होती है की जा सकती है। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिये 60-70 प्रतिशत आपेक्षिक आद्रता (Relative himidity) सबसे उत्तम रहती है । उचित वितरित 60 से. मी. वार्षिक वर्षा पर्याप्त रहती हैं । यह माना जाता है कि पौधे की कुल जल आवश्यकता का 50 प्रतिशत मांजरे आने से 30-35 दिन के बीच उपयोग होता हैं अतः दाना भरने की अवस्था में कम नमी के कारण दानें सिंकुड़ जाते हैं तथा पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

मक्का एक सी-4 गुण का पौधा है अतः प्रकाश संश्लेषण के लिये चमकीली धूप के दिन आवश्यक हैं अतः लम्बे समय तक बादल छाये रहने से मक्का की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भुट्टा बनते समय तेज हवा से भी पौधे गिर जाते हैं जो पैदावार घटाते है।

## 9.4 वर्गीकरण

वैज्ञानिकों द्वारा मक्का का वर्गीकरण पकने की अवधि, जातीय आधार, उपयोग आदि विभिन्न आधारों पर किया गया हैं, परन्तु मक्का का वानस्पतिक वर्गीकरण मक्का के दाने के आधार पर किया गया है जो निम्न प्रकार है:

1. **डेन्ट मेज** (**Dent maize)** : यह मक्का संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बहुत प्रचलित है । सूखने पर दाने की ऊपरी सतह पर गड्ढा सा बन जाता और दाना दाँत की तरह दिखाई देता है इस कारण इसे डेन्ट मेज कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम जिया मेज इन्डेनटाटा (Zea mays indentata) है।
2. **फ्लींट मेज (Flint maize)** : इसके दाने कठोर , मांडयुक्त और चिकने होते हैं । दानों का ऊपरी भाग गोलाकार होता है। यह मक्का एशिया, मध्य अमेरिका और दक्षिण अमेरिका में प्रचलित है। वानस्पतिक नाम जिया मेज इन्डुराटा (Zea mays indurate) है।
3. **फ्लोर मेज (Flour maize)** : यह दक्षिण अमेरिका तथा दक्षिणी अफ्रीका में प्रचलित है। इसके दाने नर्म होते हैं और इन्हैं पीस कर आटा बनाया जाता है इसका वानस्पतिक नाम जिया मेज एमाइलेसी (Zea maiys amylacea) है।
4. **मीठी मेज (Sweet maize)** : इसके दाने पकने पर ऊपर की तरफ सिकुड़ जाते है । दानों में चीनी एवं मांड (Starch) की मात्रा अधिक होने से दाना मीठा होता है इसके

भुट्टों को हरा ही सेक कर या उबाल कर खाया जाता है । वानस्पतिक नाम जिया मेज सेकरेटा (Zea mays saccharata) है।

5. **पॉप मेज (Pop maize)** : यह छोटे भुट्टे एवं छोटे दानें वाली मक्का है परन्तु सेकने पर दानों में फुलाव (popping) बहुत अधिक होती है। इसलिये इसका उपयोग 'पोप कार्न' के रूप में होता हैं। इसे खील, लावा या भूंजाने बनाने के काम में लेते हैं। इसका वानस्पतिक नाम जिया मेज एवर्टा (Zea mays averta) है।
6. **मोमी मेज (Waxy maize)** : इसके दाने मोमनुमा होते हैं अतः इसे मोमी मक्का कहा जाता हैं। इनका प्रयोग मुख्यतया चिपकाने वाले पदार्थ बनाने तथा कपड़े और कागज के करखाने में होता है इनका वानस्पतिक नाम जिया मेज केरेटिना (Zea mays caratina) है।
7. **पोड़ मेज (Pod maize)** : इस मक्का का प्रत्येक दाना और सम्पूर्ण भुट्टा छिलकों से ढका रहता है । यह मक्का की एक प्राचीन किस्म है । इसकी खेती व्याहारिक तौर पर नहीं होती हैं । वानस्पतिक नाम जिया मेज ट्यूनीकाटा (Zea mays tunicate) है।

## 9.5 मक्का की वृद्धि अवस्थायें: Growth stage of maize

मक्का के पौधों में निम्नलिखित वृद्धि अवस्थायें पायी जाती है: -

1. **पौध अवस्था (Seeding stage):** यह बीज की बुवाई के बाद करीब एक सप्ताह तक जब पौधा निकलकर भूमि से बाहर आ जाता है तथा पौधे के दो -चार पत्तियाँ होती हैं।
2. **वृहत वृद्धि अवस्था:** यह पौधे की बुवाई से 35 से 45 दिन बाद की अवस्था होती है इस अवस्था में पौधा घुटने कि ऊँचाई के बराबर होता है। इस अवस्था पर नत्रजन की प्रथम मात्रा का छिटकाव तथा निराई-गुड़ाई की अतिंम अवस्था होती है इसके बाद के प्रत्येक दिन की देरी से पत्तियों एंव जड़ों को नुकसान होता है।
3. **नर मंजरी (माँजरा) अवस्था (Tasseling stage):** इस अवस्था को तकनीकी तौर पर पुष्प निकलने की अवस्था (Flower initiation stage) कहते हैं इसमें नर तथा मादा पुष्प निकलने शुरू होते हैं। इस अवस्था पर यूरिया की अंतिम मात्रा का छिटकाव कर देना चाहिये। इस अवस्था के बाद उर्वरक दिये जाने पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं देते हैं।
4. **रेशमी धागे की अवस्था (Silking stage):** इस अवस्था को भुट्टा बनने की प्रारम्भिक अवस्था अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था पर मादा पुष्प या भुट्टा बनता है । यह पुष्प पत्ती की कक्षस्थ कलिका से बनते हैं जबकि नरमंजरी सबसे ऊपरी कलिका से बनती हैं। वास्तव में भुट्टा पौधे की 11 से 13 पत्ती के कक्ष में बनते हैं मादा पुष्प या भुट्टे कहलाते जबकि नर पुष्प पौधे के शीर्ष पर 14-15 पत्तियों के बाद बनकर बाहर आते हैं।
5. **दानों में दूध की अवस्था (Soft dough stage or milk stage):** इस अवस्था को दूधिया अवस्था भी कहते हैं। यह पुष्पों के परागण तथा निषेचन की क्रिया के बाद आती हैं। इसमें दाना विकसित होना प्रारम्भ करता हैं लेकिन सख्त नहीं होता हैं । इस अवस्था

में रेशम भूरे रंग का हो जाता हैं तथा भुट्टे के पास हल्का हरा रहता है । भुट्टे के ऊपर की पत्ती भी हरी बनी रहती हैं। यह अवस्था भुट्टे खाने के लिये उत्तम अवस्था है ।

6. **दाना पकने कि अवस्था (Hard dough stage):** इस अवस्था में दाने सख्त होकर शुष्क हो जाते हैं। पत्तियाँ भी सूखने लगती हैं रेशम भी काली पड़ कर सूख जाती हैं तथा भुरभुरी हो जाती हैं । इस अवस्था पर फसल की कटाई कर सकते हैं।

## 9.6 उन्नत किस्में एवं उनकी विशेषताएं:

**देर से पकने वाली किस्में:**

**संकर किस्में**

**एच.क्यू.पी.एम. 1:** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दाने वाली यह किस्म 95-105 दिन में पक कर तैयार हो जाती हैं। इसकी औसत उपज 40-50 क्विंटल प्रति हैंक्टर होने के साथ ही 9-10 प्रतिशत प्रोटीन एवं आवश्यक अम्ल की मात्रा भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं।

**एच.क्यू.पी.एम. 5** (उच्च प्रोटीन गुणवत्ता मक्का) एकल संकरण द्वारा विकसित इस किस्म का दाना नारंगी व गोल होता है। इसमें प्रोटीन 9.8 प्रतिशत तथा आवश्यक एमिनों एसिड़, लाईसिन एवं ट्रिप्टोफेन संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। यह पत्ती झुलसा रोग एवं ताना छेदक के लिए मध्यम प्रकतरोधी तथा उच्च उर्वरक स्तर पर अधिक उत्पादन देने की क्षमता वाली किस्म हैं। यह मध्यम से देरी से उगने वाली किस्म हैं जिसकी औसत उपज 30-40 क्विंटल प्रति हैंक्टर उपज देती हैं।

**गंगा सफेद -2:** यह सफेद दानों वाली किस्म है । इसके पौधों की ऊंचाई 170 से 200 सेंटीमीटर होती है । यह 105 से 110 दिन में पकने वाली किस्म हैं जो 45 से 55 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर तक उपज देती है । यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं।

**गंगा-11:** इस किस्म के दाने कठोर, पीले रंग के होते हैं। पौधों की ऊंचाई 180 से 190 सेंटी मीटर होती है। 95 से 115 दिन में पकने वाली यह किस्म तुलासिता रोग प्रतिरोधक है । इसकी उपज 45-50 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर तक होती है। यह सिंचित व अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**बायों-9681:** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दानों वाली इस किस्म के पौधों की ऊँचाई 175-185 सेंटीमीटर होती है। 95-100 दिन में पककर यह किस्म 45-50 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर उपज देती है। यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**ही-स्टार्च:** मक्का की यह संकर किस्म स्टार्च (मांड) उद्योग के लिये विकसित की गई है। स्टार्च की मात्रा इस किस्म में अधिक होती है। फसल की अवधि 110-120 दिन एवं उपज 50-55 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इस किस्म का मांजर सघन, भुट्टा बेलनाकार तथा दाने बड़े, चपटे एवं सफेद रंग के होते हैं।

**रणजीत:** इस किस्म की पकाव अवधि 10-110 दिन तथा उपज 45-50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसका तना मोटा होता है। जिससे तेज हवा से भी पौधे गिरते नहीं है। झुलसा व 'मृदुरोमिल आसिता' रोग रोधक तथा तना छेदक कीट के प्रति सहनशील है।

**संकुल किस्में**

**माही धवल:** सफेद कठोर दानों वाली इस किस्म की ऊंचाई 160 से 200 सेंटीमीटर होती है । 95 से 100 दिन में पककर यह 36 से 45 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर तक उपज देती हैं। सिंचित एवं अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म पत्ती धब्बा व तुलासिता रोग के साथ ही तना छेदक कीट के लिए भी सामान्यतः प्रतिरोधक क्षमता रखती हैं।

**विजय:** यह पीले दाने वाली किस्म है, जिसमें प्रोटीन की मात्रा 11 प्रतिशत होती है। इसकी उपज 40-45 क्विंटल दाना प्रति हैक्टर है।

**मध्यम समय में पकने वाली किस्में:**

**संकर किस्में**

**के.एच. - 510:** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दानों की यह किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है । 35 से 40 क्विंटल प्रति हैंक्टर तक इसकी पैदावार ली जा सकती है ।

**बायो-9637:** एकल संकरण द्वारा विकसित पीले दानों की यह किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार होती हैं। इस किस्म के पौधों की ऊंचाई 155-165 सेन्टीमीटर होती है । इसकी औसत पैदावार 35-40 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर होती है । इस किस्म में कीट एवं बीमारियों के लिए प्रतिरोधक क्षमता है।

**पी.ई एच. एम. -1:** यह एकल संकर किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने मोटे तथा आकर्षक पीले रंग के होते हैं। पौधों की ऊंचाई 185 - 220 सेन्टीमीटर होती है। यह संकर किस्म तना छेदक के लिए प्रतिरोधक है। इसकी औसत उपज 45 कुंतल प्रति हैंक्टर तक होती है।

**पी.ई एच. एम. -2:** यह संकर किस्म 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दाने मोटे, आर्कषक तथा नांरगी रंग के होते है। यह किस्म सामान्य परिस्थितियों में 45 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर उपज देती है। इसका तना मजबूत, भुट्टा लंबा तथा पौधा आकर्षक होता है। यह प्रमुख बीमारियों तथा कीटों के लिए प्रतिरोधक है और भूमि में नमी की कमी के लिए सहिष्णु हैं।

**डक्कन -103:** इस किस्म के दाने पीले व मध्यम ऊँचाई (160-170 से. मी.) वाली यह किस्म 40-45 क्विंटल उपज प्रति हैक्टर देती है। सूखे के प्रति यह किस्म अन्य संकर किस्मों की तुलना में अधिक प्रतिरोधी हैं।

**संकुल किस्में**

नवजोत: यह मध्यम समय में पकने वाली संकुल किस्म है। जो 85-90 दिन में पककर 30-40 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर तक पैदावार देती है। इसके दानों का रंग पीला होता है। यह किस्म राजस्थान के केवल वर्षा आधारित मक्का खेती के लिये उपयोगी किस्म है।

**जल्दी पकने वाली किस्में:**

**संकुल किस्में**

**नवजोत (जे-684):** यह पीले दानों की संकुल किस्म है जो कि 85 दिन में पककर 30-35 क्विंटल प्रति हैंक्टर की पैदावार देती है। यह वर्षापोषित क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त किस्म है।

**जी. एम. -6:** सफेद दानों वाली मक्का की यह संकुल किस्म है। यह 80 से 85 दिन में पककर तैयार हो जाती हैं । इसकी उपज क्षमता 25 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इसकी मांजरे 45 दिनों में आ जाती हैं एवं पौधे की ऊंचाई 190 से 200 सेंटीमीटर तक होती है।

**माही कंचन:** पीले मोटे दानों वाली यह किस्म 75-80 दिन में पककर 32-38 क्विंटल प्रति हैंक्टेयर उपज देती है। इसकी ऊंचाई 172-180 सेंटीमीटर होती है। इसमें पत्ती धब्बा रोग, तुलासिता, तना गलन रोग तथा तना छेदक कीट के लिए प्रतिरोधक क्षमता है । अल्प समय में पकने के कारण कम वर्षा वाले क्षेंत्रों के लिए यह किस्म बहुत उपयोगी हैं। अधिक वर्षा एवं भारी वर्षा एवं भारी भूमि वाले क्षेत्रों में जल निकास की व्यवस्था होने पर अच्छी उपज देती है।

**माधुरी:** मक्का की यह किस्म मीठे दानों वाली है । इसकी काश्त हरे भुट्टे 55 से 60 दिन में तोड़े जाते हैं इसके दानों का रंग पीला होता हैं। इस संभाग में इसकी खेती रबी एवं जायद मौसम में शहर एवं कस्बों के आसपाय के क्षेत्रों में अधिक फायदेमंद सिद्ध हुई हैं।

**किरण:** यह जल्द पकने वाली किस्म है। यह 85-90 दिन में पककर 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है। दानों का आकार छोटा होता है। यह किस्म भी वर्षा पोषित क्षेत्र के लिये उपयुक्त है।

**भूमि (Soil):** मक्का की खेती गहरी उपजाऊ जिसमें कार्बनिक पदार्थ की अधिकता हो साथ ही जल निकाय की समुचित व्यवस्था हो उत्तम रहती है। मक्का के लिये ऐसी भूमि जिनका पी. एच. मान 6.5 से 7.5 हो उत्तम मानी जाती है । 8.5 पी. एच. मान तक इसकी सम्भव है लेकिन अम्लीय भूमियो में खेती मुश्किल हैं।

## 9.7 खेत की तैयारी (Field preparation)

जुताई का मुख्य उद्देश्य खेत में खरपतवारो का नियंत्रण, बुवाई में सुविधा, वायु संचरण, बीज व भूमि का उचित संपर्क तथा जलधारण क्षमता को बढाना होता है। इसके लिये गर्मी के मौसम में एक गहरी जुताई जो रबी की फसल के कटने के तुरन्त बाद की जानी चाहिये । इसके बाद मौसम की प्रथम बरसात के साथ दो गुणित जुताई करने के बाद पाटा लगाना पर्याप्त रहता है । जहाँ गहरी एवं भारी भूमि हो वहाँ 2-3 गहरी जुताई करनी चाहिये।

## 9.8 बीज दर व बुवाई (Seed rate and sowing)

**बीज की छाँट (Selection):** प्रमाणित एवं शुद्ध (Pure) बीज बोना ही लाभदायक रहता हैं। संकर मक्का का बीज प्रत्येक वर्ष किसी मान्यता प्राप्त संस्था से लेकर प्रमाणित बीज ही बोये । संकर मक्का की फसल से प्राप्त बीज नहीं बोना चाहिये क्योंकि इसके गुणों में गिरावट होती रहती हैं । संकुल मक्का का बीज कृषक अपनी फसल से ही प्राप्त कर सकता हैं। संकुल बीज प्राप्त करने के लिये मक्का को ऐसे खेत में बोवें जहाँ मक्का की दूसरी जातियाँ नहीं बोई गई है। अगर यह संम्भव न हो तो खेत के बीच से बीज प्राप्त कर अगली फसल बोवें। तीन -चार

वर्ष बाद उसी किस्म का बीज किसी संस्था से प्राप्त करें । बीज सदैव बीमारी व कीट रहित होना चाहिये।

**बीज का उपचार (Seed treatment):** किसी भी आर्गनो मरक्यूरियल यौगिको जैसे थीराम, कैप्टान , फोंइटोन व ब्लाइटोक्स से उपचारित करना चाहिये। एग्रोसन जी. एन के 2.5 ग्राम से एक किलो मक्का का बीज उपचारित किया जा सकता है। किसी ढक्कनदार बर्तन में बीज व रयायन डाल कर अच्छी प्रकार हिलाकर आपस में मिला देते हैं। इससे मृदा में, बीज के अंकुरण तक किसी बीमारी का प्रकोप बीजाकुंर पर नहीं होता हैं।

**बीज दर (Seed rate):** छोटे आकार के बीजों की बीजदर कम व बड़े आकार के बीजों की दर प्रति हैंक्टर ज्यादा रखते हैं। बीजदर मृदा में नमीं , फसल बोनें का उद्देश्य, बोने का समय व विधि तथा फसल की जाति आदि कारकों पर निर्भर करती हैं। विभिन्न प्रकार की मक्का की वाँछित पौध दर प्रति हैंक्टर रखने के लिये बीज दर एवं कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी इस प्रकार है: -

| क्र. सं. | फसल का प्रकार | बीज दर (किलोग्राम/हैं.) | कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी (से. मी.) |
|---|---|---|---|
| 1. | जल्दी पकने वाली संकर, संकुल, सामान्य एवं गुणवत्ता मक्का | 18-20 | 60 X 20 |
| 2. | देर से पकने वाली संकर, संकुल, सामान्य एवं गुणवत्ता मक्का | 18-20 | 60 X 25 |
| 3. | फूले की मक्का | 12-15 | 60 X 20 |
| 4. | मीठी मक्का | 5-6 | 60 X 20 |
| 5. | शिशु मक्का | 20-25 | 60 X 15 |
| 6. | सभी मोटे दाने वाली किस्में | 20-25 | 60 X 20 |
| 7. | सभी छोटे दाने वाली किस्में | 18-20 | 60 X 20 |
| 8. | चारे के लिये | 40-45 | 30 X 10 |

**बीज की गहराई (Depth of sowing) :** बीज बोने की गहराई विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं जैसे बोने का समय, मृदा में नमी की मात्रा आदि। सामान्यतौर पर 3.5 से 5.0 से. मी. गहराई पर बीज बोना चाहिये।

**बुवाई का समय (Sowing time)** आज मक्का की ऐसी किस्में जिनमें तापमान व प्रकाश के लिये संवेदनशील न होने के कारण पूरे वर्ष मक्का की खेती की जा सकती है अतः खरीफ, रबी व जायद में इसकी बुवाई कर सकते हैं। उत्तरी भारत में मक्का की खेती खरीफ मौसम में वर्षा के प्रारम्भ होने पर की जाती हैं जून के मध्य से जुलाई के मध्य तक का समय बुवाई के लिये उत्तम माना जाता हैं। अगर वर्षा से पूर्व खेत में पलेवा (Pre-irrigation) देकर जून के अन्तिम सप्ताह में मक्का की बुवाई करने पर अंकुरण भली प्रकार से होता है तथा पौधों

का जमाव भी वर्षा आने तक भली प्रकार से हो जाता है जिससे खेत में पौधों की संख्या भी पर्याप्त रहती है ।

दक्षिणी भारत में मक्का रबी में भी उगाते हैं। रबी की फसल के लिये बुवाई अक्टूबर नवम्बर में करते हैं। इस मौसम की बुवाई निश्चित सिंचाई की स्थिति में की जा सकती है। यह भी देखा गया कि रबी के मौसम में बोई गई फसल खरीफ की तुलना में अधिक पैदावार देती है क्योंकि खरीफ में पोषक तत्वों का ह्रास अधिक होता हैं साथ ही खरपतवारों का अधिक प्रकोप, धूप की कमी, पत्तियों की संख्या व औसत भुट्टा प्रति पौधा कम होता है। वंसतकालीन मक्का में भी गर्म हवा के कारण परागकण सूख जाते हैं तथा परागण क्रिया भली प्रकार न होने के कारण अधिक बाँझपन के कारण प्रति भुट्टा दानों की संख्या कम रहती हैं। रबी की मक्का में अपेक्षाकृत कम पौषकतत्व, कम पानी के साथ-साथ फसल पर कीट पंतगों , बीमारी व खरपतवारों का प्रकोप कम होता है । पत्ति सूचांक में 1 से 1.5 गुणा अधिक, प्रति भुट्टा दानों की संख्या, अधिक दाने भरने से 1000 दानों का वजन अधिक रहता है भुट्टा पक जाने के बाद भी पौधे हरे बने रहते हैं जिसे रिजके के साथ मिला कर पशुओं को खिलाने से अधिक पौष्टिक तत्व प्राप्त होते हैं।

वसंत कालीन मक्का की बुवाई फरवरी से मार्च -अप्रैल तक की जा सकती है। शहरों के नजदीक हरे भुट्टे के लिये इस मौसम में उगाते हैं। चारे के लिये भी इस समय मक्का बोई जा सकती है। इस मौसम की मक्का मुख्य रूप से बिहार , महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में उगाते है इसके लिये भी निश्चित सिंचाई होना आवश्यक है। खरीफ की तुलना में इससे अधिक पैदावार मिलती है।

**बुवाई विधि (Sowing method):** मक्का की बुवाई विभिन्न तरीकों से की जा सकती है। जैसे:

1. **छिटकवाँ विधि:** यह विधि वैज्ञानिक रूप से सही नही है फिर भी कुछ किसान चारे के लिये यह विधि अपनाते हैं । इस विधि में बीज की मात्रा अधिक लगती है तथा फसल में निराई- गुड़ाई करने में परेशानी रहती हैं साथ ही प्रति ईकाई पौधों की संख्या भी बराबर नहीं रह पाती है।
2. **सीड़ ड्रिल से बुवाई:** इस विधि में सीड ड्रिल का प्रयोग किया जाता हैं इस विधि में मशीन द्वारा बीज व खाद निश्चित गहराई व दूरी पर पड़ते हैं जिससे प्रति ईकाई पौधों की संख्या पर्याप्त रहती है। अधिक नमी की स्थिति में इस विधि से बुवाई करने से ड्रिल की नलियाँ बंद हो जाती है जिससे लम्बे दूरी तक कतारें खाली रह जाती है अतः यह विधि हल्की भूमियों के लिये अति उत्तम है।
3. **हल के पीछे कूँड़ में बुवाई:** इस विधि में इच्छित दूरी पर हल से कूँड़ निकाल कर पीछे से बीज की बुवाई की जाती है बाद में हल्का पाटा चला कर बीज को ढक दिया जाता है । इस विधि में भी पौधे से पौधे की दूरी समान नहीं रह पाती हैं लेकिन प्रथम निराई के समय आधिक पौधों को निकाल कर अन्तरण सही किया जा सकता है।
4. **डिबलिंग विधि:** इस विधि में निश्चित दूरी पर खेत में छेद बना कर एक से दो बीज प्रति छेद डालते जाते है। इस विधि में समय तथा मजदूरी अधिक लगती है। बाद में एक स्थान पर उगे दो पौधों में से एक को हटा देते है।

## 9.9 पोषक तत्व प्रबंधन

मक्का की फसल से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये सभी मुख्य एवं लघु पोषक तत्वों को फसल में उचित समय एवं मात्रा में देना आवश्यक है। खाद एवं उर्वरक प्रयोग से पहले मृदा की जाँच अवश्य करवा लेनी चाहिये ताकि उचित मात्रा में पोषक तत्व दिये जा सकें।

भारतीय मृदाओं में नत्रजन एवं फॉस्फोरस की अक्सर कमी पाई जाती है पोटाश तथा लघु पोषक तत्व जैसे लोहा, जस्ता, मैगनीज आदि की कुछ क्षेत्रों में कमी है। अधिक उपज देने वाली मक्का की संकर एवं संकुल किस्मों के प्रचलन से तथा देशी खाद के उपयोग में कमी होने से मुख्य तत्वों के साथ मक्का खेती में लघु तत्वों की कमी के लक्षण फसल में दिखाई देने लगे हैं।

साधारणतया मक्का की फसल से पूरी उपज प्राप्त करने के लिये 10 टन प्रति हैंक्टर अच्छी सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद के अलावा नीचे लिखी मात्रा में पोषक तत्व उर्वरको द्वारा देने चाहिये।

(अ) सिचित एवं पछेती संकर तथा संकुल किस्मों में

| | | |
|---|---|---|
| नत्रजन | – | 90 से 120 किग्रा./है. |
| फॉस्फोरस | – | 40 किग्रा/ है. |
| पोटाश | – | 30-40 किग्रा/ है. |
| जिंक सल्फेट | – | 20 किग्रा/ है. |

(ब) वर्षा निर्भर मक्का एवं मध्यम तथा जल्दी पकने वाली किस्मों में:

| | | |
|---|---|---|
| नत्रजन | – | 60 से 90 किग्रा./ है. |
| फॉस्फोरस | – | 30 किग्रा/ है. |
| पोटाश | – | 20-30 किग्रा/ है. |
| जिंक सल्फेट | – | 20 किग्रा/ है. |

मृदा की उर्वरा शक्ति का परीक्षण करवा कर उपरोक्त मात्रायें कम या अधिक की जा सकती हैं । यदि पिछली रबी फसल में फाॅस्फोरस उचित मात्रा में दिया गया हैं तो मक्का में फाॅस्फोरस देने की आवश्यकता नहीं हैं ।

**खाद-उर्वरक देने का समय एवं विधि:** देशी खाद को गर्मी की जुताई के समय खेत में मिलाना अधिक लाभकारी है या बुवाई के पूर्व आखरी जुताई पर समान रूप से खाद को पूरे खेत में बिखेर कर जुताई कर देनी चाहिये ताकि खाद मिट्टी में अच्छी तरह से मिल जाये।

मक्का में फॉस्फोरस, पोटाश एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा बुवाई के समय भूमि में 10 सेंमी. गहराई पर ऊर कर देनी चाहिये। नत्रजन की एक तिहाई मात्रा भी बुवाई के समय में देनी चाहिये। शेष एक तिहाई नत्रजन की मात्रा बुवाई के 30-35 दिन बाद जब मक्का के पौधे घुटनों की ऊँचाई तक हो जायें तथा शेष बची एक तिहाई नत्रजन की मात्रा जब पौधों पर मांजरे आने लग जाये तब देनी चाहिये। कम वर्षा वाले क्षेत्र, जल्द पकने वाली किस्मों में तथा भारी मृदाओं में नत्रजन की कुल मात्रा को दो बार में, आधी मात्रा बुवाई पर तथा शेष आधी मात्रा 40-45 दिन की फसल में जब भूमि में नमी हो तब देनी चाहिये।

**मक्का की फसल द्वारा मुख्य पोषक तत्वों का चूषण काल एवं संचय:**

**नत्रजन:** मक्का के पौधे नत्रजन का अवशोषण अपने पूरे जीवनकाल तक करते हैं। बुवाई के प्रथम 30 दिन तक नत्रजन का शोषण धीरे-धीरे होता हैं, परन्तु 30 दिन से लेकर मांजरे आने तक पौधों द्वारा नत्रजन का उपयोग सबसे अधिक होता हैं। इस काल में लगभग 4-5 किग्रा. नत्रजन प्रतिदिन मक्का की फसल अवशोषित कर लेती है, जिसका अधिकांश भाग पौधें की पत्तियोंमें संचित होता हैं। फसल पकने की अवस्था पर पौधे पर कुल नत्रजन का 2/3 भाग दानों में तथा शेष 1/3 भाग तने तथा पौधे के अन्य अंगों में रहता हैं ।

**फॉस्फोरस:** फॉस्फोरस भी पौधों द्वारा पूरे जीवनकाल तक शोषित होता हैं। नर मांजरे आने तक पौधा अपनी कुल जरूरत का केवल 15-25 प्रतिशत फॉस्फोरस ही शोषण कर पाता है। निषेचन के बाद से परिपक्वता के समय तक फॉस्फोरस की आवश्यकता पौधों को सबसे अधिक होती हैं। पौधों द्वारा शोषित अधिकतर फॉस्फोरस दाना बनने पर दानों में संचित हो जाता हैं । फसल की कटाई पर शोषित फॉस्फोरस का 75 प्रतिशत भाग दानों में तथा 25 प्रतिशत पौधे के अन्य भागों में विद्यमान रहता हैं।

**पोटाश:** वानस्पतिक बढ़वार के समय पोटाश की काफी मात्रा का शोषण होता हैं। मांजरे निकलने तक पौधे द्वारा अवशोषित किये जाने वाले कुल पोटाश का 30 प्रतिशत तक दोहन हो चुका होता हैं। भुट्टों में दाना बनने की अवस्था तक पौधे लगभग पोटाश की पूरी मात्रा का शोषण कर लेते हैं। नत्रजन एवं फॉस्फोरस के विपरित पोटाश का संचय दानों में बहुत कम होता हैं। शोषित पोटाश का केवल एक तिहाई भाग दानों में तथा शेष दो तिहाई भाग तने या पत्तियों में रह जाता हैं।

शोध परिणाम के अनुसार मक्का की फसल जो कुल 62.7 क्विं /हैं. जैविक उपज (दाना + भूसा) उत्पन्न करती हैं। भूमि से करीब 168 किग्रा. नत्रजन, 57 किग्रा. फॉस्फोरस, 135 किग्रा. पोटाश 14 किग्रा. मैग्निशियम तथा 14 किग्रा. कैल्शियम प्रति हेक्टेयर शोषण करती हैं।

**मक्का में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण:**

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण मक्का के पौधे पर अन्य फसलों के पौधों की अपेक्षा स्पष्ट एवं आसानी से लक्षित होते हैं।

विभिन्न तत्वों की कमी के लक्षण निम्न प्रकार हैं।

**नत्रजन:** निचली पत्तियों में ऊपरी सिरे से नीचे की ओर 'ट' के आकार में पीलापन प्रकट हो कर बढ़ता जाता हैं।

फॉस्फोरस: निचली पत्तियों के सिरे से प्रारम्भ होकर बैंगनी रंग एवं भूरे रंग की कतारें पत्तियों के नीचे की और बढ़ती हैं

**पोटाश:** निचली पत्तियों के किनारे भूरे पड़ जाते हैं एवं सूखने लगते हैं। कमी के लक्षण पत्तियों के ऊपरी भाग में प्रांरभ होकर नीचे की ओर बढ़ते हैं।

**मैग्निशियम:** निचली पत्तियों की शिराओं (अमपदे) के बीच पीलापन प्रांरभ होता हैं तथा बाद में किनारे लाल, बैंगनी रंग के हो जाते हैं।

**गंधक:** निचली एवं ऊपरी पत्तियों में समान रूप से पीलापन दिखाई देता हैं।

**जस्ता:** नई पत्तियों के निचले हिस्से में पीले या सफेद रंग की पट्टियाँ बन जाती हैं।

**लोहा:** नवनिर्मित पत्तियों के ऊपर से नीचे तक शिराओं के मध्य पर्णहरित की कमी दिखाई देती हैं।

**तांबा:** नवनिर्मित पत्तियाँ एक समान हल्के पीले रंग की हो जाती हैं तथा निचली पुरानी पत्तियाँ सिरों से सूखने लगती हैं।

**मैंगनीज:** नई पत्तियों की शिराओं के बीच का रंग सिरे से लेकर हल्का पीला हो जाता हैं।

**मोल्बिडिनम:** नवनिर्मित पत्तियाँ किनारों से सूखकर मुरझाने लगती हैं।

**जल प्रबंधन**

ग्रीष्म ऋतु में हरे भुट्टे, हरे चारे अथवा दाने के लिये बोई गई फसल में 10 से 12 दिन के अन्तर पर मानसून प्रारंभ होने तक सिंचाई की आवश्यकता होती हैं । इस ऋतु मे हरे चारें की फसल के लिए 4-6 सिचाइयों तथा हरे भुट्टों की फसल के लिये 7-8 सिंचाईयों तथा दाने की फसल के लिए 8-10 सिंचाईयों की जरूरत होती हैं।

वर्षा ऋतु में मध्य जून में बोई गई मक्का को 12-15 दिन के अन्तर पर वर्षा प्रारंभ होने तक 1-2 सिंचाईयों की आवश्यकता हो सकती है। वर्षा उपरान्त बोई गई मक्का की फसल अधिकतर वर्षा पर निर्भर रहती है। अगर वर्षा काल के मध्य में 30-35 दिन का सूखा पड़े तो आवश्यकता अनुसार सिंचाई प्रबंधन करना चाहिये। वैसे तो मक्का की फसल में किसी भी क्रान्तिक अवस्था पर सूखा पड़ने से उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, परन्तु मांजरे आते समय तथा दाना बनाते समय 2 से 3 दिन तक पानी की कमी से 20-22 प्रतिशत और 7 दिन तक पानी की कमी से 50 प्रतिशत तक उपज में कमी आ सकती हैं।

मक्का की फसल सूखे एवं प्रारंभिक अवस्था मे पानी भराव की स्थिति के प्रति अतिसंवेदनशील हैं। मक्का के पौधे जब 15 से 20 सेमी. ऊँचे हों तब अगर खेत में 72 घंटे तक लगातार पानी रहे तो पूरी फसल गल कर नष्ट हो जाती है। इस अवस्था पर 24 घंटे तक लगातार पानी भरे रहने पर भी उपज में 25-30 प्रतिशत की कमी आ सकती हैं । अतः मक्का के खेत में अतिरिक्त पानी के निकास के लिए नालियाँ बुवाई के समय ही तैयार कर लेनी चाहिये। ताकि समय पर जल निकास किया जा सके और पानी भराव वाली स्थिति से होने वाली हानि से बचा जा सके।

## 9.10 रपतवार प्रबंधन

अनियंत्रित खरपतवार से मक्का की उपज एवं गुणवत्ता में होने वाली हानि से सभी परिचित हैं । वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली मक्का की फसल में खरपतवारों की बढ़वार एवं संख्या तथा खरपतवार प्रतिस्पधा से होने वाली हानि अन्य फसलों एवं ऋतुओं की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। वर्षा में खरपतवारों की सघनता और फसल के साथ प्रारंभिक अवस्था में उनकी लड़ाई से मक्का की उपज में 33 से 72 प्रतिशत की हानि पहुँच सकती है। एक शोध परिणाम के अनुसार मक्का के साथ उगे हुए खरपतवार भूमि से प्रति हैंक्टर 35-40 किग्रा. नत्रजन, 8-10 किग्रा. फॉस्फोरस, तथा 40-50 किग्रा. पोटाश का शोषण करते हैं तथा प्रचुर मात्रा में भू-जल का उपयोग कर फसल को भारी हानि पहुँचाते हैं । अतः प्रारंभिक 45-50 दिनों तक मक्का की फसल को पूर्णतया खरपतवार मुक्त रखना चाहिये। इसके लिए मक्का में बुवाई के 20 एवं 45 दिन पर अच्छी निराई-गुड़ाई करनी चाहिये। निराई - गुड़ाई कुदाली, बखर, कुल्पा या हल मक्का की कतारों के

बीच में चला कर कर सकते हैं। निराई-गुड़ाई करते समय कतारों में पौधों पर मिट्टी भी चढ़ा देनी चाहिये। इस तरह कतारों में डोलियाँ बनने से तीन लाभ हैं।

1. पौधों की सहारा जड़ों (adventitious roots) पर मिट्टी चढ़ जाती है।
2. पौधा तेज हवा चलने पर गिरता नहीं है।
3. डोलियाँ और नालियाँ बन जाने से अतिरिक्त पानी का जल निकास हो सकता है तथा नालियों में प्रवेशित जल बाद की अवस्था में सूखा पड़ने पर पौधों द्वारा उपयोग में आता है।

वर्षाकालीन मक्का में कई बार प्रारंभिक 40-45 दिनों तक रूक-रूक कर लगातार वर्षा होते रहने से खेत गीला बना रहता हैं और यंत्रों द्वारा निराई-गुड़ाई संभव नहीं हो पाती हैं और खेत में खरपतवार उगते रहते हैं। अतः बुवाई के समय निंदानाशी का प्रयोग किया जाए तो खरपतवार नियंत्रण में अच्छी मदद मिलती हैं। एट्राजीन निंदानाशी की 0.5 किग्रा. मात्रा 500 लीटर पानी में घोल कर मक्का बुवाई के तुरन्त बाद घोल काएक हैंक्टर क्षेत्र में समान रूप से छिड़काव करना चाहिये। एट्राजीन के छिड़काव  से सभी प्रकार के चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। छिड़काव के समय मृदा में नमी होना जरूरी हैं। इसके बाद बुवाई के 30-35 दिन पश्चात् केवल एक निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों पर पूर्ण नियंत्रण कर सकते हैं।

अगर मक्का में दलहनी या तिलहनी फसलों का अन्तरासस्य किया गया हो तो वहाँ खरपतवार नियंत्रण के लिये एट्राजीन की जगह मेटोलेक्लोर (ड्यूल) 1.0 किग्रा या पेण्डीमिथेलिन (स्टोम्प) 0.75 किग्रा. खरपतवारनाशी दवा का 500-600 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैंक्टर की दर से बुवाई के तुरन्त बाद छिड़काव करें अथवा दो बार हाथ द्वारा खरपतवार निकालें।

## 9.11 कीट प्रबंधन

मक्का की फसल में विभिन्न अवस्थाओं पर मुख्य रूप से तना छेदक (Stem borer), सैन्य कीट (army worm), टिड्डा (grass hopper) एवं मोयला (aphid) का प्रकोप होता हैं। इनकी रोकथाम के उपाय निम्न है।

**तना छेदक:** इस कीट का लारवा (larva) मुख्य रूप से हानि पहुँचाता है। लारवा 2.5 सेमी. तक लम्बा होता है। इसका रंग भूरा तथा पीठ पर पूरी लम्बाई में बेंगनी रंग की चार धारियां होती हैं। यह कीट पहले पत्तियों में छोटे-छोटे गोल छेद बना देता हैं फिर पर्ण चक्र (leaf whorl) के अन्दर से यह तने में प्रवेश करता हैं तथा सुरंग सी बना देता है। जिससे 'डेड हर्ट ' (dead heart) बन जाता हैं (तना अन्दर से सूख जाता हैं) और पौधे की बढ़वार पूर्णतया रूक जाती है। पौधे की नई पत्तियाँ भी सूखने लगती हैं । प्रकोप ज्यादा होने पर पौधे पर भुट्टा तथा दानों को भी खाने लगता है।

**रोकधाम:**

1. प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिये।
2. मक्का की बुवाई के 15-20 दिन में ' फारेट' जी अथवा कारबोफ्यूरान 3 जी 7.5 किग्रा. प्रति हैंक्टर की दर से पौधों के पोटों में डालना चाहिये अथवा फसल पर कार्बोरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 1.8 किग्रा. प्रति हैंक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव

करना चाहिये। कार्बोफ्युरान या फोरेट के कणों को सही ढ़ग व मात्रा में वितरण करने के लिये कण विसरित करने वाले उपकरणों का प्रयोग करें।

**टिड्डा एवं सैन्य कीटः** यह कीट दिन के समय मिट्टी में ढेलों या घास के मध्य छुपे रहते हैं और पौधे की पत्तियों को खाते रहते हैं। सैन्य कीट झूंड़ में आक्रमण करते हैं और कई बार पूरे खेत की पत्तियों को चट कर जाते हैं और पौधों पर पत्तियों की मध्य शिरायें ही पूरे खेत में नजर आती हैं।

**रोकथाम:**

1. टिड्डा एवं सैन्य कीट का प्रकोप दिखाई देने पर मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण 25 किग्रा. प्रति हैंक्टर की दर से डस्टर द्वारा सभी पौधों पर भुरकाव करें।
2. खेत के आस-पास घास एवं अन्य खरपतवारों को न उगने दें।

**मोयला या चैपा:** यह छोटे-छोटे हरे रंग के कीट होते हैं जो पत्तियों एवं मांजरे से चिपके रहते है और उनका रस चूसते रहते है। अगर मोयला काफी अधिक संख्या में हो तो इसकी रोकथाम के लिये मांजर निकलते समय जब इसका प्रकोप सर्वाधिक होता हैं एक लीटर मिथाईल डिमेटोन 25 ई. सी. या 250 मिली. फॉसफोमिडॉन 85 एस. एल. को 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

## 9.12 रोग प्रबंधन

मक्का की फसल पर लगभग 15-20 प्रकार के छोटे-मोटे रोगों का आक्रमण होता हैं, जिनसे 10-12 प्रतिशत तक फसल नष्ट हो जाती हैं। इन रोगों से बचने के लिये केवल उपचारित बीज का प्रयोग करना चाहिये। मक्का के प्रमुख रोग एवं उनके उपचार निम्न है:-

**बीज सड़न तथा पौध अंगमारी (Seed rot and seeding blight):** इस रोग से बीज फफूंद द्वारा प्रभावित होकर भूमि में सड़ जाते हैं तथा अंकुरण कम होता हैं । रोग प्रभावित पौधे छोटी अवस्था में ही मरने लगते हैं। इन बीमारियों से बचाव के लिये बीज की बुवाई से पहले थाइरम या केप्टान दवा से उपचारित करें। एक किलोग्राम बीज को उपचारित करने के लिये 3 ग्राम दवा की आवश्यकता होती हैं।

**पूर्ण अंगमारी या झुलसा (leaf blight):** इस रोग से ग्रसित पौधों पर अण्डाकार, भूरे रंग के धब्बे पत्तियों के निचले हिस्से पर ज्यादा दिखाई देने लगता हैं। ऐसे क्षेत्रों में जहाँ रोग सामान्य रूप से उग्रता ग्रहण करता हैं वहाँ रोग नियंत्रण हेतु मेन्कोजेब दवा के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव फसल जब 30 दिन की हो जाये तब करना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर पर प्रथम छिड़काव के 10-15 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें। समय पर बोई गई मक्का ,देरी से पकने वाली किस्मों (मालन को छोड़कर) एवं नत्रजन के उचित मात्रा में प्रयोग करने से इस रोग का आक्रमण बहुत कम होता हैं। रोगग्रस्त खेतों में बुवाई के लिए झुलसा रोग रोधी किस्में जैसे रंजीत, डककन आदि का प्रयोग करें।

**मृदुरोमिल आसिता (Dowry mildew):** इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों में पर्णहरित का ह्नास होने से पत्तियों पर पीली धारियाँ पड़ जाती हैं। प्रभावित हिस्सों में सफेद रूई जैसे रेशे

नजर आते हैं और पौधे की बढवार रूक जाती हैं। जिससें पौधा छोटा रह जाता हैं। इसकी रोकथाम के लिये निम्नलिखित उपाय काम में लेने चाहिए।

1. फसल की बुवाई मानसून की पहली वर्षा आते ही कर देनी चाहिये। सिंचाई की सुविधा होने पर बुवाई 15-20 जून तक अवश्य कर दें।
2. बुवाई के लिये बीज की मात्रा सामान्य से 10-15 प्रतिशत अधिक रखें ताकि बाद में रोगग्रसिल पौधों को उखाड़ कर नष्ट किया जा सके।
3. जहाँ इस रोग का भारी प्रकोप हो वहाँ रोग ग्राही किस्मों के स्थान पर रोग प्रतिरोधी किस्म जैसे गंगा-11 बोयें।
4. रोग के लक्षण दिखाई देते ही रोगग्रस्त पौधे उखाड़ दें।
5. रोडोमील एम.जेड़ या एप्रोन 35 एब्ल्यू. एस. का 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।

**तना गलन (Stalk rot):** पौधों के निचले पर्व इस रोग के प्रकोप से सड़ जाते है और सूख जाते हैं, जिससे बाद में पौधे सूखकर गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए निम्न उपाय काम में लेना चाहिए।

1. भू-जल निकास का समुचित प्रबंध रखें।
2. खाद एवं उर्वरको का संतुलित प्रयोग करें।
3. प्रतिरोधी किस्मों जैसे- गंगा-2, डक्कन, रणजीत आदि की बुवाई करें।
4. मंाजरे आने की अवस्था पर भूमि में पर्याप्त नमी बनाये रखें।

## 9.1 सारांश

जून के प्रथम पक्ष तथा पलेवा करके बुवाई करें। क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत उन्नतिशील प्रजाति / सकुल / सकर का शोधित बीज प्रयोग करें। विरलीकरण; थिनिंगद्ध द्वारा पौधों की निर्धारित दूरीध्संख्या सुनिश्चित कर लें।मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का संतुलित प्रयोग किया जायें।जिंक तत्व की कमी के क्षेत्रों में अन्तिम जुताई के समय २० किलोग्राम प्रति हे० की दर से जिंक सल्फेट भूमि में मिलाकर बोया जाता है। खरपतवारें को नष्ट करने के लिए सीमाजिन / एट्राजिन रसायनों का प्रयोग संस्तुत के आधार पर किया जाय। फसल में लगने वाले कीट / रोगो की सामयिक रोकथाम की जाय। मक्के की बालियों की पत्तियां पीला होने पर फसल की कटाई करें

## 9.14 बोध प्रश्न

प्र. 1 झुलसा रोग रोधी किस्म हैं।

(अ) गंगा - 2 (ब) माही कंचन

(स) डककन - 103 (द) मालन

प्र. 2 नत्रजन पोषक तत्व की कमी के मुख्य लक्षण हैं

(अ) पौधे की निचली पत्तियाँ सूखने लगती है

(ब) पत्तियों के ऊपरी सिरे से नीचे की और V के आकार का पीलापन बढ़ता रहता है

(स) नवनिर्मित पत्तियों के ऊपर से नीचे तक शिराओं के मध्य पीलापन आता है

(द) पत्तियाँ बैंगनी व भूरे रंग की हो जाती हैं

प्र. 3 मक्का की पानी के लिये क्रांतिक अवस्था हैं।

(अ) सहारा जड़े बनते समय

(ब) वृहद वृद्धि अवस्था पर

(स) नर मांजरे निकलते व दानों की दूधिया अवस्था पर

(द) दाना पकते समय

प्र. 4 मक्का कुल का पौधा है।

(अ) ग्रेमिनी (ब) लैग्यूमिनेसी

(स) क्रूसी फैरी (द) सोलेनेसी

प्र. 5 मक्का में चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारो के नियंत्रण के लिये उगने से पूर्व कौनसा नींदानाशी प्रयोग करते है।

(अ) 2, 4-डी (ब) आइसोप्रोट्यूरॉन

(स) एट्राजीन (द) पैराक्वेट

प्र. 6 मक्का की उचित बढ़वार के लिये औसतन तापमान होता है-

(अ) 12-15 से. ग्रे. (ब) 18-20 से. ग्रे

(स) 22-25 से. ग्रे (द) 30-35 से. ग्रे

प्र. 7 मीठी मक्का की किस्म है।

(अ) नवजोत (ब) माही कंचन

(स) माधुरी (द) जी. एम.-6

प्र. 8 शिशु मक्का के लिये बीजदर किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है

(अ) 8 - 10 (ब) 12 - 15

(स) 20 - 25 (द) 30 - 35

प्र. 9 सिंचित मक्का के लिये उर्वरको की अनुमोदित नत्रजन, फॉस्फोरस, व पोटाश की मात्रा होती है।

(अ) 120: 40: 40 किग्रा. / है. (ब) 60: 30: 50 किग्रा. / है.

(स) 100: 60: 40 किग्रा. / है. (द) 50: 50: 50 किग्रा. / है.

प्र. 10 मक्का की फसल में नत्रजन उर्वरक की पूरी मात्रा 2-3 बार में देते है क्योंकि-

(अ) नत्रजन का ह्नास भूमि में लीचिंग द्वारा अधिक होता है

(ब) यह वर्षा के पानी में घुल कर बह जाता है

(स) अधिक तापमान में वोलेटलाइजेशन क्रिया से वातावरण में मिल जाती है।

(द) उपरोक्त सभी

प्र. 11 मक्का की फसल में फॉस्फोरस पोषक तत्व की सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है

(अ) पौध अवस्था में (ब) वृहद वृद्धि अवस्था

(स) दाना बनने से पकने तक (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्र. 12 मक्का की खेती का मुख्य उद्देश्य है-

(अ) दाने के लिये (ब) चारे के लिये

(स) भुट्टे के लिये (द) उपरोक्त सभी

प्र. 13 मक्का की प्रोटीन में मुख्य अमीनो अम्ल है-

(अ) लाइसीन (ब) ट्रिप्टोफेन

(स) अ और ब दोनों (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्र. 14 मक्का के भ्रूण में तेल की मात्रा होती है।

(अ) 10 - 15 (ब) 20 - 25:

(स) 30 - 35 (द) 40: से अधिक

प्र .15 मक्का की कौनसी किस्म सफेद दाने की हैं।

(अ) के. एच.- 510 (ब) पी. ई. एच. एम. -1

(स) नवजोत (द) जी. एम. - 6

**उत्तर:**

| **प्रश्न** | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 | 15 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **उत्तर** | स | ब | स | अ | स | स | द | स | अ | द | स | द | स | स | द |

## 9.15 संदर्भ ग्रंथ:-


1. सिंह, शक्तावत मोहन एवं कुमार, व्यास अभय, 2000, वैज्ञानिक फसल प्रबंधन, यश पब्लिकेशन हाऊस, बीकानेर (राजस्थान).
2. प्रकाश, ओम., 1976, खरीफ की फसलें, रामा पब्लिशिंग हाऊस, बड़ौत (मेरठ).
3. Singh, S.S., 1993, Crop Management under Lirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.

# इकाई 10

# मूंगफली

**इकाई की रूपरेखा**


10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 मूंगफली में उत्तमता या गुण

10.3 उत्पत्ति स्थल

10.4 मंगफली का वर्गीकरण

10.5 उन्नत किस्में

10.6 खेत की तैयारी

10.7 भूमि का उपचार

10.8 बीज की मात्रा और बुआई

10.9 मूंगफली उत्पादन में हार्मोन्स का उपयोग

10.10 पोषण प्रबंध

10.11 सिंचाई

10.12 अंतराषस्य क्रियाएं और खरपतवार नियंत्रण

10.13 फसल संरक्षण

10.13.1 रोग नियंत्रण

10.13.2 कीट नियंत्रण

10.14 खुदाई और भंडारण

10.15 सारांश


## 10.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- मूंगफली उत्पादन की उन्नत तकनीकी ज्ञात कर पाऐंगे।
- मूंगफली की उन्नत किस्में
- मूंगफली
- मूंगफली की खेत की तैयारी
- मूंगफली का पोषण एवं प्रबंधन फसर संरक्षण आदि।

## 10.1 प्रस्तावना

मूंगफली दलहनी कुल की फसल है जो सभी प्रकार की दाल वाली फसलों में सर्वाधिक सूखा सहन करने वाली फसल है लेकिन इसको तिलहन समूह की फसनों का 'राजा' कहा जाता है। इसमें तेल की मात्रा (45-55 प्रतिशत) और प्रोटीन (28-30 प्रतिशत) की अधिकता के कारण अन्य फसलों

की अपेक्षा अधिक मात्रा में ऊर्जा प्रदान करती है। इसकी पाचनशीलता लगभग 86.08 प्रतिशत होती है। इसमें विटामिन्स और खनिज पदार्थ जैसे आवश्यक पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इसलिए जनमानस में इसको 'गरीबों के बादाम' की संज्ञा दी गई है। खरीफ मौसम की यह मुख्य तिलहनी फसल है, लेकिन अब इनकी खेती जायद मौसम में उन स्थानों पर की जाती है, जहां खरीफ मौसम में मूंगफली उगाई जाती हो तथा गर्मियों के लिए अच्छे सिंचाई के साधन उपलब्ध हो।

मूंगफली एक अच्छे फसल चक्र वाली और मूल्यवान फसल है। इसकी पैदावार मुख्यतः उष्णकटिबंधीय (अर्ध-शुष्क) क्षेत्रों में की जाती है, जहां पर अधिकतम वायु और कम जल से मृदा-क्षरण होती है। मूंगफली को फसल चक्र और मल्च फसल के रूप में उगाने से मृदा अपरदन को एक निश्चित सीमा तक रोका जा सकता है। जिससे इसकी फसल मृदा - संरक्षण और जल - संरक्षण को प्रोत्साहित करती है। इसकी जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु (राइजोबियम) भी पाये जाते हैं जो कि वायुमण्डल नाइट्रोजन को भूमि में लगभग 200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से स्थिर करती है जिससे नाइट्रोजन युक्त रासायनिक उर्वरकों की खपत घटती है।

## 10.2 मूंगफली में उत्तमता या गुण (Quality in Groundnut)

विभिन्न वर्ग की मूंगफली का वैज्ञानिकों ने उसकी उत्तमता का विवेचन विभिन्न आधर पर किया है। कृषक के लिए मूंगफली की वह जाति उत्तम है जो प्रति इकाई क्षेत्र अधिक उपज दें। व्यापारी के लिए मूंगफली की वह जाति उत्तम है, जिसमें उत्पादन मे दानों का प्रतिशत अनुपात अधिक हो और दाने में तेल की मात्रा अधिक प्रतिशत में हो। तेल के अन्दर स्वतंत्र वसा अम्लों की मात्रा अधिक होने पर तेल के गुण अच्छे माने जाते हैं। मूंगफली की उत्तमता का परीक्षण करते समय निम्नलिखित गुणों का ध्यान मे रखा जाता है -

1. दाने का प्रतिशत - मूंगफली की किसी जति का प्रति हेक्टर उत्पादन जितना अधिक महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण फलियों में दाने का प्रतिशत अनुपात। मूंगफली की जिस जाति मे दाने की मात्रा सबसे अधिक पाई जाती है वही जाति दूसरी जाति की तुलना में अच्छी मानी जाती है। मूंगफली में पाए जाने वाले दाने के प्रतिशत अनुपात पर विभिन्न कारकों का प्रभाव पड़ता है। साधारणतया सीधी बढ़ने वाली गुच्छेदार जातियों में दाने का प्रतिशत 75-80 प्रतिशत तक पाया जाता है तथा फैलकर वृद्धि करने वाली जातियों में दाने का प्रतिशत 65-70 प्रतिशत तक पाया जाता है।
2. परीक्षण भार - प्रति हजार दानों का भार परीक्षण भार कहलाता है। जिस जाति के 1000 दानों का भार अधिक होगा वह जाति अच्छी जाति सिद्ध होती है। साधारणतया छोटी फलियों वाली जातियों मे दाने सुडौल व अधिक भार वाले होते है।
3. दाने का आकार - व्यापारिक दृष्टिकोण से बड़े दाने वाली जातियां अच्छी समझी जाती है।

4. फलियों व दानों का रंग - जिस जाति की फलियां भुनकर खाई जाती है उनमें फलियों व दानों के रंग का विशेष महत्व है। फलियों का हल्का सुनहरा रंग और दाने का गुलाबी रंग अच्छा माना जाता है। मृदा की किस्म व जलवायु का फलियों दानों के रंग पर अधिक प्रभाव पड़ता है। हल्की भूमियों में उगाई गई फसल मे भारी भूमियों की अपेक्षा अधिक अच्छे रंग की फलियां व दाने उत्पन्न होते है।
5. तेल का प्रतिशत - दाने में तेल का प्रतिशत मूंगफली का एक महत्वपूर्ण गुण है। तेल की जितनी अधिक मात्रा दाने में होती है वह जाति उतनी ही अच्छी मानी जाती है। मूंगफली की परिपक्वता एवं वर्षा की अवस्था का तेल के प्रतिशत पर बहुत प्रभाव पड़ता है। केन्द्रीय तिलहन अनुसंधान केन्द्र, कोयम्बटूर पर किय गए प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि पूर्ण परिपक्व अवस्था से एक सप्ताह पूर्व फसल की कटाई करने पर भी दाने का प्रतिशत मात्रा कम हो जाती है। फसल की वृद्धि के समय यदि खेत में नमी की कमी रह जाए तो तेल प्रतिशत में वृद्धि होती है व खेत में नमी की मात्रा अधिक रहने से तेल की मात्रा कम रह जाती है। फैलने वाली जातियों में गुच्छेदार जातियों की अपेक्षा तेल की प्रतिशत मात्रा कुछ अधिक होती है।
6. तेल में स्वतंत्र वसा अम्लों की मात्रा - विशेष रूप से खाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले तेल तथा भण्डारण के दृष्टिकोण से तेल मे विभिनन अम्लों की मात्रा का महत्व है। इन अम्लों की अधिक मात्रा में उपस्थिति तेल के खाने के गुणों को खराब करती है। इन अम्लों की तेल 2-5 प्रतिशत उपस्थिति तक हानिकारक प्रभाव नहीं होता, परन्तु इससे अधिक मात्रा में अम्लों की उपस्थिति हानिकारक होता है।

   फसल के पकने के समय लगातार वर्षा होने और खुदाई के समय बादल छा जाने पर फलियां अच्छी प्रकार नहीं सूख पाती और तेल में स्वतंत्र अम्लों की मात्रा बढ़ जाती है।

## 10.3 उत्पत्ति स्थल

मूंगफली का उत्पति स्थल सामान्य रूप से दक्षिण अमेरिका के ब्राजील से माना जाता है। यहां पर इससे मिलते जुलते कई पौधें पाये जाते है। सर्वप्रथम पुर्तगालियों को मूंगफली की फसल अन्य देशों में फैलाने का श्रेय दिया जा सकता है। भारत में मूंगफली को जेसुफ फाटूर द्वारा 16 वीं शताब्दी में लाया गया था।

मूंगफली उत्पादन और क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में भारत प्रथम स्थान पर है। हमारे देश में इसके कुल उत्पादन का 81 प्रतिशत भाग तेल निकालने में, 12 प्रतिशत बीज के रूप में, 6 प्रतिशत खाद्य के रूप में और शेष एक प्रतिशत निर्यात के रूप में उपयोग की जा रहा है। निर्यात करने वाले देशों में भी भारत अग्रणी देश है। इसके कुल उत्पादन और क्षेत्रफल का लगभग 91 प्रतिशत भाग केवल गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और उड़ीसा राज्य है। शेष राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और पंजाब आदि राज्यों में बिखरा हुआ है। फसल के कुल क्षेत्रफल का लगभग 87.7 प्रतिशत भाग खरीफ मौसम में और शेष भाग जायद मौसम में पैदावार के लिए उगायी जाती है।

राजस्थान में इसकी खेती मुख्यतः खरीफ मौसम में की जाती है लेकिन दक्षिण राजस्थान में सिंचाई सुविधा होने के कारण जायद मौसम में भी उगाई जा रही है। इसकी खेती जयपुर, चित्तोडगढ़, बीकानेर, टोक, सवाई माधोपुर और भीलवाड़ा जिलों में की जा रही है। प्राकृतिक दृष्टि से किस्मों की प्रकृति तीन प्रकार की होती है झुमका, अर्द्ध-विस्तारी और विस्तारी (फैलने वाली) किस्में।

सामान्यतया झुमका किस्में शीघ्र पकने वाली होती है, लेकिन अपेक्षाकृत इनकी उपज, विस्तारी किस्मों से कम रहती है। इनके दाने गोल और आकार में छोटे होते है। इस तरह की किस्में अधिकतर भारी भूमि में ही उगायी जाती है, जबकि विस्तारी किस्में और अर्द्ध-विस्तारी किस्में रेतीली और हल्की टोमट मृदा के लिए उपयुक्त होती है। इसलिए भूमि के अनुसार प्रजातियों का चयन करना उचित माना गया।

## 10.4 मूंगफली का वर्गीकरण

मूंगफली का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर भिन्न भिन्न प्रकार से किया जाता है, परन्तु इसके प्रमुख दो वर्गीकरण निम्न प्रकार है -

**(अ) वृद्धि की प्रकृति के आधार पर**

पौधों की वृद्धि के आधार पर मूंगफली की जातियों को दो भागों में विभाजित किया गया है -

1. सीधे बढ़ने वाली (Erect types of Bunch type) - इस जाति के पौधे सीधे बढ़ते है। इस प्रकार की जातियां कम अवधि वाली, शीघ्र तैयार होने वाली तथा अधिक उपज देने वाली होती है। इस प्रकार की जातियों में साधारणतः सुषुप्तावस्था नहीं पायी जाती है।
2. फैलकर बढ़ने वाली (Spreadin types) - Arachis hypogaea procumbense इस वर्ग की जातिय भूमि में फैलकर चलती है। अधिकतर जातियों सुषुप्तावस्था का गुण होता है। फसल लम्बी अवधि वाली होती है जो देर से तैयार होती है।

**(ब) मूंगफली का वाणिज्यक वर्गीकरण**

1. कोरोमण्डल वर्ग (Coromandal group) - इस वर्ग की जातियों की फलियां छोटी होती है। छिलका पतला होता है। दाने छोटे होते हैं जो कि अण्डाकार होते है।
2. बोम्बे बोल्ड टाइप (Bombay Bold type) - इसे 'बिग जापान' भी कहते हैं। इस वर्ग की जातियों की फलियां तथा दाने कोरोमण्डल वर्ग की तुलना में बड़े होते है।
3. खानदेश स्पेनिश (Khandesh Spanish type) - कोरोमण्डल वर्ग की अपेक्षा फलियां छोटी होती है। दाना छोटा तथा गोल होता है। दाने में अन्य सभी वर्ग की जातियों की अपेक्षा सबसे अधिक मात्रा में तेल पाया जाता है।
4. लाल नैटाल (Red natal) - इस वर्ग का विकास छोटी जापानी जाति से हुआ है। खानदेश स्पेनिश की अपेक्षा इस वर्ग की जातियों में दाना बड़े आकार का पाया जाता है, परन्तु तेल का प्रतिशत कम पाया जाता है।

**5. तालिका - विभिन्न क्षेत्रों के लिए मूंगफली का उन्नत जातियां**

| प्रान्त | सीधी बढ़ने वाली (गुच्छेदार) (Bunch type) | फैलकर बढ़ने वाली (Spreading type) |
|---|---|---|
| 1 उत्तर प्रदेश. | टा. 32, टा। 64, चन्द्रा, कौशल, फैजपुर 1-5, ज्योति | टा. 25, 28 एम. 13, विक्रम चित्रा |
| 2 बिहार, झारखण्ड | कुबेर, अलींरनर, ए.के. 12-24, ज्योति BG1, BG2 | बिंग जापान, ए.के. 10 एम. 13 |
| 3 मध्य प्रदेश छतीसगढ़ | .के. 12-24, जवाहर 2, ज्योति गंगापूरी, टी.जी. 3 | वरजीनिया रनर, विक्रम |
| 4 राजस्थान | RBS 87, ज्योति,ए.के. - 12-24 PG 2 | पंजाब नं. 1, आर.एम. 1 (समराला 1), एम. 13 |
| 5 हरियाणा | हरियाणा नं. 1, न. 2 (MH 1 व 2), ज्योति, कादरी 3 | पंजाब नं 1, (PG 1) मूंगफली नं. 13 (M 13) विक्रम |
| 6 पंजाब | मूंगफली नं. 145 (M 145) समराल 1. सी. 401 : ज्योति, मूंगफली 37, कादरी 3 | पंजाब नं. 1, मूंगफली नं. 13, मू. 179,विक्रम |

## 10.5 उन्नत किस्में -

प्राचीन काल से ही उन्नत बीज को कृषि में महत्व दिया जा रहा है। उर्वरा भूमि के बाद कृषि के लिए उन्नत बीज को महत्व दिया गया है। उन्नत बीज केवल शुद्ध किस्मों से प्राप्त होता है और स्वस्थ बीज से ही उत्तम फसल मिल सकती है जो श्रेष्ठ उत्पादन दे सकती है।

आधुनिक युग (हरित क्रान्ति) में उन्नत किस्मों का ही श्रेय दिया गया है क्योंकि उन्नत किस्मों के बीज आधुनिक कृषि का प्रमुख आधार है। इन किस्मों के बीजों की प्रति हैक्टर पैदावार देशी किस्मों के बीजों से कई गुना अधिक है। विकसित किस्में अधिक उत्पादकता के साथ-साथ प्रतिकूल अवस्थाओं के प्रति अवधि सहनशील और प्रतिरोधी होती है।

संकर किस्मों (उन्नत किस्मों) का प्रयोग करते समय संतुलित उर्वरकों का उपयोग और उचित जल प्रबंध संसाधनों पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

**तालिका - मूंगफली की उन्नतशील जातियों की विशेषताएं**

| जातियाँ | फसल अवधि (दिनों में) | उपज (कु. / हे.) | दाने की मात्रा Shelling % | तेल % | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|---|
| टा. 25 | 135 | 12-15 | 75 | 52 | फैलने वाली |
| टा. 28 | 140 | 18-20 | 74 | 52 | फैलने वाली 3 दाने/फली |
| टा. 32 | 115 | 12-15 | | 48 | गुच्छेदार |
| टा. 64 | 130 | 15-18 | 72 | 49 | फैलने वाली, 2 दाने/फली, अर्द्ध |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | गुच्छेदार, दाने मोटे |
| ज्योति | 105-120 | 15-18 | 70 | 53.3 | गुच्छेदार, पूरे देश के लिए उपयुक्त जहां गुच्छेदार जातियां उगाते है। |
| चन्द्रा (ए. एच. 114) | 125-135 | 25-28 | 77.8 | 48 | अर्द्ध गुच्छेदार, चन्द्रशेखर कृषि वि.वि. कानपुर किसित फलियों में दाने का भराव अच्छा, टिक्का रोग कम लगता है। |
| ICGS76 | 120-135 | 12-18 | 70 | 45 | फैलने वाली |
| ICGS37 | 120-125 | 15-18 | 74 | 46 | अर्द्ध फैलने वाली |
| कौशल (G 201) | 110-120 | 12-15 | 72 | 48 | प्रति फली 2-3 दाने, मध्याकार गुच्छेदार गुलाबी रंग सम्पूर्ण शुष्क क्षेत्रों में उपयुक्त |
| चित्रा | 125-130 | 20-25 | 68 | 47 | मध्यम सुडौल फली |
| विक्रम | 120-124 | 20-25 | 68 | 46.5 | अर्द्ध फैलने वाली |
| फेजपुर 1-5 | 100-105 | 12-15 | 70 | 50 | अर्द्ध गुच्छेदार, पत्तियां चैड़ी, हल्के हरे रंग की, टिक्का रोग लगता है। |
| समराला 1 | 130-140 | 12-16 | 73 | 49 | गुच्छेदार |
| ए.के. 12-24 | 100-150 | 10-15 | 75 | 49 | सीधी बढ़ने वाली,मध्यम भारी भूमियों के उपयुक्त |
| ए.के. 10 | | 10-15 | 70 | 50 | - |
| पंजाब नं. 1 | 115-125 | 8-12 | 75 | 49 | फैलने वाली |
| मूँगफली 13 | 120-130 | 20-22 | 70 | 50 | फैलने वाली,दाने बड़े |
| मूंगफली 45 | 120-130 | 20-22 | 76 | 50 | अर्द्ध फैलने वाली |
| कादरी 3 | 120-130 | 17-18 | 70 | 49 | फलियां गुच्छों के रूप में, जड़ क्षेत्रों के निकट,2 बीज/फली, |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | मूंगफली - गेहूं के सफल चक्र में। |

**मूंगफली की प्रमुख उन्नत किस्में -**

1. एस.बी.एक्स. - खरीफ मौसम की किस्म होने के साथ-साथ इसे बुलई दोमट मृदा में सफलता से उगाया जा सकता है। इसकी फसल 90 से 100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार 2000 किलोग्राम प्रति हैक्टर एवं यह किस्म शीर्ष गलन रोग में प्रतिरोधी है।
2. जे.एल. 24 - खरीफ में उगाई जाने वाले झुमका किस्म पौधा, जिसका टेस्ट भार (1000 दानों) 450 ग्राम के लगभग है। इससे तेल 46-48 प्रतिशत एवं उपज 18 से 20 क्विंअल प्रति हैक्टर होती है।
3. अी.ए.जी. 24 - इस किस्म को जायद तथा खरीफमें बोया जा सकता है। इसे बलुई दोमट मृदा से दोमट मृदाओं में सफलता से उगाया जा सकता है। इसके पौधे झूमका आकार के होते है। इसकी पैदावार 22 से 24 क्विंटल प्रति हैक्टर के लगभग रहती है इसमें तेल की मात्रा 50 प्रतिशत तक पायी जाती है।
4. जी.जी. 2 - इसे बलुई मृदा में सफलता से उत्पन्न किया जा सकता है। इसे जायद में बोया जाता है। यह किस्म टीका रोग प्रतिरोधी है एवं इसमें तेल 48 प्रतिशत पाया जाता है।
5. आर.एस. 138 - यह दोमट मृदा में बोई जाने वाली उन्नत किस्म है इसकी पैदावार 21 क्विटंल प्रति हैक्टर रहती है एवं इसके पोधे झूमका आकार के होते है।
6. आर.जी. 141 - यह किस्म काली, दोमट मृदा में बोई जने वाली, झूमका आकार की खरीफ में बोई जाती है। इसकी उपज 15 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं तेल 50 प्रतिशत के लगभग पायाजाता है।
7. जी.जी. 7 अथवा जे. 38 - खरीफ में दोमअ बोई जाने वाली झूमका आकार की किस्म है।
8. कादरी 3 - किस्म को जायद एवं खरीफ दोनों ऋतुओं में बोया जा सकता है, इसकी उपज 25 क्विंटल प्रति हैक्टर के आस-पास आती है। इसको भारी काली मृदा में बोया जा सकता है। यह अर्द्ध विस्तारी आकार की किस्म जो 110-115 दिनों में तैयार होती है।
9. एच.एन.जी. 10 - दोमट तथा रेतीली मृदाओं के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसे खरीफ में बोया जाता है तथा यह 100 से 120 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। अर्द्धविस्तारी प्रकृति एवं 20 से 22 क्विंटल प्रति हैक्टर की पैदावार देने वाली किस्म है।
10. आर.एस.बी. 87 - यह किस्म भी रेतीली मृदाओं में आसानी से उगाई जासकती है। इसकी पैदावार 2500 किलोग्राम प्रति हैक्टर एवं अर्द्धविस्तारी प्रकृति किस्म है।
11. एम. 13 - खरीफ में बोई जाने वाली विस्तारी प्रकृति की किस्म है। इसकी उपज रेतीली मृदाओं में 20 क्विंटल प्रति हैक्टर एवं इसमें तेल की मात्रा 48 प्रतिशत के लगभग पायी जाती है। यह किस्म टीका रोग से प्रतिरेाधी है।

12. एम 335 - खरीफ में बोई जाने वाली विस्तारी प्रकृति की किस्म है। इसकी उपज रेतीली मृदाओं में 20 क्विंअल के लगभग होती है। उसकी उपज सिंचित क्षेत्रों में 25 क्विंटल प्रति हैक्टर से अधिक हो जाती है। इसमें तेल की मात्रा 48 प्रतिशत के लगभग होती है।
13. एम.ए. 10 - यह किस्म रेतीली तथा रेतीली दोमट मृदाओं में उगाई जाने वाली, विस्तारी प्रवृति की किस्म है। इसकी उपज 2500 किलोग्राम प्रति हैक्टर के लगभग रहती है।
14. चन्द्रा - इस किस्म को दोमट मृदाओं में सिंचाई वाले क्षेत्रों में बोई जाती है। इसकी प्रवृति विस्तारी एवं अर्द्धविस्तारी हो सकती है।
15. सी.एस.एम.जी. 84 (कौशल) - रेतीली मृदाओं को सफलतापूर्वक खेती करने योग्य किस्म, विस्तारी प्रकृति एवं सिंचित क्षेत्रों में इसकी उपज 2800 किलोग्राम प्रति हैक्टर होती है। यह किस्म थ्रिप्स, दीमक तथा रस्ट प्रतिरोधी किस्म है।

## 10.6 खेत की तैयारी -

मूंगफली की खेती के लिए लगभग 20-30 डिग्री से, तापमान और ठंडी रातें फसल परिपक्वता के समय तथा वार्षिक वर्षा 50-125 सेमी होनी चाहिए। मूंगफली का निर्माण भूमि में होता है अतः इसकी फसल के लिए अच्छी जल-निकास वाली, भुरभूरी दोमट और रेतीली दोमट, कैल्शियम और मध्यम जैव पदार्थों युक्त मृदा उत्तम रहती है।इसकी फसल के लिए मृदा उत्त्म वही मानी गयी है, जिसका पी.ए. मान 5-8.5 उपयुक्त माना जाता है। सामान्यतया 12 से 15 सेमी गहरी जुताई उपयुक्त रहती है। गहरी जुताई करने से इनके नट जमीन में काफी गहरे चले जाते है। जिससे खुदाई मेंकाफी परेशानी आती है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से एवं फिर देशी हल या हैरो से 2-3 जुताई करके खेत को बुआई के लिए समतल कर लेना चाहिए।

## 10.7 भूमि का उपचार -

मूंगफली में मुख्यतः सफेद लट, दीमक, शीर्षगलन रोग और पत्ती धब्बा रोग इत्यादि का प्रकोप अधिक होता है इसलिए भूमि में अंतिम जुताई केसमय फोरेट - 10 जी कार्बोफ्यूरान या हेप्टाक्लोर आदि को 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से मृदा में मिलाकर करते है। दीमक का प्रयोग कम करने के लिए खेत की पूरी सफाई जैसे सूखे डंठल और कच्ची खाद आदि को खेत से हटाना चाहिए।

## 10.8 बीज की मात्रा और बुआई

मूंगफली की बुआई का उपयुक्त समय सिंचित क्षेत्रों में जून प्रथम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह और फरवरी के दूसरे सप्ताह से मार्च के दूसरे सप्ताह तक तथा असिंचित क्षेत्र में मानसून आगमन पर जुलाइ के तृतीय सप्ताह तक रहता है।

झुमका किस्म में 100 कि.ग्रा0 बीज (गुली) विस्तारी किस्म और अर्द्ध-विस्तारी किस्म में 60-80 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से बुआई के काम लिया जाना चाहिए। झुमका किस्म में कतार से कतार की दूरी 30 सेमी रखी जाती है। विस्तारी किस्मों व अर्द्ध-विस्तारी किस्मों के लिए कतार से कतार की दूरी 45 सेमी और पौधों की दूरी 15 सेमी उपयुक्त होती है।

**बीजोपचार -**

बीज कृषि का मुख्य आधार होता है जिसका उत्पादन और उत्पादकता दोनों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः हमेशा प्रमाणित बीज की खरीदकर बोना चाहिए। बीज को कवक और जीवाणु इत्यादि के प्रभाव से बचाने के लिए क्रमशः कवकनाशी (3 ग्राम थाइरस या बाविस्टिन या 2 ग्राम डाइथेन एम-45 से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर) से तथा राइजोबियम कल्चर और फास्फेट विलेयक जीवाणु खाद से उपचारित करना चाहिए। बीजों को विभिन्न प्रकार के फफूंद जनित रोगों से बचाने के लिए उपचारित किया जाना आवश्यक है।

राइजोबियम कल्चर से बीजों को उपचारित करने के लिए 2-5 लीटर पानी में 300 ग्राम गुड़ डालकर गर्म करके घोल बनाएं। घोल को ठंडा करके उसमें 600 ग्राम राइजोबियम जीवाणु कल्चर मिलायें। यह घोल एक हैक्टर में बुआई करने वाले बीज के लिए काफी होता है। इसकी बीजों पर समान परत चढ़ानी चाहिए। इसके आद फास्फेट विलेयक जीवाणु खाद से बीजों को उपचारित करते है। उपचारित बीजों को छाया में सुखाकर शीघ्र बुआई करनी चाहिए। इसमें 2-15 प्रतिशत तक उपज बढ़ जाती है। फास्फेट विलेयक जीवाणु से मृदा में उपस्थित अघुलशील फास्फोरस घुलनशील फास्फोरस के रूप में बदलकर उपस्थित होती है। जो पौधों द्वारा आसानी से ग्रहण की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में बढ़त और दोनों में चमक तथा सुडौलता भी बढ़ती है।

## 10.9 मूंगफली उत्पादन में हार्मोन्स का उपयोग

मूंगफली में हार्सोन्स का उपयोग बहुत कम होता है लेकिन कुछ समस्याओं के कारण हार्मोन्स का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। इनमें मुख्य कारण -

1 सम्पूर्ण फसल काल में फूल निकलते रहना।

2 मूंगफली में सुइयों का परिपक्वता अवस्था तक निर्माण होना।

3 परिपक्व अवस्था में नमी मिलने पर परिपक्व फलियों का अंकुरित होना।

पौधों की 50 प्रतिशत शक्ति अर्द्ध-परिपक्व फलियों के उत्पादन फलियों के अंकुरण में नष्ट हो जाती है। इन दोनों अवस्थाओं के कारण मूंगफली की प्रति हैक्टर उत्पादन और गुणवक्ता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए प्रभावित फलियों की संख्या प्रति इकाई उत्पादन, वनज इत्यादि को बढ़ाने तथा समकालिक पुष्पन के लिए एल.एन.ए.ए. (प्लानोफिक्स) या वर्धक नामक हार्मोन्स का उपयोग किया जा सकता है। मूंगफली में हार्मोन्स उपयोग के लिए उपयुक्त समय बुआाई के लगभग 40 वें और 80 वें दिन पर आदर्श (20 पी.पी.एम.) सांद्रता वाला घोल अधिक प्रभावशाली रहता है।

## 10.10 पोषण प्रबंध

मूंगफली के लिए 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन 50-60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 30-40 कि.ग्रा. पोटाश की मात्रा प्रति हैक्टर की दर से उपयोग करना चाहिए। फास्फोरस पोटाश और आधी मात्रा नाइट्रोजन की भूमि में अंतिम जुताई के साथ लाइनों में देनी चाहिए।

**नाइट्रोजन -**

इससे पौधों की वनस्पति वृद्धि तेजी से होती है और पर्णहरित (क्लोरोफिल) व प्रोटीन निर्माण में मुख्य योगदान करता है। मूंगफली की खेती के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर देते है। नाइट्रोजन के मुख्य स्रोत किसान खाद, अमोनिया सल्फेट, यूरिया इत्यादि है। नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए अमोनियम सल्फेट अधिक उपयुक्त रहता है।

**फास्फोरस**

दलहनी कुल की फसलों के लिए फास्फोरस एक आवश्यक तत्व है। इससे जड़ों में पायी जाने वाली ग्रंथियों का विकास होता है। यह फल और बीज का निर्माण में भी सहायक होता है। सिंगल सुपर फास्फेट मूंगफली की फसल के लिए अच्छा स्रोत है। मूंगफली की खेती के लिए 60 कि.ग्रा. फास्फोरस पेंटा ऑक्साइड प्रति हैक्टर देते है।

**पोटेशियम -**

राइजोबियम जीवाणु को यह भोजन सप्लाई करता है। नाइट्रोजन की अधिकता के प्रतिकूल प्रभाव को रोकता है। इससे बीजों का वजन बढ़ता है तथा चमकीले ओर सुडौल बनते है। सल्फेट ऑफ पोटाश बहुत अच्छा स्रोत माना जाता है।

**कैल्शियम और सल्फर -**

मूंगफली की फसल में कैल्शियम की उपलब्धता पर काफी प्रभाव पड़ता है। कैल्शियम से फली में दानों का पूर्ण विकास होता है। जिप्सम (कृषि श्रेणी) इसका बहुत अच्छा स्रोत , इससे मृदा पी-एच मान भी नियंत्रित होता है।

सल्फर तिलहनी फसलों के लिए प्रमुख तत्व है जिसका सीधा प्रभाव तेल की मात्रा पर पड़ता है। यह मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ाता है। यह कवकनाशी के रूप में भी कार्य करता है। जिससे फफूंदी से संबंधित बीमारियों का नियंत्रण होता है। इनकी पूर्ति के लिए जिप्सम (कृषि श्रेणी), सिंगल सुपर फास्फेट ओर अमोनिया सल्फेट इत्यादि का प्रयोग कर सकते है। इसकी पूर्ति के लिए शुद्ध सल्फर का दो प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव कर सकते है।

कैल्शियम और सल्फर को भूमि में 5 सेमी गहराई तक मिलाते है जिससे विकसित हो रही कलियों और सुइयों द्वारा इसको ग्रहण कर लिया जाता है। जिप्सम का प्रयोग 500 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 45-60 दिन के बीच मृदा की सतह में इस प्रकार देना चाहिए कि सभी पोधे इसे आसानी से ग्रहण कर सकें।

## 10.11 सिंचाई

खरीफ की फसल पूर्णतया मानसून पर ही आधारित है, लेकिन यदि मूंगफली की विशिष्ट अवस्थाओं में सिंचाई कर दी जाये तो प्रति हैक्टर उपज में बढ़ोतरी होती है। सामान्यतः जायद में बोयी जाने वाली फसल के फ्लेवा के अतिरिक्त 8 सिंचाइयों की विभिन्न अवस्थाओं में आवश्यकता होती है। परिस्थितियों और भूमि के अनुसार सिंचाइयों की संख्या में वृद्धि संभव है। इस फसल में शाखा बनते, फूल निकलते और फली का विकास होते समय सिंचाइ देना नितांत आवश्यक है क्योंकि ये अवस्थायें अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इन अवस्थाओं पर नमी की कमी पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। फव्वारा सिंचाई पद्धति जायद मूंगफली के लिए अधिक

उपयोगी सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें पानी की बचत के साथ ही उत्पादन भी अधिक प्राप्त होता है। हल्की बलुई दोमट भूमि में 9-10 सिंचाई देना लाभदायक रहता है।

**मूंगफली की सिंचाई अवस्थाएं**

| सिंचाई की संख्या | अवधि | अवस्थाएं |
|---|---|---|
| प्रथम सिंचाई | बुआई के 20-25 दिन बाद | बढ़वार अवस्था पर |
| द्वितीय सिंचाई | बुआई के 35-40 दिनों बाद | फूल निकलते समय (विशिष्ट अवस्था) |
| तृतीय सिंचाई | बुआई के 45-55 दिनों बाद | सुइयां बनते समय (विशिष्ट अवस्था) |
| चैथी सिंचाई | बुआई के 55-60 दिनों बाद | फलिया बनते समय (विशिष्ट अवस्था) |
| पांचवी सिंचाई | बुआई के 65-70 दिनों बाद | फलियों का विकास होते समय |
| छठी सिंचाई | बुआई के 80-85 दिनों बाद | दाना पकते समय |

## 10.12 अंतराषस्य क्रियाएं और खरपतवार नियंत्रण

जायद की अपेक्षा खरीफ में खरपतवार फसल को अधिक नुकसान पहुंचाते है। इसलिए इसमें निराई-गुड़ाई जल्दी कर देनी चाहिए। बुआई के 30-35 दिनों के समय पर ही फसल को खरपतवार रहित कर देना चाहिए। इस समय खरपतावर से 80 प्रतिशत तक फसल को नुकसान होता है। साथ ही समय पर इसमें मिट्टी चढ़ाने का काम भी कर लेना चाहिए। इससे सभी सुईयां क्रियाशील रहती है। फसल में सुईयां बनना प्रारम्भ होने तक निराई - गुड़ाई इत्यादि सभी कार्य पूर्ण कर लेना चाहिए। बाद में सुईयां खराब होने का खतरा रहता है। बाद में समय-समय पर सिंचाई और पौध संरक्षण कार्य करते रहना चाहिए।

मूंगफली मुख्यतः खरीफ की फसल है। इसलिए इसमें खरपतवार की समस्या, जायद की अपेक्षा अधिक रहती है। अतः जहां खरपतवार अधिक होते है। वहां उनके नियंत्रण के लिये निम्नलिखित खरपतवारनाशी (शाकनाशी) का छिड़काव करना चाहिए।

1 बुआई के पहले फलुक्लोरालिन 45 प्रतिशत ई.सी. का 0.5 - 1.00 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव कर तुरन्त भूमि में मिला देना चाहिए। इसके अलावा ट्राईफ्लोरालिन 48 प्रतिशत ई.सी. का 0.25 - 0.75 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेर की दर से भूमि को उपचारित करें।

2 अंकुरण से पहले एलाक्लोर (लासों) 50 ई.सी. या 10 प्रतिशत जी (दानेदार) का 1.00 - 1.5 कि.ग्रा. नाइट्रोफोन (टोक - ई-25) का 0.25-0.75 कि.ग्रा. पैडिमेथालिन (स्टाम्प)30 प्रतिशत ई.सी या 5 प्रतिशत जी (दानेदार) का 1-1.25 कि ग्राम प्रति हेक्टर की दर से भूमि को उपचारित करें।

3 अंकुरण के बाद इमेजेथापिर (परस्युट) 10 प्रतिशत एस.एल. व 0.1-0.2 कि. ग्रा. या फ्लोजीकोप -पी-0.25 -0.375 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से लगभग 5-25 दिन तक छिड़काव कर भूमि उपचारित करनी चाहिए।

## 10.13 फसल संरक्षण

मूंगफली के फसल पर कुछ किटों और बिमारियों का प्रकोप होता है। लेकिन जायद मूंगफली की अपेक्षा खरीफ मूंगफली में अधिक देखा गया है क्योंकि इस समय मौसम अधिक आर्द्रता ग्रहण किये रखता है। उपरोक्त समस्याओं को निम्नलिखित उपायों से नियंत्रित किया जा सकता है।

### 10.13.1 रोग नियंत्रण

मूंगफली में फफूंदों द्वारा अनेक तरह के रोग उत्पन्न होते है। ये रोग जलवायु एवं फसल की किस्म से भी प्रवाहित होते है।

1 कालर रोग - इस रोग के लक्षण मृदा को स्पर्श करने वाले भाग पर आसानी से देख सकते है यह रोग एस्परजिलस नामक कवक की कई जातियों द्वारा फैलता है। इसकी रोकथाम के लिए थाइरम या एग्रोसन जी.न. यह वाविस्टिन की 0.2 प्रतिशत मात्रा से बीजोपचार करना उचित रहता है। खड़ी फसल में रोग का प्रभाव होने पर 0.1 प्रतिशत वाविस्टिन या डाईथेन एक 45 का 0.2 प्रतिशत का उपयोग लाभप्रद रहता है।

2 टिक्का रोग - इस रोग के लक्षण पत्तों से फैलना चालु होते है जो कभी कभी सम्पूर्ण पौधों को घेर लिया जाता है। इस रोग से पत्तों पर हल्के भूरे से गहरे गोलाकार धब्बे से उभरते है इस रोग से फसल का बचाव करने के लिए 0.2 प्रतिशत वाविस्टिन या बेनलेट या बेलेटान का 15 दिनों के अन्तराल से 2 से 3 छिड़काव किया जाना लाभदायक पाया गया है। यह रोग सरकोस्पोरा नामक कवक की दो जातियों से फैलता है।

   (i) Cercospora personata

   (ii) Cercospora arachidicola

3 मुरझान रोग - यह रोग फ्यूज़ेरियम ऑक्सीस्पोरम नामक कवक के द्वारा फैलता है। इस रोग से फसल के बचाव के लिये बीजोपचार करना तथा फसल चक्र अपनाया जाना अच्छा रहता है। रोग के प्रति सहनशील किस्मों का बोया जाना भी लाभदायक रहता है।

4 रस्ट रोग मूंगफली में रस्ट रोग का प्रभाव ठंड़े वातावरण से अधिक रहता है। इस रोग का प्रकोप खरीफ की फसलों में जायद की अपेक्षा अधिक होती है। यह रोग पक्सिनीया नामक कवक से फैलता है इसकी रोगथाम के लिये वाइटा वैक्स को 0.01 प्रतिशत घोल उपयोग कर सकते है।

### 10.13.2 कीट नियंत्रण

1 लीफ माइनर - इस कीट के बचाव के लिये डाइक्लोटाफोस या फोलिट्रेर्थऑन 0.05 प्रतिशत का उपयोग किया जाता है।

2 सफेद लट - सफेद लट के लिए फसल की बुआई से पूर्व मृदा को फोरेअ अथवा मेलाथियान का 1.5 किलोग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टयर से उपचारित करने से दीमक एवं सफेद लट दोनों का नियंत्रण कर सकते है।

## 10.14 खुदाई और भंडारण -

जब पौधों की पत्तियों का रंग पीला पड़ने लगे और फलियों के अन्दर का टेनिन का रंग उड़ जाए तथा बीज खोल रंगीन हो जाए तो खेत में हल्की सिंचाई कर खुदाई कर लें और पौधों से फलियों को अलग कर लें। मूंगफली के उचित भंडारण और अंकुरण क्षमता बनाये रखने हेतु कटाई के पश्चात सावधानीपूर्वक सूखाना चाहिए। भंडारण पूर्व पके हुए दानों में नमी की मात्रा 8-10 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। अन्यथा अधिक नमी होने पर मूंगफली में पीली फफूंद (एस्पजीलस प्लेक्स) द्वारा एफ्लाटाक्सिन नामक विषेला तत्व पैदा हो जाता है। जो मानव और पशु आदि के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। यदि मूंगफली को तेज धूप में सूखाया जाये तो अंकुरण क्षमता का ह्रास होता है। इसलिए अंकुरण क्षमता को बनाये रखने के लिए निम्न बातों को ध्यान रखना चाहिए ।

1 उपयुक्त नमी होने पर भी मूंगफली को जमीन से निकाले ताकि मूंगफली भूमि में ना रहें।
2 मूंगफली को भूमि से उखाड़ने के बाद इसके पौधों को उल्टा करके छोटे -छोटे गटठर बनाकर छाया वाले क्षेत्र में सुखाना चाहिए अर्थात् मूंगफली की फलियां हमेशा धूप की तरफ होनी चाहिए।
3 जब मूंगफली सूख जाएं तो उसको पौधों से अलग कर उनकी नमी 8-10 प्रतिशत आने तक सूखाना चाहिए।
4 पूर्णतय: सूखी फलियों को हवादार क्षेत्र में भंडारित करना चाहिए जहां पर नमी ग्रहण नहीं कर सकें या फिर प्रत्येक बोरे में केल्शियम, क्लोराइट 300 ग्राम प्रति 40 किलोग्राम बीज की दर से भंडारण करें।
5 भंडारण के समय हानि पहुंचाने वाले कीट पंतगों से सुरक्षा रखें जिससे भंडारण के समय फलियां खराब नहीं हो।

## 10.15 सारांश

मूंगफली की फसल की उत्पत्ति स्थल ब्राजील को माना जाता है जहां पर इसकी कई किस्मों का पाया जाना इसकी उत्पत्ति को दर्शाता है। भारत मूंगफली उत्पादक में सबसे ऊपर आता है। इसकी उत्पादन क्षमता 15 क्विंटल से 30 क्विंटल प्रति हैक्टयर तक जलवायु एवं मृदा स्थितियों के साथ-साथ उन्नत किस्म के उपयोग पर भी निर्भर करती है। यह एक दलहनी फसल होने के साथ-साथ तेल उत्पादन करने वाली फसल भी है। अतः इसके उत्पादन का महत्व इस कारण ओर बढ़ जाता है।

## 10.16 बोध प्रश्न

1 मूंगफली का वर्गीकरण किस प्रकार से कियो जाता है।
2 मूंगफली की सिंचाई अवस्थाएं समझाइये।
3 मूंगफली का उत्पत्ति स्थल कौनसा हैं?

| | | | |
|---|---|---|---|
| अ | चाइना | ब | ब्राजील |
| स | भार | द | अमेरिका |

4 विस्तारी किस्म और अर्द्ध विस्तारी किस्म में किस बीज दर से बुआई की जाती है?

अ 100-120 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर ब 25-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर

स 60-80 द 40-50

5 टिक्का रोग निम्नलिखित में से किसके द्वारा फैलता हैं?

अ सरकोसपोरा पसरोनाटा स दोनों

ब सरकोसपोरा अराकिडिकोला द इनमें से कोई नहीं।

## 10.17 संदर्भ सामग्री


5 अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलें, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

6 सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा XI, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर: पेज 82-135.

7 Reddy, T.Y. and Reddi. G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi. P. 110-154.

8 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 11

# गेहूँ

**इकाई की रूपरेखा**


11.0 उद्देष्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 भारत में गेहूँ उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र
11.3 खेत की तैयारी
11.4 बुवाई
11.5 बीज की दर
11.6 खाद एवम् उर्वरकों का प्रयोग
11.7 सूक्ष्म तत्वों की कमी, लक्षण, पहचान एवम् निदान
11.8 संचाई
11.9 खरपतवार नियंत्रण
11.10 खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ
11.11 रोग नियंत्रण
11.12 कीट पतंगों पर नियंत्रण
11.13 समस्याग्रस्त भूमि में गेहूँ उत्पादन
11.14 कटाई उपरांत ध्यान देने योग्य बातें
11.15 भंडारण
11.16 फार्म यंत्रों व मशीनों का समुचित उपयोग, रखरखाव एवम् सावधानियाँ
11.17 गेहूँ के अधिक उत्पादन के लिए कुछ महत्वपूर्ण तथ्य
11.18 गेहूँ उत्पादन तकनीक एक नजर में
11.19 सारांश
11.20 अभ्यास प्रश्न
11.21 संदर्भ ग्रन्थ


## 11.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- गेहूँ उत्पादन की उन्नत तकनिकी ज्ञात कर पाऐंगें।
- गेहूँ की जलवायु भूमि, बुआई, तकनीकी आदि।
- गेहूँ में खाद की मात्रा, सिचाई आदि।
- गेहूँ के कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

## 11.1 प्रस्तावना

संसार के अन्य देशों की तरह भारत में भी गेहूँ कि खेती प्राचीनकाल से की जा रही है। गेहूँ के जन्म स्थल के बारे में अनिश्चितता बनी हुई होने के कारण यह कहना कठिन होगा कि कौनसा देश गेहूँ की उत्पत्ति का स्थान माना जाये।

गेहूँ भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है। यह देश के उत्तरी ओर मध्य भाग के निवासियों का मुख्य आहार है। भारत में धान के बाद गेहूँ का दूसरा स्थान खाने वाले अनाजों में आता है। गेहूँ में प्रोटीन मात्रा 10-15 प्रतिशत पायी जाती है। इसमें नाइसिन तथा थायमिन नामक अमीनों अम्लों की मात्राऐं भी अधिक पायी जाती है। इसकी प्रोटीन में ग्लूटीन नामक अमीनों अम्ल अधिक पाया जाता है। जिसके कारण गेहूँ का उपयोग डबल रोटी, मैदा, सूजी आदि उत्पादन बनाने में लिया जाता है। गेहूँ का चैकर, दलिया तथा इनका भूसा जानवरों को खिलाने के लिए उत्तम समझा गया है। गेहूँ के दलिए में अत्यधिक कार्बोहाइड्रेटस होते है इसको पशुओं का अच्छा राशन अवयव समझा गया है।

भारत में गेहूँ की खेती करीब 27 मिलयिन हैक्टेयर में होती है, और इस बात पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है कि पानी की उपलब्धता कितनी है। पिछले दशक में करीब 1.5-2.0 मि.है. अतिरिक्त क्षेत्र गेहूँ उत्पादन के लिए जुड़ा है जिसमें ज्यादातर क्षेत्र मध्य एवम् पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में है। विगत 40 वर्षो में देश ने गेहूँ उत्पादन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है और भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश बन गया है।

1965 तक गेहूँ उत्पादन में बहुत धीमी प्रगति हुई। जिसके कारण देश को अपनी जरूरत को पूरा करने के लिए काफी मात्रा में गेहूँ का आयात करना पड़ा। हरित क्रांति, जिसे गेहूँ क्रांति भी कहा जा सकता है, की सफलता बौनी प्रजातियों के आयात एवम् तदन्तर सुधार कार्यक्रमों के कारण हुई। 1970 के दशक के शुरूआत तक हरित क्रांति का असर गेहूँ उत्पादन पर दिखई पड़ने लगा था एवम् यह संभावना बढ़ने लगी थी कि देश गेहूँ उत्पादन में स्वावलंबी बन सकेगा। 1980 के दशक के आरंभ तक यह बात निश्चित हो चुकी थी कि देश में अन्न की कोई कमी नहीं थी और भंडार इतना हो चुका था कि किसी भी विभिषिका से निबटने के लिए अन्न का पर्याप्त भंडार उपलब्ध था। आज भारत में गेहूँ का भंडार लगभग 28 मिलियन टन है और उत्पादन 94 मि.टन है। इस महत्वपूर्ण उपलब्धि का श्रेय किसानों के अथक परिश्रम, उचित तकनीक, कारगर कृषि नीति एवम् उसकी अनुपालना, खाद एवम् बीज की आपूर्ति, एवम् कृषि वैज्ञानिकों के अथक प्रयास को दिया जा सकता है।

## 11.2 भारत में गेहूँ उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

**क. उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र**

भारत के कुल गेहूँ उत्पादक क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत (10 मि.है.) उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में आता है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड एवम् जम्मू कश्मीर के मैदानी क्षेत्र इसके प्रमुख उत्पादक प्रदेश है। सतलुज-गंगा के मैदानी क्षेत्रों से गेहूँ के कुल उत्पादन का लगभग 40-45 प्रतिशत हिस्सा आता है। जल संसाधन की दृष्टि से यह क्षेत्र

काफी धनी है। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रति हैक्टेयर औसत उपज 4.5 टन है।

**ख. उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र**

भारत में गेहूँ के कुल क्षेत्रफल का 30 प्रतिशत हिस्सा (9.5 मि.है.) पूर्वी मैदानी क्षेत्रों (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल व असम) में आता है। यह क्षेत्र 30 प्रतिशत गेहूँ का उत्पादन करता है। जलसंसाधन की दृष्टि से यह क्षेत्र भी काफी धनी है और गंगा एवम् उसकी अन्य सहायक नदियाँ इस क्षेत्र से होकर गुजरती हैं। इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व अधिक होने के कारण यहाँ पर प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता अन्य क्षेत्रों के मुकाबले कम है, किसानों की जोत छोटी है एवम् प्रति व्यक्ति आय कम है। इसके कारण किसानों द्वारा कम उर्वरक एवम् सिंचाई का प्रयोग किया जाता है। यही इस क्षेत्र की कम उत्पादकता का कारण है। नई तकनीक अपनाकर किसान कम लागत में अधिक उत्पादन कर सकते है।

उत्तर पूर्वी भारत में धान-गेहूँ एक प्रमुख फसल चक्र है। इस फसल चक्र के कारण अक्सर गेहूँ की बुवाई में देरी हो जाती है एवम् गर्म हवाओं के कारण दाने सिकुड़ जाते हैं। ऐसी दशा में शीघ्र पकने वाली, उच्च तापमान रोधी प्रजाति की आवश्यकता पड़ती है। उपरोक्त समस्याओं को ध्यान में रखकर इस क्षेत्र के लिए शोध के निम्नलिखित मुद्दों की पहचान की गई हैं।

1. नई विकसित किस्मों के अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की उपलब्धता बढ़ाना
2. कटाई पूर्व अंकुरण की सहनशक्ति की कमी को दूर करना
3. कमज़ोर कल्लों का फुटाव व दानों का सिकुड़ना
4. अल्पकालिक फसल अवधि का होना
5. मृदा लवणता जैसी समस्याएँ

**ग. मध्य क्षेत्र**

यह क्षेत्र उच्च गुणवत्ता वाले गेहूँ उत्पादक क्षेत्र के लिए जाना जाता है। इस क्षेत्र में प्रमुख गेहूँ उत्पादक राज्य है मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के कुछ क्षेत्र एवम् छत्तीसगढ़। इस क्षेत्र में गेहूँ की खेती करीब 5-6 मि.है. क्षेत्रफल में की जाती है। पानी की उपलब्धता इस क्षेत्र की प्रमुख समस्या है। अतः जल्दी पकने वाली प्रजाति का विकास वैज्ञानिको का प्रथम लक्ष्य है। शोध प्राथमिकता में उच्च तापमान रोधी, कम पानी में अच्छा उत्पादन करने वाली किस्मों का विकास, भूरे तथा काले रतुआ से रोधी किस्मों का निर्माण एवम् अधिक प्रोटीन एवम् बेहतर चपाती गुणवत्ता प्रमुख हैं।

**घ. प्रायद्विपीय क्षेत्र**

इस क्षेत्र में गेहूँ करीब 1.5 मि.है. क्षेत्रफल में उगाया जाता है। इस क्षेत्र के प्रमुख गेहूँ उत्पादक राज्य है महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, गोवा एवम् तमिलनाडु के मैदानी क्षेत्र। इस क्षेत्र की उत्पादकता 2.9 टन प्रति हैक्टेयर है। अग्रिम पंक्ति प्रर्दशनों में 3.8 टन/है. उत्पादकता को प्राप्त किया जा चुका है। अतः उत्पादन एवम् उत्पादकता बढ़ाने की अच्छी संभावना मौजूद है।

चपाती एवम् मैक्रोनी गेहूँ के अलावा यह क्षेत्र डाइकोकम उत्पादन के लिए भी जाना जाता है। डाइकोकम को मधुमेह के उपचार एवम् स्वस्थ भोजन के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

**ङ. दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र**

यह क्षेत्र तमिलनाडु और केरल के पर्वतीय क्षेत्र (पलनी और नीलगिरी) में स्थित है और 0.2 मि.है. क्षेत्रफल में गेहूँ का उत्पादन करता है। इस क्षेत्र की उत्पादकता 1.0 टन/है. है।

गेहूँ उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र, उत्पादन परिस्थिति एवम् नवीनतम प्रजातियाँ

| क्षेत्र | उत्पादन परिस्थिति | नवीनतम प्रजातियाँ |
|---|---|---|
| उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र | सिंचित अवस्था में समय से बुवाई (नवंबर 10-25) | डी. बी. डब्लू. 17, पी.बी.डब्लू.550, पी.बी.डब्लू. 502, एच.डी. 2687, एच.डी. 2851, डब्लू.एच. 542, पी.डी.डब्लू.291*, डब्लूएच.891*, पी.बी.डब्लू। 343 |
| | सिंचित अवस्था में देर से बुवाई (नवंबर 25 - दिसम्बर 25) | डी.बी.डब्लू. 16, पी.बी.डब्लू. 373, डब्लू. एच. 1021, राज 3765, यू.पी. 2425, पी.बी.डब्लू. 590. |
| | असिंचित अवस्था में समय से बुवाई (अक्टूबर 25 - नवम्बर 15) | पी.बी.डब्लू. 396, पी.बी.डब्लू. 299, डब्लू.एच. 533, पी.बी.डब्लू. 175, सी. 306, डब्लू. एच. 533 |
| | क्षारीय भूमि के लिए | के.आर.एल. 1-4, के.आर.एल. 19. |
| उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र | सिंचित अवस्था में समय से बुवाई (5 नवंबर-25 नवंबर) | एच.डी. 2733, एच.डी. 2824, सी.बी.डब्लू. 38, राज. 4120, पी.बी.डब्लू. 443, के. 307, एच.यू.डब्लू. 468, एन.डब्लू. 1012, एच.पी. 1761, एच.पी. 1731. |
| | सिंचित अवस्था में देर से बुवाई (25 नवंबर-25 दिसम्बर) | एन.डब्लू. 2036, डी.बी.डब्लू. 14, एच.डब्लू. 2045, एन.डब्लू. 1014, एच.डी. 2643, एच.पी. 1744 |
| | असिंचित अवस्था में देर से बुवाई (अक्टूबर 25-नवंबर 15) | एच.डी. 2888, एच.डी.आर. 77, के. 8962, के. 9465, के. 8027, सी. 306. |
| | क्षारीय भूमि के लिए | के.आर.एल.1-4, के.आर.एल. 19. |
| मध्य क्षेत्र | सिंचित अवस्था में देर से बुवाई (25 नवंबर-25 दिसम्बर) | जी.डब्लू. 322, जी.डब्लू. 366, जी.डब्लू. 273, एच.आई. 8498*, एच.आई. 8381*, एच.आई.1544. |
| | दो सिंचाई, समय से बुवाई (5 नवंबर-25 नवंबर) | एच.आई. 1531, एच.आई.8627*. |

| | | |
|---|---|---|
| | सिंचित अवस्था में देर से बुवाई (25 नवंबर-25 दिसम्बर) | एच.डी. 2864 (उर्जा), एच.डी. 2932, एम.पी. 4010, डी.एल. 788-2. |
| | असिंचित, अवस्था में समय से बुवाई (25 अक्टूबर-15 नवंबर) | एच.डी. 4672*, एच.आई. 8627*, एच.आई. 1500, एच.डब्लू. 2004, जे.डब्लू.एस. 17, एच.आई. 1531. |
| प्रायद्विपीय क्षेत्र | सिंचित अवस्था में समय से बुवाई (5 नवंबर-25 नवंबर) | राज. 4037, जी.डब्लू. 322, डब्लू.आर. 162, एम.ऐ.सी.एस. 2496, एम.ऐ.सी.एस. 2846*, डी.डी.के. 1001**, डी.डी.के. 1009**, एच.डी. 4663*, एन.आई.ए.डब्लू. 917, डी.डी.के. 1025**, यू.ऐ.एस. 415*, एम.ऐ.सी.एस. 2971**. |
| | सिंचित अवस्था में देर से बुवाई (25 नवंबर-25 दिसम्बर) | डी.डब्लू.आर. 195, एच.डी. 2932, एन.आई.ए. डब्लू. 34, एच.यू.डब्लू. 510, एच.डी. 2833, राज. 4083. |
| | असिंचित, अवस्था में समय से बुवाई (25 अक्टूबर-15 नवंबर) | एच.डी. 2781, के. 9644, एम.ऐ.सी.एस. 1967, ए.के.डी.डब्लू. 2997-16*, बीजागा येलो. |
| उत्तरीय-पर्वतीय क्षेत्र | सिंचित अवस्था में समय से बुवाई | वी.एल. 738, वी.एल. 804, एच.एस. 240. |
| | असिंचित अवस्था में समय से बुवाई | वी.एल. 738, वी.एल. 804, एच.एस. 240, टी.एल. 2942***. |
| | असिंचित अवस्था में देर से बुवाई | एच.एस. 240, एच.एस. 420. |
| | असिंचित अवस्था में जल्दी बुवाई | वी.एल. 616, एच.एस. 277, वी.एल. 829. |
| | ट्रीटीकेल | डी.टी. 46***. |
| | असिंचित हाई ऐल्टीट्यड | एच.पी.डब्लू. 42, एच.एस. 365, वी.एल. 832, ऐस.के. डब्लू. 196. |
| | ग्रीष्मकालीन बुवाई | एच.एस. 375. |

*ड्युरम, ** डाइकोकम, *** ट्रीटीकेल

**च.** उत्तरीय पर्वतीय क्षेत्र

इस क्षेत्र में 0.8 मि.है. में गेहूँ का उत्पादन किया जाता है जो मुख्यतया वर्षा पर आधारित है। इस क्षेत्र में जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम और पश्चिम बंगाल के पर्वतीय क्षेत्र आते है।

**अधिक उत्पादन के लिए सही प्रजातियों का चुनाव**

गेहूँ उत्पादन तकनीक का सबसे अहम् एवम् महत्वपूर्ण पहलू यह है कि किसान अपनें क्षेत्रों के लिए सही प्रजाति का चुनाव करें और साथ ही उन किस्मों का भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही प्रयोग करें। विभिन्न ऐजेन्सी द्वारा कराए गए आधारभूत सर्वेक्षण से यह तथ्य सामने आए है कि प्रमुख गेहूँ उत्पादक क्षेत्र में किसान पुरानी किस्में जैसे यू.पी. 262, लोक-1, मालवीय 234 जैसी रोग ग्रसित प्रजातिया उगा रहे है।

## 11.3 खेत की तैयारी

जुताई का मुख्य उद्देश्य मिट्टी को भुरभुरी बनाना है। अगर नवीनतम जुताई तकनीक जैसे जीरो टिलेज इत्यादि का उपयोग न कर रहें हो तो कल्टीवेटर एवम् डिस्क हैरो से लगातार जुताई करके खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लें। परन्तु सर्वोत्तम यह होगा कि संसाधन प्रबंधन तकनीक का ही इस्तेमाल करें। मैदानी भाग में विविध फसल अनुक्रमों की वजह से खेत की तैयारी एवम् अवशेष प्रबंधन में सावधानी बरतें। धान-गेहूँ उत्तरपश्चिमी एवम् पूर्वी मैदानी क्षेत्रों का एक प्रमुख फल चक्र है। खेत की तैयारी करते समय यह ध्यान रखने वाली बात है कि बुवाई करते समय नमी की मात्रा उपयुक्त हो, अन्यथा जमाव पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अगर नमी उचित मात्रा में नहीं है तो बुवाई से पूर्व एक पलेवा अवश्य लगा लें।

## 11.4 बुवाई

**बुवाई का समय**

मैदानी क्षेत्रों में गेहूँ की बुवाई का उपयुक्त समय है जब दिन-रात का औसत तापमान 21.230 सेन्टीग्रेड हो जाता हैं। आम तौर पर यह तापमान नवंबर के दूसरे सप्ताह तक हो जाता है। यहाँ पर विशेष बात यह है कि किसी हालत में गेहूँ की बुवाई दिसम्बर माह के उपरांत नहीं करनी चाहिए, अन्यथा उत्पादन पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है।

1. समय से बुवाई (सिंचित): 10 से 25 नवम्बर तक
2. देर से बुवाई (सिंचित): 25 दिसम्बर तक

**बुवाई की विधि**

खेत को अच्छी तरह से तैयार करने के उपरांत बुवाई करते समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20-23 सें.मी. एवम् गहराई 5-6 सें.मी. रखें। जहाँ तक संभव हो, सीड ड्रिल का ही प्रयोग करके बुवाई करें। जब बुवाई जीरो टिलेज अथवा बेड प्लांटर से की जाए तो अच्छे जमाव के लिए बीज की गहराई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। अधिक पौध उत्पादन के लिए आड़ी-तिरछी विधि से बुवाई की जा सकती है। धान गेहूँ की फसल चक्र के मामले में जीरो टिलेज अथवा रोटरी टिलेज का प्रयोग अधिक प्रभावशाली एवम् लाभप्रद पाया गया है। पछेती बुवाई की दशा में पंक्तियों की दूरी घटा कर 16-18 सें.मी. रखें।

## 11.5 बीज की दर

बीज की दर को निर्धारित करने वाले कारक है: बीज का आकार, जमाव का प्रतिशत, बुवाई करने का समय एवम् प्रयोग में लाए जाने वाला फसल चक्र।

अगर दाना मध्यम आकार का है (38-40 ग्रा./1000 दाना) तो निम्नलिखित मात्रा में बीज का प्रयोग करें।

| बुवाई का समय / स्थिति | बीज दर (किग्रा/है.) |
|---|---|
| समय से बुवाई | 100 |
| पछेती बुवाई | 125 |
| जीरो टिलेज | 125-150 |
| मेड़ पर बुवाई | 75 |
| रोटरी टिलेज से बुवाई | 100 |

उपचारित बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए। बीजोपचार के लिए वीटावैक्स या बैविस्टीन 2.5 ग्रा / किलो बीज के लिए पर्याप्त है।

## 11.6 खाद एवम् उर्वरकों का प्रयोग

गेहूँ की फसल में नत्रजन, फास्फोरस एवम् पोटाश का प्रभाव बहुत अच्छा पाया गया है। अगर उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी की जाँच के उपरांत किया जाए तो उससे कम लागत में अच्छी उपज ली जा सकती है। खेतों में प्रति हैक्टेयर 80-100 क्विंटल गोबर की खाद एवम् कम्पोस्ट का प्रयोग करने से अच्छी उपज मिलती है और साथ ही मृदा की उर्वरता में भी वृद्धि होती है। समय से बुवाई की जाने वाली प्रजातियों के लिए प्रति हैक्टेयर 100-125 कि.ग्रा. नत्रजन, 60-80 कि.ग्रा. फास्फोरस एवम् 40 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। देर से बुवाई जाने वाली किस्मों के लिए उर्वरक की मात्रा कम कर दी जाती है। ऐसी अवस्था में 60-80 कि.ग्रा. नत्रजन, 30-40 कि.ग्रा. फास्फोरस एवम् पोटाश प्रति हैक्टेयर पर्याप्त है। बरानी गेहूँ में 80 कि.ग्रा. नत्रजन एवम् 40 कि.ग्रा. फस्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जीरो टिलेज तकनीक में 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 75 कि.ग्रा. फास्फोरस एवम् 50 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवम् पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय ही खेत में डाल दें। बची हुई आधी नत्रजन की मात्रा को प्रथम सिंचाई के उपरांत खेत में बुरकाव करें। बरानी गेहूँ में नत्रजन एवम् फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय ही खेत में डाल दें। किसान भाई खाद को खेत में समान रूप में डालें अगर यह कार्य सीड ड्रील के द्वारा किया जाए तो अधिक लाभप्रद रहेगा।

## 11.7 सूक्ष्म तत्वों की कमी, लक्षण, पहचान एवम् निदान

हरित क्रांति के उपरांत किसानों द्वारा गहन फसल चक्र का प्रयोग करने के कारण मृदा में कई तत्वों का दोहन भरपूर मात्रा में हो गया। इनमें सूक्ष्म तत्वों की भरपाई पूरी तरह से न हो पाने से इसके लक्षण फसल में दिखाई देने लगते है। प्रायः सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षण फसल की प्रारंभिक अवस्था में दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु जैसे पौधा बढ़ता जाता है, उसकी मांग बढ़ती

है और सूक्ष्म तत्वों की कमी के लक्षण स्पष्ट होने लगते है। गेहूँ की फसल में मुख्यतया जिन सूक्ष्म तत्वों की कमी दिखती है उनमें प्रमुख हैं जस्ता (जिंक), मैगनीज एवम् गंधक (सल्फर)। कभी-कभी एक से अधिक सूक्ष्म तत्वों की कमी पौधे में एक साथ हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में यह लक्षण भ्रमित कर सकते हैं।

**सूक्ष्म तत्वों की कमी के मुख्य लक्षण इस प्रकार है:**

1. **जस्ता (जिंक):** जिंक की कमी प्रायः उन क्षेत्रों में देखी जाती है जहाँ पर धान-गेहूँ फसल चक्र का प्रमुखता से प्रयोग होता है। पौधे में जस्ते की मात्रा 15 पी.पी.एम. से कम होने पर उसकी कमी के लक्षण आने लगते हैं। आरम्भ में नई पत्तियों की शिराओं के मध्य भाग में पर्णहीनता दिखाई देती है। जिंक की कमी से पौधे की बढ़त रूक जाती है और पत्तियाँ सूख कर गिर जाती है।
2. **गंधक (सल्फर):** गंधक पौधों में प्रोटीन बनाने वाले प्रमुख तत्व अमीनो एसिड का प्रमुख घटक है। यह क्लोरोफिल बनाने में भी काम आता है। क्लोरोफिल प्रकाश संश्लेषण में प्रमुख योगदान करता है। सल्फर की कमी रेतीली भूमि में ज्यादा दृष्टिगोचर होती है, अथवा पौधों को छोटी अवस्था में अधिक वर्षा होने पर दिखाई देती है। सल्फर की कमी से पत्तियों का हरा रंग समाप्त होने लगता है और पत्तियों की शिराओं का मध्य भाग पीला होने लगता है। पौधों की बढ़वार रूक जाती है ओर व्यांत कम हो जाता है। इस तत्व की कमी को गंधक युक्त उर्वरकों जैसे सिंगल सुपर फास्फेट आदि के प्रयोग से दूर किया जा सकता है।
3. **मैंगनीज:** पौधे में मैंगनीज की मात्रा 25 पी.पी.एम. से कम होने पर सर्वप्रथम बीच वाली पत्तियों की शिराओं के मध्य हल्के हरे-भूरे रंग के धब्बे तथा आरम्भिक पत्तियों में पर्णहीनता दिखाई पड़ती है।

**सूक्ष्म तत्वों की पूर्ति के उपाय**

1. नियमित रूप से गोबर की खाद एवम् कम्पोस्ट का प्रयोग करें।
2. मिट्टी का परीक्षण कराएं ताकि सही मात्रा में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग हो, साथ ही अनावश्यक खर्च न हो।
3. रसायनिक उर्वरक चाहे प्राथमिक तत्व के लिए हों या सूक्ष्म तत्वों के लिए, संतुलित मात्रा में प्रयोग करने चाहिए।
4. यदि मृदा क्षारीय हो तो वैज्ञानिक परामर्श से ही मृदा सुधार कार्यक्रम चलाएँ।
5. अत्याधिक सिंचाई न दें।
6. यदि मृदा परीक्षण न हुआ हो तो तालिका में दर्शाए गए तरीके से उर्वरकों का प्रयोग करें।

| सूक्ष्म पोषक तत्व | मात्रा (मिट्टी में) प्रति हैक्टेयर | छिड़काव की मात्रा |
|---|---|---|
| जस्ता | 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट | 0.5% जिंक सल्फेट + 0.25% चूने का घोल |
| लोहा | 50 कि. ग्रा. फेरस सल्फेट | 1.0% फ़ैरस सल्फेट + 0.5% चूने का घोल |
| मैगनीज | 25 कि. ग्रा. मैगनीज सल्फेट | 1.0% मैगनीज सल्फेट + 0.5% चूने का घोल |
| ताँबा | 20 कि. ग्रा. काफपर सल्फेट | 0.5% कॉपर सल्फेट + 0.25% चूने का घोल |
| बोरॉन | 10 कि. ग्रा. बोरैक्स | 0.3% बोरैक्स का घोल |

## 11.8 संचाई

प्रायः ऐसा देखा गया है कि गेहूँ उत्पादन चार से पांच सिंचाई में अच्छा होता है। परन्तु किसान इस डर से कि फसल गिर जाएगी, अक्सर 2-3 सिंचाई से अधिक देने में कतराते हैं। किसान भाइयों को सिंचाई उपलब्धता के अनुसार निम्नलिखित अवस्थाओं में सिंचाई करनी चाहिए।

| सिंचाई की संख्या | सिंचाई की अवस्था एवं दिन | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | चंदेरी जड़ निकलते समय (21-24) | व्यांत पूर्ण होने पर (45) | तने में गाढ बनते समय (65) | बालियाँ निकलते समय (85) | दानों में दूध भरते समय (105) | दाने सख्त होते समय (120) |
| एक | | - | - | - | - | - |
| दो | | - | - | | - | - |
| तीन | | - | | - | | - |
| चार | | | - | | | - |
| पांच | | | | | | - |
| छः | | | | | | |

## 11.9 खरपतवार नियंत्रण

गेहूँ की फसल में पाए जाने वाले खरपतवार दो श्रेणियों में रखे जा सकते हैं। एक चैड़ी पत्ती वाले एवम् दूसरे संकरी पत्ती वाले। गेहूँ में उगने वाले मुख्य खरपतवार हैं गुल्ली डंडा/गेहूँसा/मंडूसी, जंगली जई, बथुवा, खरबाधु, हिरनखुरी, सत्यानाशी, कृष्णनील, कटैली एवम् मोथा आदि। मैदानी क्षेत्रों में रबी फसलो में सबसे भयंकर खरपतवार मंडूसी है। यह मुख्यतः धान-गेहूँ फसल चक्र का खरपतवार है।

## 11.10 खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ

गेहूँ में खरपतवार नियंत्रण की विधियों को मुख्यतः तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। यह हैं सस्य, यान्त्रिक एवम् रसायनिक विधि।

**सस्य विधि**

1. मेड़ो एवम् नालियों को साफ सुथरा रखें।
2. फसल चक्र को परिर्वतित करते रहें।
3. फसल विविधीकरण का पालन करें।

4. जीरो टिलेज विधि से गेहूँ उत्पादन करें।
5. गेहूँ की जल्दी बढ़ने वाली किस्मों का चुनाव करें।
6. बेड प्लांटर अथवा रोटोवेटर से बुवाई करने से खरपतवार कम उगते है।
7. साफ सुथरे, स्वस्थ एवम् खरपतवार रहित उच्च गुणवत्ता वाले बीज का प्रयोग करें।
8. जहाँ तक संभव हो सके अगर खेत खाली हों तो बुवाई 15 नवंबर से पहले कर दें।
9. खाद को बीज के 2-3 से.मी. नीचे डाले और बुवाई के लिए सीड ड्रिल का प्रयोग करें।
10. पौधों की संख्या बढ़ाने के लिए आड़ी-तिरछी विधि से बुवाई करें।

**यान्त्रिक विधि**

गेहूँ की बुवाई के एक माह के उपरांत यदि खेत में खरपतवार दिखाई दे तो निराई गुड़ाई करें। बुवाई के 30-35 दिन के उपरांत लाइनों में बोए गेहूँ की गुड़ाई खुरपे या कसौले इत्यादि से की जा सकती है। परन्तु यदि बुवाई लाइनों में नहीं की गई हो और खरपतवारों की संख्या बहुत अधिक हो तो ऐसी स्थिति में रसायनिक नियंत्रण ही श्रेयस्कर होगा और उसमें लागत भी कम आएगी। रसायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण में कम मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है और यह ज्यादा कारगर होता है।

**रसायनिक विधि**

रसायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि इससे खरपतवार नियंत्रण आर्थिक तौर पर लाभप्रद रहता है। परन्तु इस विधि से खरपतवार नियंत्रण में महत्वपूर्ण बात यह है कि किसान भाइयों द्वारा उन्हीं रसायनों का प्रयोग किया जाना चाहिए जिनकी संस्तुति विशेषज्ञों द्वारा की गई है। इस विधि से खरपतवार निम्नलिखित तरीके से नियंत्रित किए जा सकते है।

क. **गेहूँ उगने से पहले**

गेहूँ के जमाव से पूर्व प्रयोग में लाए जाने वाला खरपतवारनाशी है स्टाम्प 30 ई.सी. (पैन्डामैथालीन) जिसे 3-5 लीटर (1000 ग्रा.ए.आई.) प्रति हैक्टेयर की दर से 700-750 लीटर पानी में घौल कर बोने के 0 से 3 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।

ख. **गेहूँ उगने के बाद**

**संकरी और चैंड़ी पत्ती वाले खरपतवार**

1. लीडर (सल्फासल्फ्यूरान) को 33.3 ग्रा. प्रति हैक्टेयर (25 ग्रा. ए. आई.) की दर से 250-300 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।
2. सेन्कोर 70 डब्ल्यू पी (मेट्रीब्यूजीन) को 250 ग्रा. (175 ग्रा.ए.आई.) प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करना चाहिए। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन रसायनों का प्रयोग अत्यंत सावधानी पूर्वक करना चाहिए। हर हाल में इनका छिड़काव बुवाई के 35 दिन के अंदर कर दिया जाना चाहिए अन्यथा गेहूँ की फसल पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

**खरपतवारनाषी एक नजर में**

| खरपतवारनाषी | खरपतवार | दर(प्रति हैक्टेयर) | प्रयोग का समय |
|---|---|---|---|
| स्टाम्प | संकरी एवम् चौड़ी | 3.5-5.0 लीटर | बुवाई के तुरंत बाद |
| लीडर | संकरी एवम् चौड़ी | 33.3 ग्रा. | बुवाई के 35 दिन तक |
| सेन्कोर | संकरी एवम् चौड़ी | 250 ग्रा. | बुवाई के 35 दिन तक |
| टापिक | संकरी पत्ती | 400 ग्रा. | बुवाई के 35 दिन तक |
| प्युमासुपर | संकरी पत्ती | 800-1200 मि. ली. | बुवाई के 35 दिन तक |
| अलग्रीप | चौड़ी पत्ती | 20 ग्रा. | बुवाई के 35 दिन तक |
| ग्रास्प | संकरी पत्ती | 3500 मि. ली. | बुवाई के 35 दिन तक |

**केवल संकरी पत्ती वाले खरपतवार**

1. टापिक 15 डब्ल्यू.पी. (क्लोडीनाफाप) का 400 ग्रा. (60 ग्रा. ए. आई.) प्रति हैक्टेयर की दर से 250-300 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।
2. प्यूमासुपर 10 ई.सी. (फिमोक्सापोपइथाईल) के 800-1200 मि.ली. (80-120 ग्रा.ए.आई. प्रति है.) की दर से 250-300 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
3. ग्रास्प 10 ई.सी. (ट्रालकोक्सीडीम) का 3500 मि.ली. प्रति हैक्टेयर (350 ग्रा. ए.आई.) की दर से 250-300 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

**खरपतवारनाशी रसायन के इस्तेमाल के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य**

1. मिश्रित फसल जैसे गेहूँ में सरसों की बुवाई हो तो लीडर या अन्य खरपतवारनाशी का प्रयोग न करें।
2. दवाई के प्रयोग की संस्तुत विधि को अपनाकर छिड़काव करें। रेत, यूरिया या मिट्टी में मिला कर प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. पूरे खेत में एक जैसा छिड़काव करें।
4. खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
5. दवा का प्रयोग दोपहर बाद करना लाभकारी होता है जब पत्ती पर ओस सूख जाए।
6. केवल फ्लैट फैन नाॅजल का इस्तेमाल करें।

## 11.11 रोग नियंत्रण

मैदानी क्षेत्रों में गेहूँ में लगने वाले मुख्य रोगों में रतुवा, कंडुवा तथा करनाल बंट प्रमुख रोग माने जाते हैं। कभी-कभी चूर्णिल असिता एवम् झुलसा रोग भी कुछ क्षेत्रों में अपना प्रकोप दिखाते है।

**1. रतुवा रोग**

रतुवा रोग जिसमें पीला, भूरा एवम् काला रतुवा प्रमुख हैं, से बचाव हेतु सबसे लाभकारी उपाय है गेहूँ की नवीनतम किस्मों को ही प्रयोग में लाए। नवीनतम प्रजातियाँ रतुवे के रोगरोधी क्षमता होने पर ही संस्तुत की जाती है।

**2. कंडुवा रोग (लूज स्मट)**

यह बिमारी एक कवक यूस्टिलागो ट्रीटीसी के द्वारा फैलती है। कंडुआ रोग लगने से बालियों में दाना न बन कर काला चूर्ण भर जाता है। यह कवक दानें के भीतर ही रहता है। अतः फसल उत्पादन हेतु प्रयोग में लाए जाने वाले बीज का शोधन करना अति आवश्यक है। बीज शोधन के लिए कारबोक्सीन (वीटावैक्स 75 डब्ल्यू पी) 2.5 ग्रा. प्रति किलो बीज, कारबेन्डाजीम (बावीस्टीन 50 डब्ल्यू) 2.5 ग्रा. प्रति किलो बीज या टेबूकोनाजोंल (रैक्सील 2 डी एम) 1.25 ग्रा. प्रति किलो बीज का इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके साथ ही रसायन एवम् जीव रसायन जैसे वीटावैक्स 75 डब्लू. पी 125 ग्रा. और जीव रसायन ट्राइकोडर्मा वीरीडी 4 ग्रा. प्रति किलो बीज के दर से शोधन किया जा सकता है। कन्डुवा रोग का समेकित प्रबंधन हमेशा अच्छा होता है क्योंकि यह पर्यावरण के लिए अच्छा है एवम् आर्थिक तौर पर भी लाभप्रद है। इसके अलावा बीज को 4 घंटे पानी में भिगाने के उपरांत मई जून की तेज धूप में सुखाने से बीज के अंदर मौजूद कवक नष्ट हो जाता है।

**3. झुलसा रोग**

यह रोग कवकों के एक समूह जिसमें हेलिमेन्थोस्पोरियम, आल्टरनेरिया एवम् ड्रेशलेरा प्रमुख है, के द्वारा फैलता है। यह बीमारी बीज के द्वारा फैलती है। वातावरण में अत्यधिक आर्द्रता एवम् तापमान (25-30 डि.से.), इस बीमारी को बढ़ाने में सहायक होते है। इस बीमारी में पत्तियां सूखने लगती है और अंत में पूरा पौधा सूख जाता है। अगर वातावरण सहायक हो तो यह बीमारी काफी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। इस बीमारी से बचाव का सबसे सरल उपाय यही है कि गेहूँ की नवीनतम प्रजातियों का इस्तेमाल करें।

4. **करनाल बंट**

करनाल बंट से गेहूँ का दाना काला पड़ जाता हैं और इस स्थिति में दाना खाने योग्य भी नहीं रह जाता है। हालाँकि यह बीमारी उतनी गंभीर नहीं है, परन्तु हाल के वर्षो में कई देशों द्वारा भारतीय गेहूँ को वापस लौटा दिए जाने के कारण इसका महत्व बढ़ा है। गेहूँ की नवीनतम प्रजातियों को उगाने से इस बिमारी पर काबू किया जा सकता है। इसके साथ ही अगर बीज का शोधन थीरम (2.5 ग्रा./किलो बीज) से किया जाए या ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 कि./प्रति लीटर के घोल के दो बार छिड़काव से (45 दिन एवम् 65 दिन पर) करनाल बंट पर नियंत्रण किया जा सकता है।

## 11.12 कीट पतंगों पर नियंत्रण

गेहूँ की फसल में कई प्रकार के कीटपतंगों का आक्रमण होता है, परन्तु सौभाग्य से बहुत कम ऐसे कीट है जो आर्थिक तौर पर नुकसान पहुँचा पाते हैं। गेहूँ में मुख्यतया दीमक शूट फ्लाई, ऐफिड्स, सैनिक कीट, भूरी चीटियों का प्रकोप होता है। इन सभी कीटों के नियंत्रण के लिए कीटनाशी रसायन उपलब्ध हैं ओर यदि विशेषज्ञों की राय से छिड़काव करें तो आसानी से इनका नियंत्रण किया जा सकता है।

दीपक के नियंत्रण के लिए क्लोरापाइरीफास (0.9 ग्रा ए आई / प्रति कि.) से बीज शोधन करें या ईन्डोसल्फान (2.4 ग्रा ए. आई. / किलो बीज) से बीज शोधन करें। बीज शोधन के लिए

फिपरोनील 5 एफ एस (0.3 ग्रा ए. आई. / प्रति किलों बीज) का भी इस्तेमाल लाभकारी पाया गया है।

इसके अतिरिक्त ईन्डोसल्फान (35 ई सी) एक लीटर दवा को सिंचाई करते समय एक एकड़ पानी के लिए प्रयोग करने से मृदा में दीपक नियंत्रित हो जाएगें।

शूटफ्लाई के लिए साइपर मैकोइन 50 ग्रा. ए. आई. का छिड़काव करना चाहिए। भूरी चीटियें को नियंत्रित करने के लिए फारमिथिआन 25 ई.सी. 650 मि.ली. प्रति हैक्टर या मिथाइल 25 ई.सी. 650 मिली लीटर प्रति हैक्टर या फास्फेमिडान (डाइमेक्रान 85 ई.सी.) 300 मि.ली. प्रति हैक्टर का छिड़काव करना चाहिए। चूहे के नियंत्रण के लिए एक हिस्सा जिंक सल्फेट, 50 हिस्से आटे को तेल एवम् गुड़ के मिश्रण की गोलियां मिलाकर बिलों में डालें।

सुरसुरी गेहूँ का बहुत महत्वपूर्ण भंडारण कीट है और यह बहुत व्यापक तौर पर नुकसान पहुँचाता है। अगर दाने नरम हैं तो इस कीट से नुकसान कई गुना बढ़ जाता है। इसको नियंत्रित करने के लिए एल्युमिनियम फास्फाईड या सल्फास का प्रयोग किया जा सकता है।

## 11.13 समस्याग्रस्त भूमि में गेहूँ उत्पादन

उत्तर पश्चिमी एवम् पूर्वी मैदानी भागों में कई इलाकों में क्षारीय एवम् लवणी मृदा हैं। क्षारीय मृदा में सोडियम कार्बोनेट एवम् सोडियम बाईकार्बोनेट तथा लवणीय मृदा में सोडियम क्लोराइड एवम् सोडियम सल्फेट की बहुतायत होती है। ऐसी स्थिति में जमाव ठीक नहीं होता है और पौधे मर जाते है। अगर पौधे अपने को बचा पाने में सक्षम रहते है तो पौधे की बढ़वार कम हो जाती है और उत्पादन भी कम हो जाता है। ऐसी समस्याग्रस्त भूमि के लिए प्रतिरोधी प्रजातियाँ जैसे के.आर.एल. 1-4, के.आर.एल. 19, राज. 3077 एवम् डब्ल्यू.एच. 147 का ही प्रयोग करें। बीज की मात्रा भी 25 प्रतिशत बढ़ा कर दें। क्षारीय भूमि में मिट्टी की जांच के उपरान्त 15-20 टन जिप्सम का प्रयोग करें और गोबर की खाद या कम्पोस्ट का भी इस्तेमाल करे।

## 11.14 कटाई उपरांत ध्यान देने योग्य बातें

पकने के उपरांत फसल को होने वाले नुकसान से बचने के लिए गेहूँ की कटाई फसल के पूर्णतया पकने के 4-5 दिन पूर्व जब दानों में नमी की मात्रा 18-22 प्रतिशत हो तब कर देना चाहिए। मुख्यतः कटाई हसीए से मजदूरो के माध्यम से की जाती है। अगर कटाई के लिए बैलों या ट्रैक्टर से चलने वाले रीपर या कम्बाइन का प्रयोग किया जाए तो लागत में काफी-कमी आ जाती है। सुबह का समय कटाई के लिए ज्यादा उपयुक्त होता है। अगर कटाई हाथ से की जाती है तो फसल के बंडल को 3-4 दिन खेत में छोड़ देना श्रेयस्कर होता हैं। फसल को वर्षा इत्यादि से बचाने के लिए प्लास्टिक शीट का इस्तेमाल करें।

## 11.15 भंडारण

अनाज को भंडारण से पहले अच्छी तरह से सुखा लें। इसके लिए अनाज को तारपोलिन अथवा रंगीन प्लास्टिक की चादर पर तेज धूप में सुखाएं जिससे दानों में नमी की मात्रा 12 प्रतिशत से कम हो जाए। भंडारण के लिए पूसा कुठार या पूसा बिन्स का इस्तेमाल करें। भंडारण

के दौरान अनाज को कीड़ों से बचाने के लिए ऐल्युमीनम फास्फाइड अथवा इडीबी / 56 मि.ली. प्रति टन रसायन का प्रयोग करें। भंडारण से पहले कमरे या बिन पर कीटनाशक दवा का छिड़काव करें। कमरे में चूहे इत्यादि का प्रवेश वर्जित करें।

## 11.16 फार्म यंत्रों व मशीनों का समुचित उपयोग, रखरखाव एवम् सावधानियाँ

कृषि कार्यो का यंत्रीकरण वर्तमान परिस्थिति में एक प्रकार से आधुनिक कृषि की कुंजी है। खेत का यंत्रीकरण समय और मजदूरों की बचत के साथ-साथ किसान की ऊर्जा एवम् लागत को समुचित ढंग से प्रयोग करने का अवसर प्रदान करता है। विगत वर्षो में कृषि में प्रयोग होने वाली मशीनों में आवश्यकता अनुसार सुधार किया गया है, जिससे कम से कम समय लगे एवम् ऊर्जा की बचत हो सके।

फसल उत्पादन के लिए खाद एवम् बीज ड्रिल बहुत ही आवश्यक यंत्र है। आज कल बाजार में विभिन्न प्रकार की बुवाई की मशीनें उपलब्ध है। परन्तु इन सभी मशीनों में खाद और बीज को नियंत्रित करने की विधि एक प्रकार की है। विभिन्न फार्म यंत्रों के रखरखाव के संदर्भ में ध्यान देने योग्य बाते निम्नलिखित हैं।

1. खाद एवम् बीज मशीन का असंशोधन करने के उपरांत ही बुवाई प्रारम्भ करें।
2. खाद व बीज को मशीन के बाक्स से बुवाई करने के उपरांत निकाल लेना चाहिए।
3. दो पंक्तियों के मध्य की दूरी तथा कूड़ की गहराई फसल के अनुसार निश्चित करनी चाहिए।
4. खाद को रात भर कभी भी बक्से में नहीं छोड़ें।
5. खाद एवम् बीज का पाइप पारदर्शी होना चाहिए।
6. खाद को बक्से में डालने से पूर्व उर्वरकों को अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए।
7. मशीन को मोड़ते हुए सावधनी बरतनी चाहिए।

## 11.17 गेहूँ के अधिक उत्पादन के लिए कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. क्षारीय एवम् लवणीय भूमि में जल प्रबंधन के कार्यक्रम का अनिवार्य रूप से प्रयोग करें।
2. देर से बुवाई की अवस्था में संसाधन प्रबंधन तकनीक जैसे जीरो टिलेज का प्रयोग करें।
3. अपने इलाके के लिए उपयुक्त व विभिन्न अवधियों पर बोई जा सकने वाली किस्मों का ही चयन करें।
4. बीज विश्वसनीय संस्था से ही ले और जहाँ तक संभव हो तीन से चार वर्ष उपरांत बीज को बदल दें।
5. मिट्टी की जांच के बाद उर्वरकों का प्रयोग करें। उर्वरकों का छिड़काव शाम के समय उचित होता है, जब खेत में थोड़ी नमी मौजूद हो।

## 11.18 गेहूँ उत्पादन तकनीक एक नजर में

| सस्य क्रिया | सिंचित समय से बुवाई | सिंचित देर से बुवाई | असिंचित समय से बुवाई |
|---|---|---|---|
| बीज दर (कि.ग्रा.) | 100 | 125 | 125 |
| बुवाई का समय | 5-25 नवंबर | 25 नवंबर-25 दिसंबर | 25 अक्टूबर-15 नवंबर |
| उर्वरक की मात्रा एवं समय | 150:80:60 न.फा.पो. (1/3 न. पूरा फा. एवम् पोटाश बुवाई के समय, 2/3 नत्रजन प्रथम सिंचाई के बाद) | 100:60:40 न.फा.पो. (1/3 न.पूरा फा.एवं पोटाश बुवाई के समय, 2/3 नत्रजन प्रथम सिंचाई के बाद) | 60:40:20 न. फा. पो. (पूरा बुवाई के समय) |
| सिंचाई | प्रथम सिंचाई बुवाई के 21 दिन बाद एवम् आगे आवश्यकता अनुसार | प्रथम सिंचाई बुवाई के 21 दिन बाद एवम् आगे आवश्यकता अनुसार | यदि संभव हो तो एक सिंचाई बुवाई के 30 दिन बाद |
| खरपतवार नियंत्रण | लीडर 33 ग्रा/हैं. बुवाई के 27-35 दिन, टापिक 400 ग्रा./है बुवाई के 27-35 दिन | लीडर 33 ग्रा/हैं. बुवाई के 27-35 दिन, टापिक 400 ग्रा./है बुवाई के 27-35 दिन | - |

## 11.19 सारांश

गेहूँ अन्न की महत्वपूर्ण फसल मानी गई है। भारत में गेहूँ की खेती प्राचीन काल से ही की जा रही हैं किन्तु पैदावार की दृष्टि से 1965 के बाद गेहूँ उत्पादन काल को हरित क्रान्ति के नाम से जाना गया है। भूमि एवं जलवायु की दृष्टि से गेहूँ को सभी मृदाओं में बोया जा सकता है। गेहूँ का पौधा शीतोष्ण जलवायु का पौधा है। इसकी उन्नत किस्मों में पी.बी.डब्लू. 343, राज 3765, एच.आई. 1500, एच. डब्लू. 2004, राज. 4120, एच.आई. 1544, एच.आई. 8498, राज. 4037, जी. डब्लू. 366, बी.एल. 738, वी.एल. 616 आदि है। गेहूँ की बुवाई के लिए 120-125 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर काम में लिया जाता है। गेहूँ की पैदावार के लिऐं नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश खादों के साथ-साथ कम्पोस्ट खाद का प्रयोग भी किया जाता है। गेहूँ की बुवाई लाइनों में कूड विधि द्वारा की जाती है सामान्य परिस्थितियों में मैदानी क्षेत्रो में इसकी औषत उपज 30-45 क्विंटल प्रति हैक्टर तक रहती है।

## 11.20 अभ्यास प्रश्न

प्र. हरित क्रान्ति वर्ष माना जाता है-

(अ) 1947 (ब) 1950

(स) 1965 (द) 1980

प्र. गेहूँ की असिंचित क्षेत्र में बोई जाने वाली किस्म है-

(अ) सोनालिका (ब) सी.306

(स) राज.3765 (द) एच.आई.1544

प्र. मैदानी क्षेत्रों में गेहूँ की बुवाई का उपयुक्त समय है -

(अ) 10 से 25 नवम्बर (ब) 10 से 25 अक्टूबर

(स) 10 से 25 दिसम्बर (द) 1 से 10 दिसम्बर

प्र. मैदानी क्षेत्रों में समय पर बुवाई के लिऐ बीज मात्रा की आवश्यकता पडती है -

(अ) 150 किग्रा. (ब) 100 किग्रा.

(स) 80 किग्रा. (द) 200 किग्रा.

## 11.21 संदर्भ ग्रन्थ


1. सिंह, जे.पी., यादव, राजवीर एवं सिंह, अन्जू महेन्द, कम लागत में अधिक उत्पादन लेने हेतु नवीनतम गेहूँ उत्पादन तकनीक
2. चैहान, डी.एस., शर्मा, आर.के. एवं त्रिपाठी, एस.सी., गेहूँ उत्पादन के लिऐ तकनीको में नई दिशाऐं, प्रमुख रबी फसलों की उन्नत कृषि विधियाँ खण्ड कोटा

# इकाई 12

# चना

**इकाई की रूपरेखा**


12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 पोषण में महत्व
12.3 भारत में चना का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता
12.4 भारत में चने की खेती के मुख्य क्षेत्र
12.5 चने के प्रकार
12.6 उन्नत किस्में
12.7 भूमि का चुनाव
12.8 खेत की तैयारी
12.9 बुआई
12.10 पोषक तत्व प्रबंधन
12.11 जल-प्रबंधन
12.12 खरपतवार नियंत्रण
12.13 शीर्ष शाखाएं तोड़ना; निपिंगद्ध
12.14 पाले से बचाव
12.15 प्रमुख रोग एवं नियंत्रण
12.16 प्रमुख कीट एवं नियंत्रण
12.17 कटाई, मड़ाई एवं भण्डारण-
12.18 सारांश
12.19 बोध - प्रश्न
12.20 संदर्भ ग्रन्थ


## 12.0 उद्देश्य

देश में हो रही जनसंख्या वृद्वि लोगों की बढ़ती हुई क्रय शक्ति एवं बदलते हुए वातावरण में चना उत्पादन में वृद्धि केवल उत्पादकता बढ़ाकर ही प्राप्त की जा सकती है। विभिन्न संसाधनों की कमी के बावजूद उन्नत किस्में, उन्नत कृषि विधियां, कृषि यंत्रों एवं समेकित कीट एवं बीमारियों का प्रबन्धन करके उत्पादकता को बढ़ाना संभव है। चने की उत्पादकता को बढ़ाने में विभिन्न अनुसंधानों के माध्यम से कृषि वैज्ञानिकों ने बहुत सी उन्नत किस्मों, उन्नत कृषि विधियों एवं कृषि यंत्रों का विकास किया है। जिसकी संपूर्ण जानकारी किसानों तक पहुचाना नितान्त आवश्यक है। जो आसानी से ज्यादा से ज्यादा कृषकों द्वारा समझी जा सकें तथा वे उसे अपनाकर अधिक उत्पादन के साथ-साथ अधिक लाभ भी कमा

## 12.1 प्रस्तावना

चने का वानस्पतिक नाम Cicer arietinum (देशी) Cicer kabulinum (काबुली) है। यह लेग्यूमिनेसी कूल का सदस्य है। यह भारत की मुख्य रबी दलहनी फसल है। चने के लगभग 65.25 प्रतिशत क्षेत्रफल में 65.49 प्रतिशत उत्पादन भारत में होता है। विकासशील देशों के लिए यह उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन उपलब्ध कराने का सस्ता साधन है। भारत में लगभग 9.21 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में चना बोया जाता है। इसका उत्पादन 8.22 मिलियन टन रहा है। इसकी प्रति हैक्टेयर उपज 896 किलोग्राम है। जबकि वर्ष 1950-51 में चने की उत्पादकता मात्र 482 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर थी। उत्तरी भारत चने का परम्परागत क्षेत्र रहा है परन्तु आश्चर्यजनक रूप से दक्षिण भारत में चने की खेती का प्रचलन बढ़ा है और लगभग 21 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाने लगा है। यह मुख्यतः जल्दी पकने वाली किस्मों व अगेती बुवाई से संभव हुआ हैं। प्रोटीन के प्रमुख स्त्रोत् के साथ ही टिकाऊ खेती एवं फसल विविधीकरण में चने का महत्वपूर्ण स्थान है इसकी जड़ों में उपस्थित गाठे नत्रजन स्थिरीकरण व यौगिकीकरण करके भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्वि करती हैं, अतः फसल चक्र में चने का महत्वपूर्ण स्थान है। चने की जड़ें भूमि में काफी गहराई तक जाती हैं जिससे मृदा में वायु संचार अच्छी प्रकार से होता है। भारत की अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी होने के कारण चनें की प्रोटीन स्त्रोत के रूप में महत्ता बढ़ जाती हैं। इसका उपयोग विभिन्न रूपों मे जैसे हरी पत्तियों की सब्जी, हरे चने की सब्जी, सूखा दाना तरकारी व दाल के रूप में, भुने चने व सत्तू के रूप में तथा बेसन की नमकीन व मिठाईयों में प्रयोग होता है। इसलिए बिना चने के भारतीय जीवन बेस्वाद माना जाता हैं।चना स्वास्थ्य के लिए अनेक प्रकार से गुणकारी है। इसमें 17 से 21 प्रतिशत प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड, वसा, रेशा, कैल्शियम, लोहा व विटामिन सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसकी पत्तियों में मैलिक व ऑक्जेलिक अम्ल होने के कारण हल्की सी खटास होती है, जो पेट की बीमारी तथा रक्त शुद्धिकरण में सहायक होती है।

## 12.2 पोषण में महत्व

शाकाहारी भोजन में दालों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में भोजन के पोषक गुण के स्त्रोत के रूप में दालों का महत्व विश्व के अन्य देशों की तुलना में अधिक है। चना व्यापक रूप से भोजन व स्वास्थ्य में सराहनीय रहा हैं यह शाकाहारियों के लिए प्रोटीन युक्त दलहनी फसल है। विशेष रूप से चने की दाल में अधिक लाइसिस और कम सल्फर युक्त अमिनो अम्ल पाये जाते हैं। इसलिए चने का हमारे भोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। शाकाहारी बच्चों और नवजात् शिशुओं की माताओं के बीच प्रोटीन कुपोषण उन्मूलन में महतवपूर्ण भूमिका निभाता है।पोषक मान की दृष्टि से चने के 100 ग्राम में औसतन 21.0 ग्रा. प्रोटीन, 4.5 ग्रा. वसा, 63.0 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, 110 मि.ग्रा. केल्शियम, 6.0 मि.ग्रा. लोहा, 860 मि.ग्रा. पोटेशियम, 390 मि.ग्रा. फॉस्फोरस, 0.22 मि.ग्रा राइबोफ्लेविन, 0.34 मि.ग्रा. विटामिन बी तथा 0.138 मि.ग्रा नियासिन पाया जाता है। चने में पाये जाने वाली प्रोटीन में लाईसीन की मात्रा अधिक तथा सल्फर युक्त अमीनो अम्ल कम होते है। इसलिए चने का हमारे भोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। औषधिय रूप में

भी चना एक महत्वपूर्ण फसल है। रक्त में कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम करके हाइपो कोलेस्ट्रोलैमिक गुण रखता है। इसकी पत्तियों में मैलिक तथा आक्जेलिक अम्ल होने के कारण उसमें हल्की सी खटास होती है। जिससे वे स्वादिष्ट लगती है। इसकी पत्तियां आंतों की विकृत्तियों के उपचार में लाभप्रद है। इसके अलावा स्कर्वी रोग में भी अंकुरित चना लाभकारी होता है। चना दुधारू पशुओं, बेलों तथा घोड़ों के लिए दाने के काम आता है। इसका भूसा भी पशु चाव से खाते है। दलहनी फसल होने के कारण यह जड़ों में वायुमण्डलीय नत्रजन स्थिर करती है, जिससे मृदा उर्वरता बढ़ती है। अतः फसल चक्र में चने का महत्वपूर्ण स्थान है।

## 12.3 भारत में चना का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता

| वर्ष | क्षेत्रफल (मि है) | उत्पादन (मि टन) | उत्पादकता (किग्रा/है) |
|---|---|---|---|
| 2005.06 | 6.93 | 5.60 | 808 |
| 2006.07 | 7.63 | 6.33 | 830 |
| 2007.08 | 7.58 | 5.75 | 759 |
| 2008.09 | 7.79 | 7.79 | 885 |
| 2009.10 | 8.21 | 7.48 | 895 |
| 2010.11 | 9.21 | 8.22 | 896 |

**Source :** Agricultural Statistics at a glance 2012-13, Department of Agriculture and Cooperation, Ministry of Agriculture Govt. India New Delhi.

**राजस्थान में चने का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता**

| वर्ष | क्षेत्रफल (मि.है) | उत्पादन (मि टन) | उत्पादकता (किग्रा/है) |
|---|---|---|---|
| 2000.01 | 672.60 | 396.60 | 590 |
| 2001.02 | 969.60 | 735.50 | 759 |
| 2002.03 | 449.70 | 340.60 | 757 |
| 2003.04 | 1117.50 | 707.70 | 633 |
| 2004.05 | 1035.20 | 773.00 | 747 |
| 2005.06 | 1081.90 | 478.90 | 443 |
| 2006.07 | 1010.80 | 872.60 | 836 |
| 2007.08 | 1231.30 | 574.20 | 466 |
| 2008.09 | 1260.009 | 80.00 | 779 |
| 2009.10 | 884.00 | 534.00 | 605 |
| 2010.11 | 1783.27 | 1600.00 | 898 |

**Source :** Vital Agricultural & Rajasthan Agricultural Statistics at a glance Govt. of Rajasthan, Jaipur 20012.2013)

## 12.4 भारत में चने की खेती के मुख्य क्षेत्र

1. मध्य और पश्चिमी क्षेत्र-महाराष्ट्र, गुजरात और मध्यप्रदेश।
2. प्रायद्वीपीय क्षेत्र :- आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडू।
3. पश्चिमोतर क्षेत्र :- पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और जम्मू कश्मीर।
4. पूर्वोत्तर क्षेत्र :- पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, ओडीसा, पश्चिम बंगाल और आसाम।

## 12.5 चने के प्रकार

**चना मुख्यतः दो प्रकार का होता है।**

**देशी चना:** यह चना रंगीन तथा इसके बीज का कवच मोटा होता है। इस चने का रंग भूरा, पीला, हरा तथा काला होता है। बीज प्रायः छोटा कोणीय या इकहरा व इसकी तह खुरदरी होती है। फूल प्रायः गुलाबी रंग के तथा पौधे पर विविध श्रेणी के एन्थोसाइनिन वर्णक पाया जाता है। यद्यपि कुछ देशी चनों में सफेद फूल भी आते है और इसके पौधों के तने पर एन्थोसाइनिन वर्णक भी नहीं पाया जाता है। लगभग 80-85 प्रतिशत भाग में देशी चने की खेती की जाती है। दाल व आटा (बेसन) देशी चने से ही बनाऐ जाते है।

काबुली चना: यह चना पतले बीज कवच युक्त तथा इसका रंग सफेद या बेंगनी रंग का होता है। इसके बीज का आकार मेस के सिर की तरह, सतह समतल, फूलों का रंग सफेद और तनों पर एन्थोसाइनिन वर्णक नहीं पाया जाता है। देशी चने की तुलना में काबुली चने में शर्करा अधिक और रेशा कम होता है। प्रायः काबुली चने का आकार बड़ा होता है। तथा इसका बाजार भाव भी देशी चने की तुलना में अधिक होता है।

## 12.6 उन्नत किस्में:

**देशी चना की किस्में-**

**समाट (जी.एन.जी. 469)-** देशी चने की मध्यम से मोटे दानों वाली यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनों ही क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। गुलाबी रंग के फूलों वाली इस किस्म के 100 दानों का वजन 24-26 ग्राम एवं पौधे की ऊँचाई 55-65 सेन्टीमीटर होती है। इसके पकने की अवधि 120-130 दिन तथा औसत उपज 20-24 क्विंटल प्रति हैक्टेयर सिंचित क्षेत्रों में एवं 16-18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर असिंचित क्षेत्रों में प्राप्त होती है।

**आर.एस.जी. 888 (अनुभव)-** मध्यम दाने वाली यह किस्म भारत के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। 130-135 दिन की पकाव अवधि वाली इस किस्म की औसतन उपज 15-20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसके 100 दानों का वजन 15-16 ग्राम होता है। यह किस्म शुष्क जड़ गलन एवं उखटा रोग प्रतिरोधी है।

जी.एन.जी. 1581 (गणगौर)- मध्यम ऊचाई वाली यह किस्म 151 दिन में पककर तैयार होती है। एवं इसकी औसत उपज 24 क्विंटल प्रति हेक्टर हैं यह किस्म उखटा, एस्कोकाइटा ब्लाईट एवं जड़ गलन रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

**प्रताप चना-1 -** यह देशी चने की पीले दानों वाली वर्षा पोषित क्षेत्रों के लिए अधिक उपज देनी वाली किस्म है। इसके 100 दानों का वजन 19-20 ग्राम है। यह किस्म 90-100 दिन में पकती है एवं 18-20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

**आर.एस.जी-44 -** सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त इस किस्म में 80-85 दिन में फूल आते है तथा पकने की अवधि 145-150 दिन है। 100 दानों का वजन 14.5 ग्राम होता है। उखटा रोग के प्रति मध्यम स्तर की रोधकता वाली इस किस्म का दाना पीले रंग का एवं पैदावार 20-25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**जी.एन.जी. 663 (वरदान) -** मध्यम कद वाली इस किस्म के दाने भूरे गुलाबी रंग के एवं पौधा झाड़ीनुमा होता हैं इसके फूल गुलाबीपन लिये बैंगनी होते हैं। फसल 150 दिन में पक जाती है एवं 20-24 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। रोगरोधी क्षमता युक्त इस किस्म के 100 दानों का वजन 15 ग्राम होता है।

**जे.जी. 11 -** यह 100-110 दिन में पककर तैयार होने वाली नवीन किस्म है। कोणीय आकार के दानें, जिसके 100 दानों का वजन 22 ग्राम होता हैं औसतन उपज 15-18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। यह रोग रोधी किस्म जो सिंचित व असिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**जे.जी.-130 (जवाहर ग्राम 130) -** यह 110 दिन में पककर तैयार होने वाली नवीन किस्म है। पौधा हल्के फैलाव वाला, अधिक शाखाए, गहरे गुलाबी फूल, हल्का बादामी एवं चिकना, बीज जिसके 100 दानों का भार 25 ग्राम होता है। औसत उपज 18-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

**जाकी 9218 :** कम फैलाव वाला पौधा, प्रोफूज शाखायें, पौधा हल्का भूरे रंग का एवं दाने कोणीय आकार के चिकनी सतह वाले होते है, सौ दाने का वजन 20-27 ग्राम, सिंचित एवं असिंचित खेती के लिये उपयुक्त है।

जे.जी. 226: मध्यम ऊंचाई वाली यह किस्म 115 दिन में पककर तैयार होती है। एवं इसके 100 दानों का वजन 20-22 ग्राम होता है। भूरे रंग वाला मध्यम खुरदरा बीज, सौ दानों का वजन 15 ग्राम एवं दाल बनाने के लिये अति उत्तम। पानी की कमी में भी अच्छी उपज प्राप्त होती है।

**राज विजय चना-202:** यह प्रजाति जे.ऐ.के.आई. 9226 ग डी.सी.पी.सी. 20 ग जे.जी. 412 के तिहरे संकरण से विकसित की गई है। यह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र एवं दक्षिणी राजस्थान के लिए चिन्हित की गई है। इस प्रजाति के पौधे मध्यम ऊचाई वाले एवं मध्यम फैलने वाले होते है। बीज कोणिय आकार के एवं चिकनी सतह वाले होते है। यह धान/कपास/सोयाबीन-चना फसल पत्तियों के अन्र्तगत देर से बोये जाने वाली स्थिति के अनुकुल है। इसकी औसत उत्पादकता 20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। एवं पकने की

अवधि 100 से 105 दिन है। यह प्रजाति उखटा प्रतिरोधी एवं कॉलर गलन एवं शुष्क जड़ गलन के प्रति मध्यम रूप से प्रतिरोधी है।

**राज विजय चना-203:** यह प्रजाति आई.सी.सी.वी. 91902 ग आई.सी.सी.वी. 10 ग आई.सी.सी.वी. 89230 के तिहरे संकरण से विकसित की गई है। यह मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र एवं दक्षिणी राजस्थान हेतु चिन्हित की गई है। इस प्रजाति का पौध प्रारूप बोना है। इसके पौधो में फैलने की विशेषता होती है। बीज हल्के भूरे, कोणिय आकार एवं चिकनी सतह वाले होते है। यह प्रजाति सिंचित एवं देर से बोये जाने वाली स्थिति के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत उत्पादकता 19 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है, एवं पकने की अवधि 100 दिन है। यह प्रजाति उखटा प्रतिरोधी एवं शुष्क जड़ गलन के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

**काबुली चना**

**काक-2 -** काबुली चने की सफेद दोनों वाली वर्षापोषित क्षेत्रों के लिए अधिक उपज देने वाली किस्म है तथा इसके 100 दानों का वजन 32-33 ग्राम होता है। यह किस्म 100 से 110 दिन में पककर तैयार होती है, एवं 18-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है।

**जी.एन.जी. 1292-** काबुली चने की यह किस्म राजस्थान के लिए उपयुक्त पायी गई है। एवं इसके पकाने की अवधि 147 दिन और औसत उपज 24 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

**जे.जी.के.-1:** पौधे मध्यम लम्बे, कम फैलने वाली पत्तियां, बड़े सफेद फूल, क्रीम सफेद रंग का सबसे बड़े आकार के बीज वाली यह किस्म 115 दिन में पककर तैयार होती है। एवं इसके 100 दानों का वजन 15-18 ग्राम होता है।

**जे.जी.के.-2:** काबुली चने की जल्दी पकने वाली यह किस्म बड़ी पत्तियों, कम फैलाव वाली, सफेद फूल, आकर्षक फली, सफेद क्रीम रंग के बड़े दानों वाली होती है। इसके सौ दानों का वजन 33-36 ग्राम होता है तथा यह पकने में उत्तम, बहुरोग रोधी, अधिक उपज देने वाली किस्म है।

**जे.जी.के.-3:** काबुली चने की यह किस्म अत्यधिक शाखाओं वाली तथा बड़े व चिकने बीजों युक्त होती है, जिसके सौ दानों का वजन 44 ग्राम होता है।

**आई.सी.सी. वी.-10 (भारती) :** कम फैलाव लिये इसका पौधा सीधा, उखटा, जड़ सड़न प्रतिरोधी व देरी से बोने हेतु उपयुक्त है।

**आई.सी.सी.वी. 32-** काबुली चने की 70-80 सेन्टीमीटर ऊचाई वाली यह किस्म 160-170 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 16-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इस किस्म के फूल सफेद रंग के होते हैं।

**एच. के. 05-169 -** यह प्रजाति एच.के. 92-94 ग एच.के. 1 के संकरण से विकसित की गई है। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल एवं असाम के लिए चिन्हित की गई है। यह चैड़ी पत्ती एवं अधिकाधिक शाखाओं वाला जीन प्रारूप है। इसके पर्ण समूह का रंग हल्का हरा होता है। बीज का आकार बड़ा ;28.4 ग्राम/100 दानों का वजनद्ध एवं रंग सफेद

होता है। यह प्रजाति 125 दिनों में पक जाती है। इसकी उत्पादक क्षमता 16 क्विंटल/हैक्टेयर है। यह प्रजाति उखटा के विरूध प्रतिरोधी से मध्यम प्रतिरोधी है।

## 12.7 भूमि का चुनाव

चना की खेती बलुई दोमट भूमि से लेकर दोमट तथा मटियार भूमि में की जा सकती है। इसकी खेती के लिए वह भूमि जहां जल भराव की समस्या नहीं हो, उपयुक्त मानी जाती है। भूमि में जल निकासी का उपयुक्त प्रबंधन भी सिंचाई जितना ही आवश्यक है। ढेलेदार मिट्टी तथा हल्के ढ़लान वाले खेतों में चने की भरपूर फसल ली जा सकती है।

## 12.8 खेत की तैयारी

चने के लिए भूमि की सतह ढीली और ढेलेदार होनी चाहिए। खेत की मिट्टी बहुत ज्यादा महीन या भुरभुरी नहीं होनी चाहिए और न ही बहुत ज्यादा दबी हुई। जड़ों की समुचितवृद्धि के लिए भूमि की गहरी जुताई करना लाभप्रद होता है। इसके लिए खरीफ की फसल काटने के पश्चात एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर देनी चाहिए। इसके बाद बुआई के लिए खेत को तैयार करते समय 2-3 जुताईयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। बड़े ढेलों को तोड़ने तथा खेत को समतल बनाने के लिए पाटा लगाना चाहिए। खेत की तैयारी के समय अन्तिम जुताई करने से पूर्व 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से मैलाथियान धूल ;चूर्णद्ध भली-भांति मिला देना चाहिए जिससे मिट्टी में मौजूद हानिकारक कीट नष्ट हो जाये तथा फसल को दीमक आदि से बचाया जा सके। जहां तक सम्भव हो क्षारीय एवं उच्च भूमिगत जल वाले खेतों में चने की खेती नहीं करनी चाहिए।

## 12.9 बुआई

**बुआई का समय**

असिंचित अवस्था में चने की बुआई का उचित समय सितम्बर का द्वितीय अथवा तृतीय सप्ताह है। सिंचित अवस्था में चने की बुआई नवम्बर के द्वितीय सप्ताह तक कर देनी चाहिए। चने की खेती, धान की फसल काटने के बाद भी की जाती है, ऐसी स्थिति में बुआई दिसम्बर के मध्य तक अवश्य कर लेनी चाहिए। बुआई में अधिक विलम्ब करने पर पैदावार कम हो जाती है। तथा फसल में चना फली छेदक कीट का प्रकोप भी अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है, अतः अक्टूबर का प्रथम सप्ताह चने की बुआई के लिए सर्वोत्तम होता है।

बुआई क्षेत्रवार संस्तुत रोगरोधी प्रजातियाँ तथा प्रमाणिक बीजों का चुनाव कर उचित मात्रा में प्रयोग करें। खेत पूर्व फसलों के अवशेषों से मुक्त होना चाहिये, इससे भूमिगत फफूंदों का विकास नहीं होगा। बोने से पूर्व बीजों की अंकुरण क्षमता की जांच अवश्य करें। ऐसा करने के लिये 100 बीजों को पानी में आठ घंटे तक भिगो दें। पानी से निकालकर गीले तौलिये या बोरे में ढक कर साधारण कमरे के तापमान पर रखे हैं। 4-5 दिन बाद अंकुरित बीजों की संख्या गिन लें। यदि 90 से अधिक बीज अंकुरित हुये हैं तो अंकुरण क्षमता ठीक है। यदि इससे कम है तो बोने के लिये उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का उपयोग करें या बीज की मात्रा बढ़ा दें।

**बुआई की विधि**

बुआई देशी हल के पीछे लगे पोरे से कूंडों में करनी चाहिए। जहां नमी समुचित है वहां पर बुआई हल के पीछे कूंडों में भी की जा सकती है। सीड ड्रिल से भी बुआई की जा सकती है। भूमि में नमी की जांच के लिए थोड़ी-सी मिट्टी मुट्ठी में लेकर दबानी चाहिए। यदि गोला बन जाए तो समझना चाहिए कि खेत में ज्यादा नमी है। ऐसी स्थिति में खेत में बुआई नहीं करनी चाहिए। यदि बुआई करनी ही पड़े तो पाटा दूसरे दिन तथा हल्का सा ही लगाना चाहिए अन्यथा पौधों का जमाव कम होता है। यदि खेत में नमी कुछ कम हो तो बीज का नमी से अच्छा सम्पर्क बनाने के लिए बुआई गहराई में करनी चाहिए तथा उसके ऊपर पाटा अच्छी तरह लगा देना चाहिए। ऐसा करने से अंकुरण पूरे खेत में अच्छा समान रूप से होता है।चना की अच्छी उपज लेने के लिए खेत में पौधों की समुचित संख्या का होना अत्यं आवश्यक है। साधारणतया पौधों की संख्या 25 से 30 प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से रखी जाती है। इसके लिए पंक्तियों ;कूड़ोंद्ध के बीच की दूरी 30 सेमी. तथा पौधों के मध्य दूरी 10 सेमी. रखी जाती है। असिंचित एवं पिछेती बुआई की दशा में कूंड से कूंड की दूरी 30 सेमी. तथा सिंचित अवस्था में काबुली चने में कूंडों के बीच की दूरी 45 से.मी. रखनी चाहिए।

**बीज दर**

चना के बीज की मात्रा दानों के आकार ;भारद्ध बुआई के समय, ढंग और भूमि की उर्वराशक्ति पर निर्भर करती है। यदि प्रजाति बड़े दाने वाली है तब प्रति हेक्टेयर 80-85 किलोग्राम बीज का उपयोग करना चाहिए। छोटे दाने वाली प्रजातियों का बीज 60-65 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से बोना चाहिए। पछेती बुआई की दशा में बीज की मात्रा 20-25 प्रतिशत अधिक रखनी चाहिए। बड़े आकार की काबुली चने की प्रजातियों में बीज दर 100-120 किलो प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए। यदि बीज में अंकुरण की क्षमता कम है तो बीज की संख्या तद्नुसार बढ़ा देनी चाहिए।

**बीजोपचार**

**(अ) रोग एवं कीट नाशी रसायनों से बीजोपचार :** उखठा एवं जड़ गलन रोग से फसल के बचाव हेतु कार्बेन्डाजिम 0.75 ग्राम + थाइरम 1 ग्राम के मिश्रण से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना चाहिए या ट्राईकोडरमा विरिडी + बीटावैक्स 4:1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचारित करें। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप अधिक होता है, उन खेतों में 20 ई.सी. क्लोरीपायरीफाॅस को पानी में घोलकर प्रति 100 किलोग्राम बीज को उपचारित करके बोना लाभप्रद होता है।

**(ब) जीवाणु संवर्धन ;राइजोबियम (कल्चर) :** से बीजोपचाररू विभिन्न दलहनों के लिए अलग-अलग तरह का राइजोबियम कल्चर होता है। अतः चने के बीजों को उपचारित करने के लिए संस्तुत राइजोबियम कल्चर का ही प्रयोग करना चाहिए। एक पैकेट राइजोबियम कल्चर ;200 ग्रामद्ध 10 किलोग्राम बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। 100 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोल लेना चाहिए। घोल को गर्म करके ठण्डा कर इसमें एक पैकेट राइजोबियम कल्चर को अच्छी तरह डण्डे से चलाकर घोल में मिला देना चाहिए ताकि राइजोबियम बीज की सतह पर चिपक जाए। इस प्रकार राइजोबियम कल्चर से सने हुए बीजों को कुछ देर तक छांव में सुखा लेना चाहिए। जहां तक सम्भव हो बीजोपचार सायंकाल में करें ताकि तेज धूप में

बीजों के सूखने की सम्भावना न रहे। धूप में बीजों को सुखाने से राइजोबियम जीवाणु मर जाते हैं जिससे वांछित लाभ नहीं मिलता है।

**(स) पी.एस.बी. कल्वर ;फास्फोरस घुलनशील (जीवाणु) से बीजोपचाररू :** राइजोबियम कल्चर की भांति ही फास्फोरस घुलनशील जीवाणु ;पी.एस.बी.द्ध कल्चर के पैकेट बाजार या कृषि विश्वविद्यालयों से प्राप्त किये जा सकते हैं। राइजोबियम कल्वर से बीजोपचार की तरह ही पी.एस.बी. कल्वर से बीजोपचार करना चाहिए।

अर्न्तशस्य - बारानी क्षेत्रों केवल चने की फसल लेने की अपेक्षा चना व सरसों या चने व कुसुम की मिलवा खेती लाभदायक है। चने की चार पंक्तियों के बाद दो पंत्तियां अलसी की अर्न्तशस्य करने से चने की एकल फसल से अधिक लाभ प्राप्त होता है। मिलवा खेती में अकेली फसल के मुकाबले फली छेदक कीट का प्रकोप भी कम होता है।

## 12.10 पोषक तत्व प्रबंधन

चने की अच्छी पैदावार के लिए तीन वर्ष में एक बार 8-10 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हैक्टेयर भूमि की तैयारी के समय अच्छी तरह बिखेर कर मिट्टी में मिला देवें। चना एक दलहनी फसल होने के कारण अपनी जड़ों में सहजीवी सूक्ष्म बेक्टरीरिया ;राइजोबियमद्ध की मदद से वायुमण्डल की नत्रजन को जड़ों में संग्रहित कर पौधे को आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराते है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। अतः चने की फसल के लिए अधिक नत्रजन की आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन बेक्टीरिया द्वारा वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण बुवाई के 21 दिन बाद शुरू होता है। प्रारम्भिक अवस्था में पौधे की बढ़वार के लिए नत्रजन की आवश्यकता होती है, इसलिए 20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर की दर से देना लाभकारी होता है। दलहनी फसलों में फॉस्फोरस का प्रयोग करना अति आवश्यक होता है, लेकिन इसका प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। सामान्यतः अच्छी पैदावार के लिए 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर की दर से देना चाहिए। उर्वरकों की पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज के नीचे कूड़ों में डालना चाहिए। दलहनी फसलों में गंधक देने से उपज के साथ साथ गुणवता में सुधार होता है। इसके लिए फसल की फाॅस्फोरस तत्व की पूर्ति सिंगल सुपर फॉस्फेट के प्रयोग के द्वारा की जा सकती है। डी.ए.पी. के साथ 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से सल्फर तत्व देना चाहिए जो कि 250 कि.ग्रा. जिप्सम के द्वारा पूरा किया जा सकता है। जिंक तत्व की कमी वाली भूमि में 15-20 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से आखिरी जुताई के समय भूमि में डालने या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का खड़ी फसल पर छिड़काव करने से पैदावार में वृद्धि होती है। असिंचित क्षे. में पी.एम.ए. ;10 पी.पी.एम.द्ध या साइकोसिल जैव रसायनों का 40-45 दिन की फसल पर छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती हैं असिंचित क्षेत्रों में उपरोक्त उर्वरकों की आधी मात्रा का ही प्रयोग बुवाई के समय करें।बारानी क्षेत्रों में 2 प्रतिशत ;20 ग्राम/ली. पानीद्ध यूरिया के घोल का छिड़काव चने में फूल चमकने की अवस्था ;लगभग 2 प्रतिशत फूल आने पर करने से उपज में वृद्धि होती है। यदि किसी कारण इस अवस्थ पर छिड़काव नहीं कर सकें तो फलियॉ बनते समय करें। फूल आने वाली अवस्था में यूरिया का छिड़काव नहीं करें।

## 12.11 जल-प्रबन्धन

प्रायः चना की खेती असिंचित दशा में की जाती है, परंतु अधिक सूखा होने पर यदि पानी की सुविधा हो तो फली बनते समय एक सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में पहली सिंचाई, बुआई के 45-60 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई आवश्यकतानुसार फलियों में दाना बनते समय की जानी चाहिए। यदि शरदकालीन वर्षा ;मावटद्ध हो जाए तो दूसरी सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फूल आते समय चने की फसल में सिंचाई करने से हानि होती है, अतः फूल आते समय सिंचाई कदापि न करें। सिंचाई बहुत जल्दी करने से वानस्पतिक वृद्धि अधिक हो जाती है, परंतु पैदावार अच्छी नहीं होती है। अतः यदि दो सिंचाईयों के लिए पर्याप्त जल संसाधन उपलब्ध हों तो पहली सिंचाई शाखायें बनते समय ;फूल आने के पहलेद्ध तथा दूसरी सिंचाई 80 प्रतिशत फली बन जाने के बाद ;दाना बनते समयद्ध करने से चना की 25-30 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

## 12.12 खरपतवार नियंत्रण

खेत से खरपतवार निकाल देने या उनके नियंत्रण से भरपूर उपज प्राप्त होती है। खरपतवार नियंत्रण से खेत में डाले गए खाद एवं उर्वरकों का उपयोग चना के पौधों द्वारा होने से उपज में वृद्धि होती है तथा पौधों में समुचित मात्रा में प्रकाश एवं वायु संचार होता है। खरपतवार नियंत्रण की विभिन्न विधियाँ निम्न हैं:

**(अ) कर्षण क्रियाएं :** बुआई के 30-35 दिन बाद पहली निराई एवं गुड़ाई कर खरपतवार नियंत्रण करना चाहिए तथा दूसरी निराई-गुड़ाई 60-70 दिन के बाद करनी चाहिए।

**(ब) खरपतवारनाशी रसायन :** पेन्डीमेथालिन 1.00 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के तुरंत बाद ;बुआई के 72 घंटों के अन्दरद्ध छिड़काव करने से मौसमी खरपतवार नष्ट हो जाते हैं या फिर उगने के बाद मर जाते हैं। खेत की ऊपरी सतह में नमी होने पर खरपतवारनाशी रसायन प्रभावशाली होता है।

## 12.13 शीर्ष शाखाएं तोड़ना ;निपिंगद्ध

जब चना के पौधे लगभग 20-25 से.मी. के हो अथवा पौधों में फूल आने या फली बनने से पहले की अवस्था हो तब शाखाओं के ऊपरी भाग को तोड़ देना चाहिए, ऐसा करने से चने के पौधों में शाखाएं अधिक निकलती है, फलस्वरूप उपज में वृद्धि होती है। शीर्ष शाखाएं तोड़ने की क्रिया असिंचित क्षेत्रों में नहीं की जाती है, क्योंकि अत्यधिक शाखाओं और पत्तियों के होने से वाष्पीकरण ;वाष्पोसर्जनद्ध बढ़ जाता है, जिससे भूमि में नमी की कमी हो जाती है तथा फसल को सूखे की स्थिति का सामना करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन कम हो जाता है।

## 12.14 पाले से बचाव

दिसम्बर से फरवरी मार्च तक पाला पडने की संभावना अधिक रहती है। अतः इस समय यदि आवश्यकता हो तो बचाव हेतु 1000 लीटर पानी में 1 लीटर गंधक का तेजाब मिलाकर एक हेक्टेयर में स्प्रेयर द्वारा पौधों पर अच्छी तरह छिड़काव करें एवं संभावित पाला पड़ने की अवधि

में इस छिड़काव को 10 दिन के अंतराल पर दोहराते रहना चाहिए। पाला पड़ने की संभावना हो तब एक हल्की सिंचाई कर दें। पाला पड़ने की आशंका वाली रात्री को धुआं करें।

## 12.15 प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

1. **चने का स्क्लेरॉशियल रॉट या कॉलर रॉट रोग :-** चने की फसल में इस रोग का बहुत अधिक प्रकोप पाया जाता है। यह रोग मृदा जनित फफूंद स्क्लेरोशियम रोल्फसाई से उत्पन्न होता है। सामान्यतः धान या खरीफ की अन्य फसलों के बाद जिन खेतों में चना लगाया जाता है उन खेतों में यह रोग अधिक फैलता है।

**लक्षण:** इस रोग के लक्षण बुआई के दो सप्ताह से लेकर लगभग छः सप्ताह तक दिखाई पड़ते है। इस रोग के कारण पत्तियां पीली पड़ने लगती है और धीरे धीरे पूरा पौधा सूखकर मर जाता है। रागी पौधे के इस संक्रमित भाग पर कपास के समान रेशेदार रचना ;फफूंद के कवकजालद्ध दिखाई पड़ती है व कहीं-कहीं इन ग्रसित भागों पर राई के दाने के समान फफूंद के स्कलेरोशिय भी दिखाई देते हैं। नये व छोटे पौधों में रोग आक्रमण से वे नीचे गिर जाते हैं जबकि बड़े पौधों में संक्रमण होने पर वे गिरते नहीं हैं बल्कि वहीं के वहीं सूखकर मर जाते हैं।

**नियंत्रण:**

- जहां तक हो सके पिछली फसल के बिना सड़े-गले अवशेष खेत में नहीं छोड़ने चाहिए।
- बुआई और अंकुरण के समय मृदा में अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।
- मई-जून में खेत को गहरा जोतकर छोड़ देना चहिए।
- दीर्घकालिक ;तीन-चार वर्षद्ध फसल चक्र अपनाने से इस रोग को कम किया जा सकता है।
- खेत में गोबर की खाद 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाने से इस रोग के बीजाणु कम हो जाते हैं।
- बुआई से पहले बीज का उपचार अवश्य करें। बीटावेक्स कवकनाशी 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज का दर से या वीटावेक्स कवकनाशी और ट्राईकोडरमा ;(1:4) के अनुपात में मिलाकर प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें।

2. चने का उखटा रोग:- यह रोग चने में बीज तथा मृदाजनित फफूंद फ्यूज़ेरियम ऑक्सीस्पोरियम स्पीसीज साइसेरी से होता है। इस रोग के लक्षण फसल की किसी भी अवस्था में देखे जा सकते हैं। सामान्यतः यह रोग 10 से 15 प्रतिशत तक उपज में कमी करता है। रोगग्रस्त पौधों से प्राप्त बीजों को बुवाई के काम में लेने पर भी यह रोग फैलता है।

**लक्षण:** इस रोग के लक्षण तीन सप्ताह से लेकर फसल पकने की अवस्था तक दिखाई देते हैं। रोग की शुरूआत खेत के कुछ भागों में पौधों में पीलापन दिखाई देने से होती है। इस रोग के लक्षण प्रारंभिक अवस्था में पौधों के ऊपरी भाग में दिखाई देते हैं। पौधे की ऊपर की पत्तियाँ मुरझा जाती है लेकिन एक -दो दिन के भीतर ग्रसित पौधे की पूरी पत्तियाँ पहले पीली व बाद में भूरी होकर सूख जाती है। पौधों का मिट्टी में पर्याप्त नमी के रहते हुए भी सूखना, उखटा रोग का प्रमुख लक्षण है। रोगग्रस्त पौधों को पूरी तरह सूखने से पहले, उखाड़कर देखने व बाहरी सतह पर किसी प्रकार की सड़न, सूखना या जड़ों की रंगहीनता दिखाई नहीं देती है, किन्तु तने के नीचे जड़

की ओर मध्य से चीरने पर गहरे भूरे या काले रंग की धारियां दिखाई देती हैं। वास्तव में ये धारियां जड़ों के आंतरिक भागों में फफूंद के कवक जाल के कारण बनती है। जिससे पौधों में पानी व पोषक तत्वों के जड़ से पत्तियों की ओर जाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है इस कारण पौधे पीले पड़ते है तथा जैसे ही पूर्ण अवरोध हो जाता है, पौधे सूखकर मर जाते हैं।

**नियंत्रण**

- जहाँ तक सम्भव हो चने की बुआई अक्टूबर माह के अन्त में या नवम्बर माह के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिए। गर्मी के मौसम ; मई-जूनद्ध में खेत की गहरी जुताई करनी
- चाहिए। ऐसा करने से भूमि में उपस्थित कवक के बीजाणु तेज धूप के सीधे सम्पर्क में
- आ जाते हैं और तापमान अधिक होने पर मर जाते हैं।
- बुआई से पहले खेत तैयार करते समय खेत में 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद डाली जाए तो उखटा रोग में कमी आ जाती है।
- वीटावेक्स फफूंदनाशी की 1 ग्राम मात्रा को 4 ग्राम ट्राईकोडरमा के साथ मिलाकर 1 किलोग्राम बीज का उपचार करना चाहिए।
- ट्राईकोडरमा फफूंदी उखटा रोग उत्पन्न करने वाली फफूंद को कम करके अन्ततः मार देती है।
- चने की उखटा रोगरोधी प्रजातियाँ जैसे जे जी 315, जे जी 74, जे जी 63, जे जी के 2, विशाल, विजय, काक 2 ; काबुलीद्ध, जे.जी. 11, आईसीसीवी 10, आदि उगानी चाहिए।

यदि सम्भव हो तो उन खेतों में जहां मिश्रित खेती करने से भी उखटा रोग के प्रकोप में कमी आ जाती है।

3. एस्कोकाइटा अंगमारी रोगः- यह रोग एक्कोकाइटा रैबेआई नामक फफूंद से उत्पन्न होता है। यह रोग बीजजनित व मृदाजनित है। अधिकांशतः यह रोग चने में फल तथा दाना भरने की अवस्था में प्रकोप करता है। जिससे उपज की 50 प्रतिशत तक क्षति हो जाती है।

**लक्षण:** रोग के आरंभ में सर्वप्रथम पत्तियों पर हल्के पीले से गोल धब्बे बनते हैं। शीघ्र ही शाखाओं व फल्लियों पर भी अनेक धब्बे बन जाते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये धब्बे आकार व संख्या में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं व पत्तियाँ और पौधें झुलसे हुए दिखाई देने लगते हैं। पौधे रोग से संक्रमित होने के पश्चात सूखने लगते हैं। यह रोग बीज द्वारा मृदा व खेत में उपस्थित फसल अवशेषों में आगामी फसल तक सुरक्षित रहता है।

**नियंत्रण:-**

- एक ही खेत में लगातार कई वर्षों तक चने की फसल को नहीं बोना चाहिए।
- गर्मी में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई कर देनी चाहिए। जिससे
- मृदाजनित प्राथमिक संक्रमण का स्त्रोत नष्ट हो जाये।
- बीजों को बोने से पूर्व फफूंदनाशी दवा थायरम या मेन्कोजेब से 2.5 से 3.0 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए ताकि बीज जनित प्राथमिक संक्रमण का स्त्रोत नष्ट हो जाये।
- रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही

- ताम्रयुक्त फफूंदनाशक 3.0 ग्राम दवा प्रति लीटर की दर से अथवा मेंकाजेब का 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की घोल बनाकर 12-15 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।

4. **शुष्क-मूल विगलन ; (ड्राई रूट रॉट) -** यह एक मृदा जनित रोग है। इस रोग को उत्पन्न करने वाली कवक राइजोक्टोनिया बटाटीकोला के पौधों में संक्रमण से यह रोग उत्पन्न होता है। बहुधा यह रोग पौधों में फूल आने और फलियां बनते समय लगता है।

**लक्षण:** रोगी पौधों की पत्तियाँ तथा तने, सूखे हुए भूसे के रंग के हो जाते हैं। जड़ें अविकसित तथा काली होकर सड़ने लगती है। रोग ग्रसित पौधों की जड़ें सूखकर आसानी से टूट जाती है और केवल आंशिक जड़ें रह जाती हैं या जड़ें पूर्णरूप से समाप्त हो जाती है। जड़ों के दिखाई देने वाले भागों और तनों के आन्तरिक भाग पर छोटे काले रंग के कवक के स्कलेरोशिया नामक बीजाणु देखे जा सकते हैं। वातावरण का तापमान जब 30 डिग्री सेन्टीग्रेड के आस-पास हो और मृदा में नमी की मात्रा कम हो,तब यह रोग अधिक फैलता है।

**नियंत्रण**

- फसल को शुष्क एवं गर्मी के वातावरण से बचाने के लिए बुआई समय से करनी चाहिए।
- मई-जून में खेत को गहरा जोतकर छोड़ देने से कवक के बीजाणु कम हो जाते हैं।
- बीजों को थायरम कवकनाशी से 3 ग्राम प्रतिकिलो बीज की दर से या 1 ग्राम वीटावेक्स कवकनाशी और ट्राईकोडरमा प्रतिकिलो बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

5. **भूरा गलन रोग (बोटरिटिस ग्रे मोल्ड) :** यह बोटरिटिस सिनेरिया नामक कवक द्वारा फैलता है। यह बीमारी उत्तरी पश्चिमी भारत की मुख्य बीमारी है।

**लक्षण:** पत्तियाँ पीली पड़कर झड़ जाती है। नमी लिये हुये धब्बे, मुख्य कलिकाओं की सड़न एवं भूरे रंग की कवक लग जाना इस रोग के मुख्य लक्षण है। इस बीमारी से पुष्प गिर जाते हैं और फलियां भी कम बनती है, अंततः उपज पर प्रभाव पड़ता है।

**नियंत्रणः**

- रोग रोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 45-60 से.मी. रखें ताकि धूप नीचे जमीन तक पहुँच सके।
- अन्तः फसल में अलसी को चने के बीच में बोयें।
- केप्टान/कारबेन्डाजिम/मेन्कोजेब के 2-3 छिड़काव रोग दिखने पर पन्द्रह दिन के अंतराल पर करने से रोग का उचित प्रबंधन हो जाता है।

## 12.16 प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

**फली छेदक :** हैलीकोवरपा आरमीजेरा नामक कीट इसके लिये उत्तरदायी होता है। सभी चना उगाने वाले क्षेत्रों में इस कीट का प्रकोप होता है। अत्याधिक प्रभावित अवस्था में ये समस्त फलियों को छेद कर दाने को चट कर जाता है। लगभग 20-30 प्रतिशत तक उपज में इस कीट द्वारा हानि होती है।

**जीवन चक्र:** मादा एक मिली. लीटर लम्बे अण्डे मुख्य रूप से पत्तियों पर, पुष्पों पर, अविकसित फलियों पर तथा तने पर देती है। लार्वा हरा, भूरा, पीला या गुलाबी रंग का धारीदार होता है। लार्वी प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों को खाता है तथा विकसित अवस्था में फूलों एव फलियों को भी खाना प्रारम्भ कर देता है। तीसरी से पांचवीं अवस्था के लार्वी फली में छेदकर दाने को खाना प्रारम्भ कर देते हे।

इस कीट के अनेक संस्तुत कीट रसायनों के प्रति अवरोधकता उत्पन्न कर ली है। जिससे कीटनाशी रसायनों का चना फलीभेदक पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव होता है। सामयिक सस्य क्रियायें, अवरोधी प्रजातियों का चुनाव, जैविक नियन्त्रण तथा कीट नियंत्रण रसायनों के प्रयोग से इस कीट का नियन्त्रण किया जा सकता है। इसके नियंत्रण व प्रबंधन का प्रभावशाली उपाय समेकित कीट प्रबंधन है। समेकित कीट प्रबंधन ऐसे होने चाहिए जो वातावरण का प्रदूषण से बचाव करें, लागत खर्च में कमी करें तथा अन्य कीट नियंत्रण उपायों के साथ तालमेल कर सकें।

**समेकित कीट प्रबंधन -**

समेकित कीट प्रबंधन, फसल उत्पादन एवं फसल सुरक्षा का मिला-जुला तंत्र है, जिससे सावधानीपूर्वक हानिकारक कीटों की निगरानी एवं उनके प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण की प्रक्रियाओं पर ध्यान दिया जाता है। यद्यपि चने में फली छेदक प्रतिरोधी किस्में प्राप्त नहीं है अतः मध्यम प्रतिरोधी किस्में जैसे आई.सी.सी.वी.-10, विजय इत्यादि की बुवाई करें।सयद्यपि समय पर कीटनाशी का छिड़काव कर दिया जाये तो फली छेदक का प्रबंधन किया जा सकता है। फिर भी समन्वित कीट प्रबंधन तकनीकी का उपयोग किया जाये तो उचित रहेगा।

**निगरानी**

- यौन आकर्षण जाल ;सेक्स फेरोमोन ट्रैपद्ध इसका प्रयोग कीट का प्रकोप बढ़ने से पहले चेतावनी के रूप में करते हैं। जब नर कीटों की संख्या प्रति रात्रि प्रति ट्रैप में 4-5 तक पहुंचने लगे तो समझना चाहिए कि अब कीट न्यिंत्रण जरूरी है। सेक्स फेरोमोन ट्रैप को चना के खेत में लगा दिया जाता है। इसमें उपलब्ध रसायन ;सेप्टाद्ध की ओर कीट आकर्षित होते हैं और विशेष रूप से बनी कीप ;फनलद्ध में फिसलकर नीचे लगी पॉलीथीन या अन्य संरचना में एकत्र हो जाते हैं।
- खड़ी फ की निगरानी भी नियमित रूप से करनी चाहिए। जब 1-1.5 सूंड़ी एक मीटर लम्बी प्रति पंक्ति या प्रति 10 पौधों में मिलने लगे तो तुरन्त आवश्यक फसल सुरक्षा उपाय अपनाने चाहिए। सूडियों की जाँच के लिए पौधे के नीचे सफेद कपड़ा, कागज अथवा पॉलीथीन डालकर पौधों को झटककर झाड़ने से सूंड़ी की संख्या को गिना जा सकता है।

**कर्षण क्रियाऐं:**

- गर्मी में गहरी जुताई करें ताकि पिछली फसल के हानिकारक कीट के प्यूपा, अण्डे आदि नष्ट हो जाये।
- उचित फसल चक्र अपनायें। सबुवाई से पूर्व बीजोपचार अवश्य करें।
- बुवाई निश्चित समय पर ही करें।

- फसल को खरपतवारों से मुक्त रखें।
- पौषक तत्वों एवं सिंचाई जल का समुचित एवं समय पर ही उपयोग करें।

**यान्त्रिक नियंत्रण :**

- T आकार की 40-50 खपच्चियां प्रति हैक्टर की दर से खेत में लगायें।
- प्रकाश पाश का प्रयोग करें। फली छेदक के व्यस्क को प्रकाश पाश की सहायता से नष्ट करें।
- फली छेदक के नर पंतंगों को पांच लैगिक पारा प्रति हैक्टर लगा कर नष्ट किया जा सकता है। तीन सप्ताह के अंतराल पर पारा के ल्यूर ; सुगन्धद्ध को बदलने की आवश्यकता रहती है।

समय समय पर कीट के अण्डे, लटे, व्यस्क तथा रोग ग्रसित पौधों या उनके नाग को इकट्ठा कर न करें।

**जैविक क्रियाऐं :**

- जैव रसायननाशी जैसे बेसिलस थूररिनजेन्सिस ;बी.टी.द्ध एन.पी.वी., तथा मेटराइजियम एनी सोपली मानव दृष्टि से उपयुक्त जीव रसायननाशी है। इनके प्रयोग से फली छेदक का प्रबंधन सम्भव है।
- एन.पी.वी. 250 एल.ई. 125 मि.ली. हैक्टर की दर से जब अण्डों की अथवा लार्वा की संख्या आर्थिक परिसीमा से अधिक हो तो प्रयोग करें।
- नीम बीज ;निबोलीद्ध का पाउडर से तैयार जलीय अर्क ;लगभग 15 किलो निबोंली पाउडर प्रति हैक्टर अंकुरण के 15 दिन पश्चात् छिड़काव से फली छेदक का उत्तम प्रबंधन किया जा सकता है।

**रसायनिक क्रियाऐं:**

- अगर उपरोक्त क्रियाओं से भी फली छेदक का नियंत्रण सम्भव न हो तो अपेक्षाकृत सुरक्षित कीटनाशक रसायनों का प्रयोग करना चाहिये।
- एसीफेट 75 एस.पी. का 500 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से बुवाई के 20-25 एवं 40-45 दिन बाद छिड़काव करें।
- इण्डोक्साकार्ब/ 70 मि.ली. ए.आई. प्रति हैक्टर या स्पाइनोसेड/ 45 मि.ली. ए.आई. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव फूल आने से पूर्व करें। आवश्यकतानुसार दूसरा छिड़काव दोहरायें।

**सावधानी**

चना फलीभेदक की सूंडी प्रथम या द्वितीय अवस्था में हो तभी नियंत्रण करना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है जब सूड़ी तीसरी या चैथी अवस्था में पहुंच जाती है और बहुत अधिक संख्या में खेतों में होती है तब कृषकों का ध्यान उनके नियंत्रण की ओर जाता है। बड़ी सूंड़ी को नियंत्रित करना अपेक्षाकृत दुष्कर हो जाता है क्योंकि छोटी सूंड़ी की तुलना में बड़ी सूंड़ी में कीटनाशी अवरोधिता अधिक होती है। इसके साथ-साथ मरने से पूर्व वह फसल को काफी नुकसान भी कर चुकी होती है, इसलिए फसल की निगरानी करते रहना चाहिए और प्रारंभिक अवस्था में

जैसे ही 1-1.5 सूंड़ी प्रति मीटर की फसल की पंक्ति या 10 पौधों में मिले तो उनका नियंत्रण करना चाहिए।

**समेकिट कीट प्रबंधन के लाभ**

समेकित कीट प्रबंधन से फसल की उपज एवं पर्यावरण दोनों को ही अच्छा बनाये रखा जा सकता है। इसके कुछ लाभों को नीचे बताया जा रहा है:

1. पर्यावरण शुद्यता बनाये रखता है। हवा, पानी व मिट्टी को प्रदूषित होने से बचाता है।
2. फसल के लागत खर्च को कम करता है।
3. रासायनिक कीटनाशियों पर निर्भरता को कम कर जैविक नियंत्रण अथवा हानि रहित विधियों को बढ़ावा देता है।
4. पारम्परिक एवं स्थानीय ज्ञान का समावेश एकीकृत कीट नियंत्रण को अधिक सरल एवं ग्राह्य बनाता है।
5. कीटनाशकों के दुष्प्रभावों को कम करके सुरक्षित व टिकाऊ खेती को बढ़ावा देता है।
6. कीट नियंत्रण के स्थान पर ''कीट प्रबंधन'' के महत्व को उजागर कर कृषक समाज को लाभान्वित करता है।

**कटवर्म, दीमक एवं वायर वर्म -** ये तीनों प्रकार के कीट फसल की आरम्भिक अवस्था में हानि पहुचाते है। इनके प्रबंधन हेतु भूमि उपचार करना आवश्यकता है।

- कटवर्म की लटें गहरे भूरे रंग की एक से डेढ़ इंच लम्बी तथा एक चैथाई से एक तिहाई इंच मोटी होती है जो ढेलों के नीचे छिपी रहती है और रात को बाहर कर पौधों को भूमि की सतह के पास से काट देती है। छूने पर ये लटे गोल घुण्डी बनकर पड़ जाती है। इनकी रोकथाम हेतु क्यूनोफलॉस 1.5% चूर्ण 25 किलो प्रति है. की दर से आखिरी जुताई के पूर्व भुरक कर मिट्टी में मिलायें।
- भूमि उपचार न हो पाये तो फसल पर कटवर्म का प्रभाव दिखाई देते ही उपरोक्त चूर्ण का भुरकाव कर कीट प्रकोप से बचा जा सकता है।
- दीमक की रोकथाम हेतु 100 किलो बीज में 800 मि.ली. लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. मिलाकर बीज को उपचारित करें।
- खड़ी फसल में दीमक लगने पर 4 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी.प्रति हैक्टर की दर से सिंचाई के समय दें।

## 12.17 कटाई, मड़ाई एवं भण्डारण.

चने की फसल की कटाई विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु, तापमान, आर्द्रता एवं दानों में नमी के अनुसार विभिन्न समयों पर होती है। सामान्य रूप से जब चने के पौधों से पत्तियां झड़ जाती हैं या पीली अथवा हल्की भूरी हो जाती है, फसल की कटाई कर ली जानी चाहिये। फली से दाना निकालकर यदि दांत से काटा जाए और कट की आवाज आए, तब समझना चाहिए कि चने की फसल कटाई के लिए तैयार है। फसल के अधिक पककर सूख जाने से कटाई के समय फलियां टूटकर खेत में गिरने लगती है, जिससे काफी नुकसान होता है। समय से पहले कटाई करने से अधिक आर्द्रता की स्थिति में रोग लग जाते हैं और अधिक देर से कटाई करने पर कम आर्द्रता

की स्थिति में अंकुरण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है।काटी गयी फसल को एक स्थान पर इकट्ठा करके खलिहान में 4-5 दिनों तक सुखाकर मड़ाई की जाती है। मड़ाई थ्रेसर से या फिर बैलों या ट्रैक्टर को पौधों के ऊपर चलाकर की जाती है। ध्यान रहें कि कटाई व गहाई के समय कम से कम बीजों को यांत्रिक क्षति हो। टूटे-फुटे, सिकुड़े दाने वाले रोग ग्रसित बीज व खरपतवार तथा अन्य किस्मों के बीजों की छटाई कर देनी चाहिये, इससे बीजों की गुणवत्ता बनी रहती है। भूसे और दाने को पंखों या प्राकृतिक हवा से अलग कर लिया जाता है और दानों को बोरों में भर दिया जाता है।भण्डारण से पूर्व बीजों को तिरपाल में फैलाकर सुखाना चाहिये। भण्डारण के लिए चना के दानों में लगभग 10-12 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। अधिक नमी होने पर दानों को अच्छी तरह सुखाकर रखना चाहिए। घुन से चने को काफी क्षति पहुंचती है अतः बन्द गोदामों या कुठलों में चने का भण्डारण करना चाहिए। साबुतदानों की अपेक्षा दाल बनाकर भण्डारण करने पर घुन से क्षति कम होती है, अतः इसे साफ सुथरें नमी रहित भण्डारण गृह में जूट की बोरियाँ या लोहे की टंकियों में भरकर रखना चाहिये।

**घुन (कोलेसोब्रूकस चाइनेन्सिस) का नियंत्रण :** चने का भण्डारण करते समय नमी पर ध्यान देना चाहिए। दानों को सुखाकर उनकी नमी को 10-12 प्रतिशत कर देना चाहिए। ऐसा न करने पर चने के दानों को घुन से नुकसान होता है। कभी-कभी यह भण्डार में रखे समस्त भण्डार को खराब कर देता है। प्रायः देखा गया है कि घुन का प्रकोप देशी की अपेक्षा काबुली चने में अधिक होता है।

भण्डारण में चने को घुन के प्रकोप से बचाने के लिए निम्नांकित उपाय करने चाहिए:

1. दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाकर ही भण्डार गृह में रखना चाहिए।
2. मोमिया के अस्तर लगे बोरों तथा आधुनिक भण्डारण संरचनाओं का प्रयोग करना चाहिए।
3. दानों को खाद्य तेल जैसे सरसों, महुआ या नारियल के तेल से 8-10 ग्राम तेल प्रति किलोग्राम दाना की दर से उपचारित कर रखने से घुन का प्रकोप कम होता है।
4. बन्द भण्डारण संरचनाओं में पारद टिकरी का प्रयोग करें। 2 टिकिया प्रति 10 किलोग्राम बीज के हिसाब से रखने पर घुन से होने वाली हानि से बचा जा सकता है।
5. दो टन से अधिक मात्रा में एक साथ भण्डारण के लिए ई.डी.बी. एम्प्यूल का प्रयोग करना चाहिए। उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर चने की अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

## 12.18 सारांश

चने के भावों में उछाल आने से इसे नकदी फसल के रूप में उगाने की प्रबल संभावनाएं बनी है। चने की खेती में उत्पादन की अनिश्चितता मुख्य बाधा रही है। तथा इसे बारानी क्षेत्र में उगाने के कारण इसका क्षेत्रफल मानसून के आखिरी दौर की वर्षा पर निर्भर करता है। संरक्षित नमी में कमी, फली छेदक कीट, झुलसा व उखटा रोग ने इसे जोखिम भरी फसल बना दिया है। किन्तु सतत् अनुसंधान से इन सभी समस्याओं का कुछ हद तक निदान ढूँढ़ लिया गया है।वर्तमान दशक में अच्छे भाव व उपयुक्त किस्मों की उपलब्धता से प्रगतिशील किसानों की रूचि काबुली चने के उत्पादन में जागी है। अगर किसान बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए उचित किस्मों का चुनाव कर वैज्ञानिक पद्वति से चने की खेती करें तो कम लागत में अधिक मुनाफा

कमा सकते हैं। प्रदेश में अधिकतर देशी चना उगाया जाता है किन्तु काबुली ; सफेद चनाद्ध चने के उत्पादन पर अब अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। दोनों किस्मों के चना उगाने की परिस्थितियां लगभग एक जैसी हैं किन्तु काबुली चने की फसल में देशी चना की अपेक्षा बीमारियां, कीट एवं सूखे का प्रभाव अधिक पड़ता है। उचित प्रजातियाँ, उत्पादन तकनीक एवं फसल सुरक्षा से सम्बन्धित पहलुओं का समुचित प्रयोग कर उत्पादन के साथ उत्पादकता को भी बढ़ाया जा सकता है।

## 12.19 बोध - प्रश्न

उत्तर

5. भारत की मुख्य रबी दलहनी फसल है।
   (अ) चना (ब) अरहर (स) उडद (द) मटर **(अ)**
6. निपिंग किस फसल मंे करते है।
   (अ) गन्ना (ब) अरहर (स) उडद (द) चना **(द)**
7. काबुली चने का वानस्पतिक नाम है।
   (अ) Cicer arietinum (ब) Cicer kabalinum
   (स) Phaseolus (द) Pisum sativam
8. छना भण्डारण में प्रकोप होता है।
   (अ) कटवर्म (ब) फली छेदक (स) उकटा (द) घुन का **(द)**
9. चने के उखटा रोग का कारक है।
   (अ) स्क्लेरोशियम रोल्फसाई (ब) एक्कोकाइटा रैबेआई
   (स) फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरियम (द) बोटरिटिस सिनेरिया **(स)**

## 12.20 संदर्भ ग्रन्थ


9. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ
10. सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा ग्प्, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर: पेज 82-135.
11. Reddy, T.Y. and Reddy , G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi. P. 110.154
12. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 13

# गन्ना

**इकाई की रूपरेखा**


13.0 उद्देष्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 वानस्पतिक वर्गीकरण
13.3 महत्व एवं उपयोग
13.4 उत्पति एवं इतिहास
13.5 जलवायु
13.6 भूमि की तैयारी
13.7 बीज व बीज की तैयारी
13.8 गन्ने की उन्नत जातियां
13.9 बीजोपचार
13.10 बीज के लिए प्रयोग किया जाने वाला गन्ने का भाग
13.11 गन्ने की बुआई
13.12 खाद की मात्रा
13.13 सिंचाई
13.14 निकाई गुड़ाई
13.15 गन्ने की सफल सहफसली खेती
13.16 फसल की कटाई
13.17 उपज
13.18 गन्ने की पेड़ी
13.19 गन्ने के हानिकारक कीट - पतंगे एवं उनकी रोकथाम
13.20 गन्ने की बीमारी एवं उनकी रोकथाम
13.21 सारांश
13.22 बोध प्रश्न
13.23 संदर्भ ग्रंथ


## 13.0 उद्देष्य

- इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -
- गन्ना उत्पादन की उन्नत तकनिकी ज्ञात कर पाऐंगें।
- गन्ने की जलवायु, भूमि, बुआई, तकनीकी आदि।
- गन्ने में खाद की मात्रा, सफल सहफहमी खेती।

- गन्ने के कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

## 13.1 प्रस्तावना

भारत में गन्ने की खेती आदिकाल से की जा रही है किन्तु 20 वीं शताब्दी में गन्ने की पहचान एक प्रमुख नकदी फसल के रूप् में की गई। भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में इसका विशेष योगदान है। इस समय देश के लगभग 18 प्रदेशों में 42 लाख हैक्टर कृषि भू-भाग पर औसतन 70 टन प्रति हैक्टर उपज के साथ गन्ने की बुआई बंसतकाल में आर्द्रता जमाव और बढ़वार के अनुकूल की जाती है।पिछले दशक में गन्ना क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पदकता की संयुक्त वृद्धि दर क्रमशः 1.08, 2.90 और 1.08 प्रतिशत रही है और अन्य प्रमुख खाद्य फसलों जैसे गेहूं (1.96), धान (1.21) और मक्का (1.44) की अपेक्षा वृद्धि दर बहुत कम (1.08प्रतिशत) रही। यह अन्य देशों जैसे ब्राजील व आस्ट्रेलिया से कम है। इसे बढ़ाने के लिए गन्ना उत्पादन की तकनीकी में अपेक्षाकृत सुधार तथा किसनों द्वारा उनको अपनाये जाने हेतु सार्थक प्रयासों की नितांत आवश्यकता है। प्रति ईकाई क्षेत्रफल से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत सुधरी और परिष्कृत तकनीकों/विधियों को समावेशित किया जाना आधुनिक युग की आवश्यकता है। भारत में गन्ने की फसल 3 करोड़ 62 लाख हैक्टेयर भूमि पर की जाती है। जिसका 40-45 प्रतिशत क्षेत्रफल उत्तर प्रदेश में आता है।

## 13.2 वानस्पतिक वर्गीकरण

वानस्पतिक नाम - सैकरम ओफीसीनेम (Saccharum officinarum L.)

कुल - आफीसीनेम 2n=8 (Granmineae)

बारबेरी 2n=82

साईनेन्सिस

गन्ने को कृषि प्रजातियों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है जिसका तुलनात्मक अध्ययन निम्नवत् है -

| **आधार** | **Saccharum officinarum** | **Saccharum sinesis** | **Saccharum barberi** |
|---|---|---|---|
| तने की संरचना | मोटा, रसीला, चूसने के लिए उपयुक्त, उच्च शर्करा युक्त | लम्बे तथा पतले तने, चैड़ी पत्तियां कम शर्करायुक्त, शीघ्र परिवक्वता लम्बे इन्टरनोड, उभरी गांठों युक्त | छोटे तथा पतले तने, पतली पत्तियां मध्यम शर्करायुक्त, शीघ्र परिपक्वता |
| उत्पति का स्थान | न्यू ग्यूनिया | उत्तर पूर्वी | उत्तर पूर्वी |
| कर्षण क्षेत्र | उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र | रोग के प्रति सहनशील जल मग्नता | |
| रोग रोधित संग्रहनशीलता | कण्डुओं प्रतिरोधी किन्तु लाल तना | रोग रोधी, जल मग्नता झलने की क्षमता | रोग रोधी, जल मग्नता सहिष्णु |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | विगलन के प्रति संग्रहणशील | | |
| उपज क्षमता | अधिक | मध्यम | कम |
| उपनाम | लाल गन्ना | नरगोरी, मून्गो | सरेथा, सुनाविले |

**Saccharum sinesis** तथा **Saccharum barberi** पूर्वी उत्तरी भारत में प्राचीनकाल से कृषित की जाती रही है परन्तु वर्तमान में sugrarcance के Noberliztion संकरीकरण जो कि Saccharum officinarum के साथ Saccharum Spontenum तथा Saccharum barberi से किया गया के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रजातियों ने ले लिया है।

## 13.3 महत्व एवं उपयोग

गन्ना प्राचीनकाल से ही भारत की एक प्रमुख फसल रही है तथा चीनी का एक प्रमुख स्रोत है। भारत में इसके महत्व का ज्ञान निम्न तथ्यों के आधार पर किया जा सकता है -

**औद्योगिक महत्व -** कपड़ा उद्योग के पश्चात् भारत में शक्कर उद्योग का दूसरा स्थान है, जो देश की कुल चालू पूँजी का 11 प्रतिशत और स्थिर पूंजी का 8 प्रतिशत भाग है।

**राष्ट्रीय आय -** देश को प्रतिवर्ष गन्ने से लगभग 400 करोड़ रूपये की आय होती है जो कुल राष्ट्रीय आय का 23-28 प्रतिशत भाग है।

रोजगार - भारत में कुल मिलाकर 200 चीनी मिलें हैं। इसके अतिरिक्त खाण्डसारी उद्योग भी है। इन सब में मिलाकर 74 हजार कुशल ओर अकुशल लोगों को रोजगार प्राप्त है।

पोषक महत्व - चीनी मनुष्यों का आवश्यक भोजन है। मनुष्यों को अपनी जीवन क्रियाओं के लिए प्रतिवर्ष लगभग 10 लाख कैलोरीज शक्ति की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति लगभग 0.3 हैक्टेयर गन्ने की फसल से हो जाती है जबकि इस मात्रा की पूर्ति के लिए लगभग 2 हेक्टेयर गेहूं की आवश्यकता होती है।

गन्ने के विभिन्न उपयोग - गन्ने का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता हैं गन्ने के कुल उत्पादन का उपयोग निम्न प्रकार से होता है -

शक्कर बनाने के लिए - 35-55 प्रतिशत गुड़ बनाने के लिए - 42.0 प्रतिशत खाण्डसारी के लिए - 3.75 प्रतिशत चूसने और 18.7 प्रतिशत बीज के रूप में किया जाता है।

इसके अलावा शराब तैयार करने वाले कारखाने भी गन्ने पर निर्भर करते हैं क्योंकि शराब बनाने में प्रयुक्त होने वाला शीरा गन्ने से ही प्राप्त होता है। गन्ने की खोई से भी बहुत सी वस्तुऐं जैसे कार्ड बोर्ड, कागज आदि बनाए जाते है। इसके अलावा हरा अगोला पशुओं के चारे के लिए प्रयोग किया जाता है जो कि बहुत ही उपयोगी है। ग्रामीण क्षेत्रों में गन्ने से प्राप्त सूखी पत्तियां व खाई ईधन के रूप में प्रयोग की जाती हैं। सूखी पत्तियों व खोई को कम्पोट खाद बनाने के काम में भी लाया जा सकता है। सन् 1982-83 में चीनी के कारखानों द्वारा उत्पन्न खोई की मात्रा 264-65 लाख टन थी। खोई की इस मात्रा में लगभग 40 लाख टन कागज बनाया जा सका।

## 13.4 उत्पति एवं इतिहास

भारत में गन्ने की खेती प्राचीनकाल से ही होती चली आ रही है। इसीलिए गन्ने की उत्पति भारत में हुई बतलाई जाती है लेकिन फिर भी कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार गन्ने की उत्पति स्थल चीन है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि भारत में गन्ने की खेती ईसा से 1000 वर्ष पूर्व की जाती थी तथा चीन में गन्ने की खेती ईसा से 760 वर्ष पूर्व से की जाती है। व्यापारिक पद्धति से गन्ने से शर्करा ईरन (पर्शिया) में ईसा से 600 वर्ष पूर्व मान ली गई थी। जब सिकन्दर ने 1126 ई. पूर्व भारत पर आक्रमण किया था तब उसके सिपाहियों ने एक प्रकार के नरकुल को चूसा थ जिसमें शहद जैसा स्वाद था। यह गन्ना ही अधिकतर यही तथ्य है कि गन्ने का उत्पति स्थल भारत है।

बेबीलोव (1926-36 ई.) ने भी गन्ने की उत्पति, भारत तथा आंग्लमलाया जिसमें मलाया, हिन्द, चीन, सुमात्रा तथा फिलीपाइन्स आते हैं, में मानी है। जहां से यह विश्व के अन्य भागों मं पहुंचा।

वितरण एवं क्षेत्रफल - गन्ना विश्व के लगभग सभी देशों में थोड़ी बहुत मात्रा में पैदा किया जाता है, परन्तु भारत, जावा, सुमात्रा, हवाई, क्यूबा, जिम्बाब्वे, मैक्सिकों, मारीशस, दक्षिण अफ्रीका, यू.एस.ए.

तालिका - भारत के विभिन्न प्रान्तों में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल उत्पादन एवं औसत उपज प्रति हैक्टेयर (2009-2010)

| **प्रान्त** | **क्षेत्रफल - मि. हे.** | **उत्पादन - मि. टन** | **उपज - किग्रा/हें** |
|---|---|---|---|
| उत्तर प्रदेश | प्रथम 1.98 | प्रथम 117.14 | 59251 |
| महाराष्ट्र | 0.76 | 64.16 | 84866 |
| कर्नाटक | 0.34 | 30.44 | 90355 |
| तमिलनाडु | 0.29 | 29.75 | प्रथम 101452 |
| आन्ध्र प्रदेश | 0.16 | 11.71 | 74101 |
| गुजरात | 0.15 | | 80519 |
| पंजाब | 0.06 | 12.40 | 661667 |
| हरियाणा | 0.07 | 3.70 | 72095 |
| उत्तराखंड | 0.10 | 5.34 | 60854 |
| बिहार | 0.12 | 5.84 | 43422 |
| मध्य प्रदेश | 0.06 | 5.03 | 43421 |
| प. बंगाल | 0.02 | 2.54 | 40821 |
| असम | 0.03 | 1.00 | 72522 |
| उड़ीसा | 0.01 | 1.06 | 39072 |
| अन्य | 0.04 | 0.49 | 61238 |
| | | 1.71 | @ |
| **सम्पूर्ण भारत** | **4.17** | **292.30** | **70020** |

Source: Agricultural Statistics at a glance, Ministry of Agriculture, Co-operation and Marketing 2011

ब्राजील, पीरू, आस्टेलिया, दक्षिणी चीन, फिलीपाइन, पाकिस्तान तथा मिस्त्र आदि देशों में स्थान मुख्य है। गन्ने की औसत उपज जिम्बाब्वे 1153, पेरू 1123, मैक्सिको 997, तन्जानिया 978, इजिप्ट 947 कु./हे. 1990-91 में भी संसार की औसत उपज 613 एवं भारत की औसत उपज 695 कु./है. है।

भारत में विश्व के क्षेत्रफल का 25.87 प्रतिशत व उत्पादन 22.61 प्रतिशत गन्ना उत्पन्न किया जाता है। उत्तर प्रदेश में कुल क्षेत्रफल 2009 - 10 के आंकड़ों के अनुसार 1.98 हे. व गन्ने का कुल उत्पादन 117.14 लाख टन था। उत्तर प्रदेश में मेरठ, गोरखपुर तथा रूहेलखण्ड मण्डलों में गन्ने की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

तलिका के देखने से पता चलता है कि भारत के गन्ना उगाने वाले मुख्य-मुख्य प्रदेश उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, आंध प्रदेश में मेरठ, गोरखपुर तथा रूहेलखंड मण्डलों में गन्ने की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

तलिका के देखने से पता चलता है कि भारत के गन्ना उगाने वाले मुख्य मुख्य प्रदेश उत्तर प्रदेष, उत्तराखंड, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार, पंजाब, हरियाण व कर्नाटक है। भारत को गन्ना उत्पादन के दृष्टिकोण से दो भागों में विभाजित किया जाता है।

अ गन्ना उत्पादन का उत्तरी क्षेत्र - इस क्षेत्र में पंजाब, हरियाण, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़ व बिहार, झारखण्ड सम्मिलित हैं। भारत के कुल उत्पादन का 64 प्रतिशत गन्ना इसी क्षेत्र में पैदा किया जाता है। भारत के कुल क्षेत्रफल का 76 प्रतिशत भाग इसी क्षेत्र में स्थित है।

ब गन्ना उत्पादन का दक्षिणी क्षेत्र - इस खेत्र में तमिलनाडु, आंध प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, केरल, गुजरात व महाराष्ट्र हैं।

## 13.5 जलवायु

गन्ना उष्ण कटिबन्धीय देशों का पौधा है तथा इसी प्रकार की जलवायु में इसको अच्छी प्रकार उगाया जा सकता है। अच्छी बढ़वार के लिए अधिक तापमान साधारण आर्द्रता, चमकीली धूप तथा बढत्रवार की लम्बी अवधि आवश्यक है।

वर्षा - भारत में गन्ना 50 सेमी से 250 सेमी वार्षिक वर्षा वाले स्थानों पर उगाया जाता है। उत्तर प्रदेश की औसत वार्षिक वर्षा 95 सेमी हैं गन्ने की अलग अलग अवस्थाओं के लिए अलग अलग वर्षा की आवश्यकता है। अधिक पैदावार लेने के लिए यदि समय पर वर्षा न हो, तो सिंचाई आवश्यक है। मेजेलूसडोर्फ ने गन्ने की जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताओं को निमन प्रकार बताया है -

1. वृद्धि के समय, लम्बी अवधि तक गर्म व नम मौसम तथा अधिक वर्षा की आवश्यकता है।
2. तूफान व ठण्डी हवाओं का चलना वृद्धि एवं उपज को कम करता है।

3. परिपक्व होते समय मौसम आमतौर पर शुष्क, ठण्डा तथा पालेरहित होना चाहिए। इस मौसम में चमकीली धूप भी आवश्यक है।

गन्ना आमतौर पर 32-37 डिग्री से. तापमान के बीच अच्छा पनपता हैं। 15 डिग्री से. के नीचे तथा 45 डिग्री से. के ऊपर बढ़वार घटने लगमी है। 2 डिग्री से. के नीचे जड़े अपना कार्य करना बन्द कर देती है। अंकुरण के लिए इष्टतम ताप 25-30 डिग्री से. आदर्श जलवायु 4-6 माह तक 30-5 डिग्री से. तापमान व दो माह तक ठंडा समय अच्छा रहता है।

भूमि - हमारे देश के विभिन्न भागों की खेती बलुअर मृदा से लेकर दोमट और भारी मृदा तक की जाती हैं। गन्ने की खेती के लिए भूमि में जल निकास की अच्छी सुविधाएं होना नितान्त आवश्यक हैं। खन्ना ने अपने अनुभवों के आधार पर बतलाया है कि भूमि pH 6.1 - 7.7 के बीच की होनी चाहिए।

अम्लीय भूमि हानिकारक होती है परन्तु हवाई द्वीप मे गन्ना 4.5 7 5.0 pH वाली भूमि में भी अच्छी पैदावार देता हे। उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड में गन्ना अग्रलिखित प्रकार की भूमियों पर उगाया जाता है -

1. पश्चिमी और रूहेलखंड का क्षेत्र - इस क्षेत्र की भूमियां दोमट और मटियार दोमट तथा उचित जल निकासयुक्त होती है और इस क्षेत्र में मुख्य रूप से सिंचाई के साधन पाए जाते हैं।
2. तराई क्षेत्र - इस क्षेत्र की भूमियां दोमट और अधिक दोमट तथा कंकरीली और पथरीली तथा काले रंग की होती है।
3. मध्य क्षेत्र - इस खेत्र में अम्लीय भूमियां कहीं - कहीं पर मिलती है। क्षारीय भूमियां हरदोई और लखनऊ जिले में मिलती है और कुछ स्थानो ंपर सिंचाई की सुविधाएं प्राप्त होती है।
4. पूर्वी क्षेत्र - गोरखपुर जिले में तीन प्रकार की भूमियां पाई जाती है -
   क. 'माट' इन भूमियों में कैल्शियम की अधिकता होती है। यह भूमि बहुत ट्रैक्टेबिल होती हे तथा मृदा नमी की मात्रा अधिक पाई जाती है।
   ख. डीग्रडीड कैल्शियम भूमियां
   ग. अम्लीय मृदाएं

## 13.6 भूमि की तैयारी

मृदा में वायु संचार बढ़ाने, अन्तः स्त्रवण जल की गति बढ़ाने व जीवांश पदार्थ को निचली सतहों पर पहुंचने के उद्देश्य से भूमि की तैयारी की जाती है। भूमि की तैयारी गन्ने से पहले उगाई गई फसल, मृदा की किस्म बोने की विधि व मृदा में नमी की मात्रा पर निर्भर करती है -

गन्ने की जड़े, मृदा में अधिक गहराई तक प्रवेश करती है। गन्ना उगाने वाले क्षेत्रों में भूमि को उथला या गहरा जोता जाता है।। उथली जुताई करने पर पैदावार अच्छी नहीं होती । अतः जुताई गहरी करनी चाहिए, जिससे कि अधोमृदा में उपस्थित सख्यत तह भी टूट जाए व जड़ की वृद्धि अच्छी गन्ने की पैदावार बढ़ाएं। एक दो गहरी जुताई करने के बाद में 2-3 जुताइ्र उथली की जा सकती है। गहरी जुताई केवल ट्रैक्टर से ही करना सम्भव है। उथली जुताइयां हैरो, कल्टीवेटर व देशी हल आदि से मृदा की किस्म यंत्रों की उपलब्धि के अनुसार करते हैं।

चिकनी मृदा में जुताइयां अधिक व बुलई दोमट भूमियों में जुताई की संख्या कम की रखते हैं। खेत में नमी की कमी या अधिकता होने पर जुताई की संख्या घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

अपने देश में गन्ने की फसल की बुवाई तीन समय पर की जाती है। बुवाई के समायानुसार, इससे पहली फसल या खेत की परिस्थिति के अनुसार निम्न प्रकार खेत की तैयारी करते है -

1. शरदकालीन बुवाई - अक्टूबर या नवम्बर के माह में इस फसल की बुवाई करते हैं। खरीफ के दिनों में या सिंचाई के आधार पर ग्रीष्म ऋतु में अगर हरी खाद की फसल गन्ने के पहले उगा रहे हैं तो हरी खाद की फसल बोने के 50-60 दिन बाद खेत में दबा देते हैं। दबाने के दस बारह दिन बाद खेत की 5-6 जुताई कर देते हैं। खरीफ की फसल ज्वार, मक्का या उर्द आदि लेने के पश्चात् अगर अधिक समय मिले तो 5-6 जुताई और यदि कम समय मिले तो 3-4 जुताई खेत की करते हैं। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करते हैं।
2. बसन्तकालीन बुआइ - रबी की कम अवधि वाली फसलों के बाद फरवरी से मार्च तक गन्ने की बुआई कर सकते हैं। पश्चिम उत्तर प्रदेश में गन्ना, गेहूं की फसल काटकर, अप्रैल मई तक बोते हैं। आलू, मैथी, मटर, चना आदि के पश्चात् फसल की बुआई के लिए 3-4 जुताइयां कर दी जाती है। गेहूं की फसल काटने के बाद बोने में देर होने के कारण जुताई की संख्या कम ही रखी जाती है। ऐसी परिस्थिति में गन्ने के खेत को ऐसे समय पर पलेवा करते हैं कि गेहूं पककर कट जाए व साथ-साथ खेत को तैयार करके गन्ना बो दिया जाए।
3. वर्षाकालीन बुआई - इस फसल की बुआई जून-जुलाई में करते हैं। भारत में दक्षिणी प्रान्तों में ही अधसाली फसल उगाते हैं। यह फसल खेत में 18-24 महीने तक पकने के लिए लेती है। ग्रीष्मकाल में खेत की जुताई करके 5-6 जुताइयां बाद में कर दी जाती है।

## 13.7 बीज व बीज की तैयारी

गन्ने के पोधे में अन्य फसलों के समान फूल निकलते हैं व बीज भी बनते हैं, परन्तु उत्तरी भारत में गन्ने से बने बीजों में अंकुरण क्षमता नहीं होती क्योंकि यहां की जलवायु गन्ने के बीज के बनने व अंकुरण के उपयुक्त नहीं है। अतः गन्ने की फसल में वानस्पतिक प्रजनन विधि गन्ना उगाने के काम में लाते हैं।

गन्ने की फसल उगाने के लिये तने को प्रयोग में लाया जाता है। तने के टुकड़े काटकर बुआई के काम में लाते हैं। तने को टुकड़े में काटने से पहले, उसके ऊपर की सभी पत्तियां सावधानीपूर्वक हाथ से हटा देते हैं, जिससे कि तने की गांठों पर पाई जाने वाली कलिका को किसी प्रकार से हानि न पहुंचने पाए। दांतेरहित तेज हंसिया या तेज चाकू की सहायता से गन्ने के तनों को इस तरह से काटा जाता है कि प्रत्येक टुकड़े में तीन कलिका या आंख आ जाएं। टुकड़े करने वाले चाकू या हंसियां को कीटाणुरहित करने के लिए इसे बीच-बीच में पोटेशियम परमैंगनेट के घोल में डुबाते रहते हैं। बींज शुद्ध एवं स्वीकृत जाति का हो, स्वस्थ एवं निरोग हो, गन्ने की ऊपरी 1/3 भाग बुआई के लिए प्रयोग हो, जिस फसल से बीज लिया गया हो उसमें खाद एवं पानी प्रचुर मात्रा में दिया गया हो।

## 13.8 गन्ने की उन्नत जातियां

तालिका विभिन्न क्षेत्रों में सिफारिष की हुई जातियां

| प्रान्त | अगेती जातियां | मध्य व पछेती जातियां |
|---|---|---|
| 1 उत्तर प्रदेश पश्चिम क्षेत्र एवं मध्य क्षेत्र | Cos510, cos1336, coj64, cos8436, co89029,co85004, colk810, co85012, cos510, coj64, bo47 cos8436,cos 90265, 95429 5436, 96256 | Co pant 84211,Colk 8102,Colk 8504, Cos 8432,Cos 918,Colk 91236, Colk91237,Colk 91238,Colk 91239,Cos 7918,Cos 767,Cos 8118,Co 62399, Cos 802, Bo 91,U.P.5, Cos |
| | | 8432,88230,952555,94270, 96258,95432,95436,95222, Co Pant 84212, Colk8102,Colk 8501,Colk 8504, Cos8432, Cos 918,Colk 91236,Colk 91237,Colk 91238,Colk 91239, Colk767, Cos 7918, Cos 802, , Bo 91 |
| | Cos 416, Co 395, Bo 47, Cos 8436, Cos 95255, | CoLK8102, CoLK8501, CoLK8504, |
| पूर्वी क्षेत्र | 95436, 95432 | Cos 8432, Cos918, CoLK 91236 CoLK 91238, CoLK 91239 Cos 767, Bo 91, Cos 802, Cos 837, Cos 8351, Cos 86218 |
| | Bo .47, Bo 65 | CoLK8102, CoLK8501, CoLK 8504, Cos 8432 Co 918, CoLK 91236 |
| 2 बिहार | CoL 29, CoJ 58, Co 6914, Co 7717, Co 82029, | CoLK 91237, CoLK 91239, CO 617, Bo 54, Bo70, Bo74, Bo91 |
| | Cos 245, Co 9544, Co 1101, Co1315 | CoLK 8102, CoLK 8501, CoLK8504, Cos 8432, Cos 918 CoLK 91236, CoLK 91237, CoLK 91238 CoLK91239 CoLK, |
| | Co 527, Co 997 CoL 29, | Co Pant 84211, Co 6613, |

| | | |
|---|---|---|
| 3 पंजाब व हरियाणा<br><br>4 मध्य प्रदेश<br><br>5 राजस्थान | Co 6314 | CoS 767, Co 64, Coj 67<br><br>CoLK 8102, CoLK 8501, CoLK 8504, CoS 8432, CoS 918, CoLK 91238, CoLK 91238, CoLK 91239, Co 1305, Co 1307 1307<br><br>Co-419, Co449, Co1111, Co1253, Co1007, Bo17 |

**मृदा, जलवायु व अन्य विषेष परिस्थितियों के लिए गन्ने की उन्नतशील जातियां**

| क्रमांक | उपयुक्त जातियां | उपयुक्त जातियां |
|---|---|---|
| 1 | सूखा | Cos 510, Co 449, Co858, CoLk 8001, Co 421, |
| 2 | पाला | Co 997,Bo17 |
| 3 | अधिक चीनी वाली | Co 421, Co 453 |
| | जलमग्न क्षेत्र | Coj 64, CoLK 7901, CoLK 7810, Cos 510 Co 775 Co 1007, Co 1157, CoS 633, Bo3, Co97, Bo91, UP1, Cos767, CoS8118, Bo91 |
| 4 | अग्रिम मौसम में गुड़ बनाने के लिए | COS 321, Cos 416, Cos 510, Co 1356, Coj 64 |
| 5 | समुचित जल निकासी वाले | CoS 321 |
| 6 | क्षेत्र | CoLK 8102, CoLk8501, CoLK 8504, Cos |
| 7 | पेड़ी के लिए | 510, Co740 CoS 88230, Cos 767, Cos 8009, |
| 8 | | CoS 8016, Cos 8118, Cos 8207 |
| 9 | | Bo 17, Bo 32 |
| 10 | नदियों के खादर | G12663 |
| 11 | देवरिया जिले के भट्ट मृदाओं केलिए | Co 419 |
| 12 | अधसाली फसल (18 महीने के | Coj 82315,COPant 88219, COH 77, CoS 8432, Co86134, Bo50 Co 62399, CoS671, Co 6602, |

| | | |
|---|---|---|
| | लिए)<br>गन्ने की मध्य-देर से<br>पकने वाली नई जातियां<br><br>क्षारीय भूमियों के लिए | Co62174 Cp 62174, Cp 44/101, CoS 767,<br><br>Cos748, Co975<br><br>Bo 91, Co 453, Co740 |

CO - 89003 में जड़ बेधक लगता है। पेड़ी अच्छी होती है। पछेती बुआई में भी अच्छी है। पश्चिम उ.प्र.में प्रतिबन्धित किस्में -को.जा. 687, को. जा. 96260

**गत वर्षों में गन्ने की नई विकसित उन्नत जातियां**

1193-CO-8208

1994-CO-85019,Co-85004,CO-87025,CO.8603 CO-87044

1997- CO- Bin-9605, CO-86249, Co Pant 90233, COM 88121, BO-120,CO8370

2000- उत्तरा (CO-87044), भवानी, कल्याणीख् प्रभा, धनुष, नमता (CO-86032),भीम, मोती (CO-87268), सरयू (CO-87044), रसीली (COS-91230),COM-7714 कृष्णा।

2006 CO-99004: प्रजाति की उपज क्षमता अधिक है। इसमें सुकोष की मात्रा भी अधिक होती है। यह प्रजाति लाल सड़न स्पष्ट तथा उकठा रोग के लिए मध्यम सहिष्णुता रखती है। यह प्रजाति पेनिन्सुलर इण्डिया के लिए विकसित की गयी है।

2007- CO-4 119, CoJ20193 CO 98014 ये प्रजातियां मध्य तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश के लिए विकसित की गई है।

विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाने वाली कुछ प्रमुख जातियों के गुण तालिका में प्रदर्शित किए गए हैं।

## 13.9 बीजोपचार

बीज के टुकड़ो का उपचार - बीज के टुकड़ों का अंकुरण बढ़ाने, शीघ्र वृद्धि के लिए फफंूदी व अन्य जीवाणुओं के आक्रमण से बचाने के लिए विभिन्न रसायनों से टुकड़ों का उपचार करते हैं। टुकड़ों को निम्न रसायनों से उपचारित करके बाते हैं -

1 एगालाल (5%) या एरेटान (0.25%) घोल में फफंूदीजनित बीमारियों से बचाने के लिए टुकड़ों को उपचारित करना चाहिए।

2 बीज के टुकड़ों को विषाणुओं से मुक्त करने के लिए गर्म पानी से उपचारित करना भी लाभदायक है। इसके लिए टुकड़ों की 50 डिग्री सेण्टीग्रेड तापमान वाले पानी में 30 मिनट तक डुबाते हैं। तापमान का उपचार शीघ्र अंकुरण में भी कभी कभी सहायक होता है।

3 चूने के संतप्त घोल में टुकड़ों को उपचारित करने पर, अंकुरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

4 मृदा में दीमक आदि से बचाने के लिए बी.एच.सी. के घोल से या चारकोल के घोल से (4-5 लीटर पानी में 4-5 बूंद चारकोल) से उपचारित करके टुकड़ों की बुआई करते हैं। अंकुर बेधक के लिए लिण्डेन 5 प्रतिशत, डस्ट 40 किग्रा/है. बुरकाव करें।

5 टुकड़ों को बुआई से पहले 4-5 घण्टे तक पानी में डुबाए रखने पर कलियों का अंकुरण अच्छा होता है।

6 पोटेशियम परमैंगनेट व लघु तत्वों के घोल से बीज को उपचारित करने पर गन्ने के टुकड़े में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ती है तथा उपापयन क्रियाओं में वृद्धि होती है जिसके कारण बीज का अंकुरण अच्छा होता है।

7 वृद्धि सम्बन्धी रसायनों (हारमोन्स) जैसे एन.ए.ए. आई.बी.ए., आई.ए.ए., जिब्रलिक एसिड, के घोल के टुकड़ों को उपचारित करने पर जड़ें निकलने की गति तेज हो जाती है। इनमे ंसे कुछ रसायनों का प्रभव कलियों की बढ़वार पर उल्टा हो सकता है।

बुआई में देर होने पर, अंकुरण के लिए उचित ताप न मिले पर इन रसायनों से उपचारित करना लाभदायक सिद्ध होता है।

## 13.10 बीज के लिए प्रयोग किया जाने वाला गन्ने का भाग

गन्ने का पूरा तना कभी भी बोने के काम नहीं लेना चाहिए। सदैव तने के टुकड़े करके ही बोना चाहिए क्योंकि गन्ने में शीर्ष सुषुप्ता पाई जाती है। अगर गन्ने का पूरा का पूरा तना बो दिया जाए तो उसका ऊपरी भाग ही अंकुरित हो पाएगा व नीचे की जड़ की ओर का भाग अंकुरित नहीं होगा। गन्ने के तने में कुछ ऐसे हारमोन्स होते हैं जो पौधे में ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। इन हारमोन्स के प्रभाव नीचे की आंखे या कलिकाओं पर प्रतिकूल पपड़ता है और आंखें वृद्धि करने के लिए क्रियाशील नहीं हो पातीं। गन्ने में तने को टुकड़ों में काटने का उद्देश्य यही है कि इन हारमोन्स का एक जगह से दूसरी जगह जाना रूक जाता है तथा प्रत्येक कलिका अपना कार्य ठीक प्रकारकर सकती है अतः गन्ने को सदैव काटकर बोते हैं।

गन्ने के बोए जाने वाले टुकड़ों में प्रयोगों के परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दो, तीन, चार तथा पांच आंख (कलिका) वाले टुकड़ों की अपेक्षा, सदैव तीन आंख वाला टुकड़ा, बुआई के लिए सबसे अच्छा है। अक्टूबर में बुआई के लिए गन्ना बीज में प्रयोग कर सकते हैं। बीज रोगरहिंत, कीट-पतंगों रहित प्रयोग करें।

**गन्ने के ऊपरी भाग को बुआई करने की सिफारिश के कारण**

बीज - गन्ने का ऊपर का अपिरपक्व भाग बीज के लिए उत्तम है क्योंकि यह अधिक घुलनशील नाइट्रोजन, ग्लूकोस अधिक व अधिक नमी रखता है। गन्ने के निचले भाग में पत्तियां सूखने से कलिका खुली होने के कारण गर्म हवा व अधिक ताप से सूख सकती है। कीट-पतंगों व बीमारियों से प्रभावित हो सकती है। अतः ऊपर का 1/3 गन्ना बुआई के लिए उपयुक्त है। आंखें हरी, उभरी हुई एवं सूखी स्केली पत्तियों से मुक्त होनी चाहिए। बीज वाली फसल सूखे, पाले व जलमग्नता से प्रभावित न हो। गन्ने की किस्म रोगरोधक हो।

ऊपरी भाग का प्रयोग बीज के रूप में करने से, शर्करा उत्पादन में वृद्धि होती है।

गन्ने में फूल निकलने से, ऊपर के भाग की कलिका सक्रिय होती है और कभी कभी कपेजतवतजमक हो जाती है। गन्ने में पिथ बन जाता है। अतः अंकुरण होने वाले भाग में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। अतः फूल निकलने के बाद गन्ने, गन्ने के भाग बोने के कार्य में नहीं ले सकते। गन्ने की पेड़ी में फूल शीघ्र व अधिक निकलते हैं व पेड़ी पर कीट-पतंगों व बीमारियों का प्रभाव तुलनात्मक अधिक होता है। अतः पेड़ी से भी, गन्ना बीज के उपयोग में न लाएं। जलमग्न क्षेत्र से गन्ने का बीज न लें क्योकि यहां पर तने में जड़े निकल आती हैं व अन्दर का भाग खोखला हो जाता है।

6-7 महीने की फसल केवल बीज के उद्देश्य से थोड़े क्षेत्र में उगाएं। इस फसल का पूरा प्रबन्ध पानी, खाद, पादप सुरक्षा भली भांति किया जा सकता है। सिंचाई की अनिश्चित अवस्था में परिपक्व गन्ने के भाग से ही बीज लें क्योंकि इस भाग की कलिका धीरे धीरे अंकुरित होती है तथा इन कलिकाओं से बनने वाले पौधे देर से सिंचाई होने की स्थिति को भी सहन कर लेते हैं।

**अंकुरित गन्ने के टुकड़े -** तीन कलिका वाले टुकड़े अलग नर्सरी में अंकुरित करते हैं। देर से बुआई में रेग्यूनगन्स लाभकारी है। इनमें कल्ले शीघ्र फूटते हैं व अन्त में शर्करा उत्पादन बढ़ता है। नर्सरी व खेत में समय पर सिंचाई प्रबन्ध आवश्यक है।

ग्लूकोज व नमी की मात्रा अधिक होने से अंकुरण प्रतिशत सुधरता है। खनिज लवणों की प्रतिशतता अधिक होने से अंकुरण प्रतिशतता गिरती है।

नई जातियों का बीज शीघ्रता से बढ़ाने के लिए जनवरी-फरवरी में रेग्यूनगनस तैयार करके बुआई करें व अगस्त की कटाई कर, एक कलिका के टुकड़ों की पुनः बुआई कर बीज पांच गुणा शीघ्रता से बढ़ाते हैं।

बीज की मात्रा - प्रति इकाई क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली बीज की मात्रा, प्रयोग किए जाने वाले टुकड़ों का अंकुरण प्रतिशतता पर निर्भर करती है। साधारणतया टुकड़ों पर उपस्थित कलिकाओं में से 35 प्रतिशत तक का अंकुरण होता है। अंकुरण कम या अधिक होने के कारण ऊपर बताए गए हैं। मुख्य कारण नीचे के भाग से टुकड़े हैं जिनका अंकुरण प्रतिशतता बहुत कम होता है।

बीज की मात्रा गन्ने की जाति के ऊपर निर्भर करती है क्योंकि मोटे गन्ने की जातियों का बीज अधिक व पतले गन्ने की जातियों का बीज कम लगताहै। बोने के समय का प्रभाव भी गन्ने की बीज की मात्रा पर निर्भर करता है। शरद ऋतु में बोए गए (अक्टूबर-नवम्बर) गन्ने में अंकुरण अच्छा व बसन्त ऋतु में (फरवरी-अप्रेल) में बोए गए गन्ने में अंकुरण अपेक्षाकृत कम होता है। अतः शरद ऋतु में बोए गए गन्ने की बीज की दर कम हो जाती है।

**गन्ने की उन्नतशीन जातियों के गुण**

| **गुण जातियां** | **अंकुरण** | **ब्यांत** | **पेड़ी** | **उपज टन/हे.** | **सुकोज प्रतिशत** | **तनेका आकार** | **अन्य** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अ अगेती पकने वाली जातियां | | | | | | | |
| 1 CoS 510 | बहुत अच्छा | अधिक | अच्छी | 50-60 | 15-18 | पहले से मध्यम | जलमग्न व शुष्कता को सहन कर सकती है, स्मट व रेडरोट से प्रभावित |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 2 CoS 687 | बहुत अच्छा | अधिक | अच्छी | 73-77 | 14-18 | मध्यम | तने की लाल सड़न रोधक, स्मट से प्रभावित, शरद ऋतु की बुआई के उपयुक्त इसकी कटाई नवम्बर में करनी चाहिए अन्यथा पेड़ी नहीं होगी इसके बाद रबी में गेहूं या मटर , मसूर आदि बो सकते हैं। |
| 3 CO 1336 | बहुत अच्छा | कम | | 86-90 | 15-19 | भारी | फसल गिरती है, लाल सड़न व स्मट रोधक |
| 4 Bo 47 | अच्छा | अच्छा | | 73-76 | 15-18 | भारी सीधा | लाल सड़न की सहनशील स्मट व विल्ट रोधक |
| 5 CoJ 58 | अच्छा | अच्छा | | 65 | 16 | | नवम्बर के अन्त में काटकर गेहूं बो सकते हैं। |
| 6 Co 85012 | अच्छा | अच्छा | अच्छी | 60-65 | 17 | मध्यम | |
| ब मध्यम व देर से पकने वाली जातियां | | | | | | | |
| 1 COS 573 | अच्छा | संतोषजनक | | 72-86 | 12-15 | मध्यम मोटाई | हल्का सूखा सहन, लाल सड़न रोधक, हल्की दोमट भूमियों में उगा सकते हैं। गन्ना कभी कभी खेत में गिर सकता है। |
| 2 Co 395 | अच्छा | अच्छा | | 65-70 | 13-17 | ठोस कठोर | भारी दोमट, गुड अच्छा, सूखा से प्रभावित, लाल सड़न व विल्ट रोधक कुछ समय तक पानी को |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | | | सहन कर लेती है। |
| 3 Co 1007 | अच्छा | अच्छा | | 58-62 | 12-17 | मध्यम लम्बा | हल्का सूखा व लाल सड़न रोधक। |
| 4 CoLK 8102 | अच्छा | अच्छा | | 60-65 | 15-17 | मध्यम लम्बा | हल्का सूखा व लाल सड़न रोधक। |
| 5 CoLK 8501 | अच्छा | अच्छा | | 80-85 | 15-17 | मध्यम लम्बा | हल्का सूखा व लाल सड़न रोधक। |
| 6 Co 7717 | अच्छा | अच्छा | बहुत अच्छी | 70 | 13-17 | मध्यम भरी,सीधा मुलायम | अच्छी है। फसल गिरती है नहीं लाल सड़न, कांगमारी व सूखा रोधक, सभी बेधक कम लगते हैं। |
| 7 Co 6914 | अच्छा | अच्छा | बहुत अच्छी | 60-65 | 12-16 | मध्यम भारी | सड़न रोग नहीं लगता, खेत में कम गिरता है, गुड़ के लिए भी अच्छा |
| 8 Bo 54 | अच्छा | काफी | अच्छी | 72-76 | 14-16 | मध्यम सख्त | दोमट, सूखा सड़न, हल्का पाला सहन, लाल सड़न रोधक स्मट से प्रभावित खादर (पानी) क्षेत्र के उपयुक्त |
| 9 BO 91 | अच्छी | कॉफी | | | 12-15 | भारी सीधा | सीधा तना खोखला स्मट व लाल सड़न रोधक |

उपर्युक्त सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए स्वस्थ बीमारीरहित तीन कलिका वाले टुकड़ों की 35000-40000 तक संख्या पर्याप्त होती है। प्रति हैक्टेयर लगने वाले बीज का भार लगभग 60-70 कुन्तल प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। अगर गन्ने के ऊपर के भाग के टुकड़े ही बोने के

काम में लिए गए हैं तो केवल 20-30 कुन्तल गन्ने के टुकड़े प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होते हैं। बीज दर पर किए गए परीक्षणों से पता चलता है कि -

1 प्रति हैक्टेयर बीज की दर करने से प्रति प्रौधा ब्यांत की संख्या बढ़ती है।

2 प्रति हैक्टेयर अधिक बीज दर रखने पर अधिक संख्या में पौधे प्राप्त होते हैं तथा सुक्रोज की अधिक मात्रा प्राप्त होती है।

3 दो कलिकाओं वाले 40-50 हजार टुकड़े बोने पर भी गन्ने की उपज अच्छी मात्रा में हो जाती है।

गन्ने की फसल जो कि बीज के लिए रखी गई है, अगर खड़ी फसल के तनों को 4-6 सप्ताह पहले ऊपर से अगोला काट दिया जाए जो बचे शेष तनों पर कलिका फूट जाती है। बाद में यही तना टुकडों में काटकर बो दिया जाता है। इस प्रकार की प्रणाली जावा देश में अपनाई जाती है। इसकी बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई आवश्यक है ताकि अंकुरित कलिकाओं को पानी की कमी न पड़ने पाए। देर से बोई जाने वाली फसल के लिए इस प्रकार की बीज बुआई के लिए उत्तम है। इस प्रकार के टुकड़े से प्राप्त पोैधे में सक्रोज की मात्रा अधिक पाई जाती है।

## 13.11 गन्ने की बुआई

**अन्तरण -** मशीनों से खेती करने वाले क्षेत्रों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 सेमी रखना लाभदायक पाया जाता है। नालियों में गन्ने की बुआई करने की विधि में पंक्तियों का अन्तरण 85-90 सेमी ही रखते हैं।

परीक्षणों के आधार पर पाया गया हैं कि अधिक उपजाऊ मृदाओं में अन्तरण अधिक व कमजोर मृदाओं मंे पंक्तियों का अन्तरण कम (75 सेमी) रखना उपयुक्त है।

**बोने का समय -** गन्ने के अंकुरण के लिए 900°1000°F तापमान सबसे अच्छा रहता है। उत्तर प्रदेश में मृदा में यह तापमान निम्नलिखित समय पर होता है -

1 शरदकालीन बुआई - अक्टूबर मे ंयह बुआई करते हैं। इस गन्ने की कटाई भी अगले वर्ष अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह के लगभग कर सकते हैं। इस प्रकार फसल 13-14 महीने में तैयार होती है।

2 बसंतकालीन बुआई - इस समय गन्ने की बुआई फरवरी में प्रारम्भ की जाती है। उत्तर प्रदेश के अधिकतर भागों में इस प्रकार की बुआई गेहूं की कटाई (अप्रैल) तक चलती रहती है। इस समय की बोई गई फसल दिसम्बर-जनवरी में काटी जा सकती है। शरदकालीन की तुलना में इस समय बोई गई फसल 20-30 प्रतिशत तक उपज कम प्राप्त होती है। इस प्रकार फसल 10-12 महीने में तैयार होती है। देर से बुआई करने पर कल्ले कम बनते हैं।

3 वर्षाकालीन बुआई - दक्षिणी भारत में वर्षा ऋतु में भी गन्ने की बुआई करते हैं। इस फसल की बुआई जून-जुलाई में दक्षिण भारत में ही करते हैं। पडगांव में किए गए परीक्षणों से चलता है कि वहां की अवस्थाओं में जून जुलाई की बुआई में सबसे अधिक उपज, इससे कम उपज, अक्टूबर की बुआई में व सबसे कम उपज फरवरी की बुआई से प्राप्त होती है। यह फसल 18 महीने में तैयार होती है।

**बौने की विभिन्न विधियां निम्न प्रकार है** -

अ समतल बुआई - समतल खेतों में बुआई हल के पीछे पंक्तियों में करते हैं। इच्छित दूरी पर देशी हल अथवा डबल मोल्ड बोर्ड हल्के हल के द्वारा कूंड तैयार कर लिए जाते हैं। आजकल गन्ना प्लाण्टर व टैक्टर से खींचे जाने वाले डबल मोड बोर्ड टाइप हल गन्ने की बुआई के लिए उन्नतशील कृषकों द्वारा प्रयोग किए जाने लगे हैं। इन हलों की सहायता से एक बार में ही बुआई के तीन कूंड तैयार हो जाते हैं। कूंडों में गन्ने के टुकड़ों की बुआई करके पाटा चलाकर ढक देते हैं। कूंडों की गहराई 15-20 सेमी रखते हैं।

ब नालियों में बुआई - इस विधि में गन्ने की बुआई नालियों में करते हैं। नालियां 75-90 सेमी की दूरी पर बनाते हैं। इन नालियों की चैड़ाइ 40 सेमी व गहराई 25 सेमी रखते हैं। खेत की तैयारी के समय जैविक खाद भी खेत में मिला देते हैं। खाद मिलाने के बाद , खेत की डौली व नाली तैयार करते हैं। इन मेंडों में खाद आरक्षित कर दिया जाता है। बोने से पहले नालियां में अलग से जैविक खाद मिला देते हैं।

स समतल बुआई करके मिट्टी चढ़ाना - इस विधि में गन्ने की बुआई समतल खेत में करके वर्षा ऋतु में पौधों पर मिट्टी चढ़ाते हैं।

द गड्डों में बुआई - दक्षिणी भारत की काली मिट्टी में गन्ना बोने की यह विधि अपनाई जाती है। काली मृदा भारी होने के कारण इसमें जल निकास की अच्छी सुविधा नहीं होती और मृदा में वायु संचार भी उचित नहीं होता। अतः वायु संचार बढ़ाने के लिए खेत में उपयुक्त अन्तरण पर 15-20 सेमी गहरे व 75 सेमी व्यास के गड्डें तैयार करते हैं। इन गड्डों में अच्छा सड़ा हुआ गोबर खाद या कम्पोस्ट और उर्वरक मिलाकर भली प्रकार गुड़ाई कर देते हैं। इस प्रकार के तैयार गड्डों में 5 गन्ने के टुकड़ों की बुआई करते हैं।

अधिकतर क्षेत्रों में पहली दोनों विधियां ही बुआई के लिए प्रचलित हैं। उपजाऊ मृदाओं में नालियों में बुआई करने पर अच्छी उपज प्राप्त होती है।

बोने की गहराई - बोने की गहराई, मृदा नमी, बोने के समय तथा मृदा तापमान पर निर्भर करती है। मृदा नमी उपलब्ध होने पर उथली बुआई, शरद ऋतु में उथली बुआई, बंसत ऋतु में गहरी बुआई, मृदा तापमान अधिक होने पर गहरी बुआई करते हैं। साधारण तौर पर टुकड़े की कलिका के ऊपर 2.5 सेमी मृदा होना आवश्यक है।

बीज की बुआई की विधियां - गन्ने के टुकड़ों की बुआई निम्नलिखित तीनों विधियों द्वारा की जाती है -

1 सिरे से सिरे मिलाकर बुआई करना - इस विधि में गन्ने के टुकड़ों को एक दूसरे के सिरे से मिलाकर बोया जाता है। विशेष रूप से छोटी पोरी वाली गन्ने की जातियों की बुआई के लिए यह विधि उत्तम है।

2 अंखुए से अंखुए मिलाकर बुआई करना - गन्ने की लम्बी पोरी वाली जातियों में अंखए से अंखुए मिलाकर बुआई करते हैं। इस प्रकार प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की संख्या बढ़ जाती है।

3 दो टुकड़ों की साथ साथ बुआई - इस विधि में गन्ने के दो टुकड़ों को साथ साथ मिलाकर बोते हैं।

4 जब गन्ने की बुआई गड्ड़ों में करते हैं तो साधारणतया गन्ने के बीज वाले चार टुकड़े के गड्डे के चारों ओर किनारे के सहारे रख जाते हैं तथा गड्डे के मध्य में दो टुकड़े विपरित

दिशाओं में एक दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं। इस प्रकार एक गड्डें में बीज वाले 6 टुकड़े बोए जाते हैं।

## 13.12 खाद की मात्रा -

गन्ने की अच्छी बढ़वार के लिए उसे आवश्यक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। फसल द्वारा ग्रहण की जाने वाली पोषक तत्वों की मात्रा, गन्ने की जाति, भूमि की किस्म, जलवायु आदि पर निर्भर करती है। वर्षा, प्रकाशकाल व प्रकाश सघनता की भिन्न भिन्न परिस्थितियों में, एक ही जाति पोषक तत्वों की भिन्न भिन्न मात्रा का शोषण करती है। पोषक तत्वों की मात्रा का निर्धारण करते है समय सदैव मृदा का परीक्षण कराना आवश्यक है।

परीक्षणों के आधार पर पाया गया है कि उत्तर प्रदेश में गन्ने की अच्छी पैदावार के लिए 150 किग्रा नत्रजन व आवश्यकतानुसार 80-100 किग्रा फॉस्फोरस व 60-80 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर देना लाभदायक है। नत्रजन की अधिक मात्रा देने पर गन्ने की फसल खेत में गिर सकती है और पैदावार भी अच्छी प्राप्त नहीं होती।

खाद देने की विधि - हरी खाद फसल, गन्ना बोने से एक माह पहले खेत की पलट दी जाती है। हरी खाद अगर नहीं दी तो गोबर की खाद फसल बोने से एक महीना पहले ही खेत में बिखेरकर अच्छी प्रकार जुताई करके डालते हैं। नत्रजन के उर्वरकों को ऊपर सतह पर भी डालते हैं। नत्रजन के घोल को खड़ी फसल पर भी छिड़का जा सकता है।

खाद देने का समय - कार्बनिक खाद बुआई से एक माह पहले खेत में देते हैं। अगर कार्बनिक खाद उपलब्ध नहीं हैं तो नत्रजन के उर्वरकों की 1/3 मात्रा बुआई के समय, 1/3 मात्रा कल्ले फूटते समय एवं 1/3 मात्रा वृद्धि के समय खेत में देते हैं। गन्ने की फसल पूरे वर्ष ही खेत में पोषक तत्वों को ग्रहण करती रहती है। फसल पकने पर भी पौधे कुछ न कुछ मात्रा में पोषक तत्वों का चूषण करते रहते हैं। सबसे अधिक पोषक तत्वों का चूषण अंकुरण फूटने से लेकर बढ़वार के पहले एक महीने की अवधि का होता है। उत्तर प्रदेश में यह समय अप्रैल से अगस्त तक होता है। अतः इस समय तक सभी पोषक तत्व खेत में उर्वरको के रूप में पहूँच जाने चाहिए। इस अवधि के बाद नत्रजन देने से गन्ने की फसल गिर सकती है व उसके गुणों पर भी बुरा प्रभाव होता है।

## 13.13 सिंचाई

सिंचाई की संख्या, बुआई की विधि, खाद की मात्रा, मृदा एवं जलवायु के अनुसार कम व अधिक होती ह। सामान्य अवस्थाओं में उत्तरी भारत में 150 सेमी और दक्षिण भारत में 300 सेमी पानी गन्ने की फसल को पर्याप्त होता है। गन्ने की पतली जातियों को 150 सेमी व मोटी जातियों को 200 सेमी पानी की आवश्यकता होता है।

गर्मियों में सिंचाई 10-15 दिन के अन्तर पर करते हैं। वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते है व शरद ऋतु में 25-30 दिन के अन्तर में सिंचाई करते हैं। ग्रीष्मकालीन सिंचाइयों की संख्या 4-10 तक व शरदकालीन सिंचाइयों की संख्या 2-4 तक परिस्थितियों के

अनुसार करते हैं। मृदा में उपलब्ध नमी 50 प्रतिशत तक पहंुचते ही सिंचाई कर देनी चाहिए। इससे कम नमी मृदा में रहने पर उपज में गिरावट आना प्रारम्भ हो जाती है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 10-12, पूर्वी उत्तर प्रदेश में 6-8 व तराई क्षेत्र में 4-6 सिंचाइयों की संख्या हो जाती है। सिंचाई सदैव छोटी छोटी क्यारियां बनाकर देनी चाहिए। इस प्रकार सिंचाई करने से पूरे खेत की मृदा समान रूप से नम रहती है।

गन्ने में पानी की दैनिक आवश्यकता 0.85 सेमी गर्म व सूखे दिनों में तथा 0.25 सेमी ठण्डे व नम दिनों में होती है। इससे हम पानी की प्रति सिंचाई की मात्रा का अनुमान लगा लेते हैं। पानी की मात्रा गनने की जड़ों की गहराई तथा भूमि विशेष की रचना पर निर्भर करती है। अगर मृदा को अधिक गहराई तक नम रखना है तो अधिक पानी की आवश्यकता होगी। मृदा मे नमी का तल ऊपर होने व जड़े अधिक गहराई तक पहुँचती हैं तो कम पानी की आवश्यकता होती है। ब्यांत अवस्था पर सबसे अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया 10 हेक्टेयर सेमी पानी प्रति सिंचाई लगाते हैं।

जल निकास - मृदा में वायु संचार बनाए रखने के लिए जल निकास करना आवश्यक है। अधिक नमी मृदा में रहने से ऑक्सीजन की कमी हो जाती है व कार्बन डाई ऑक्साइड बढ़ती रहती है। मृदा में लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है। पौधों की जड़ों में बीमारियों का प्रकोप बढ़ता है। सर्वाधिक क्रियाशीलता द्वितीय जड़ें सड़ जाती है। इस प्रकार पौधों का रंग पीला पड़ जाता है और प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी कम जो जाती है।

इन सभी हानियों से बचने के लिए, मृदा में फालतू पानी का निकास करना अत्यन्त आवश्यक है।

## 13.14 निकाई गुड़ाई

अंकुरण बढ़ाने व खरपतवार नियंत्रण करने के लिए कभी कभी अंकुरण से पहले ही खेत की निकाई गुड़ाई करनी पड़ती है, इस प्रकार की गुड़ाई को अन्धी गुड़ाई कहते है। मृदा नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण व मृदा में वायु संचार बढ़ाने के लिए निकाई गुडाई आवश्यक है। वर्षा प्रारम्भ होने तक यह क्रिया 5-6 बार खेत मे ंकी जाती है। बैलों द्वारा चलने वाले कल्टीवेटर या फावड़ों द्वारा यह क्रिया सम्पन्न की जाती है। जहां पर खेती का आकार बड़ा है व खेती मशीन से करते हैं तो निकाई गुड़ाई का कार्य मशीनों द्वारा ही पूरा किया जाता है।

ब्यांत अवस्था तक निराई गुडाई का कार्य सम्पन्न कर दिया जाता है। बाद में छोट छोटे कल्लों को हानि पहुचनी प्रारम्भ हो जाती है अतः निकाई गुडाई बन्द कर देते हैं। वर्षा प्रारम्भ होने तक फसल पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य पूरा कर दिया जाता है। फसल पर मिट्टी चढ़ाने से फसल गिरने से भी बचती है। मिट्टी चढ़ाने का कार्य समतल विधि से बोई गई व नाली विधि से बोई गई, दोनों प्रकार की फसलों में किया जाता है। जून - जुलाई तक यह क्रिया पूरी कर दी जाती है। एक हेक्टेयर खेत में 2 सेमी. ऊँची सूखी पत्तियों (मल्च) फैलाने के लिए लगभग 100 कु. सूखी पत्तियों की आवश्यकता होती है। इससे नमी संरक्षण व खरपतवार नियंत्रण होता है। साथ ही साथ कीट पतंगों का आक्रमण बढ़ सकता है।

नलियों में बोई गई फसल में फसल में प्रत्येक सिंचाई के बाद डौलियों से मिट्टी नालियो में डालते हैं और जून तक खेत को समतल कर दिया जाता है। बाद में मेंडज़ें की मिट्टी उठाकर

नालियों वाले स्थान पर मिट्टी चढ़ाना प्रारम्भ कर देते हैं तथा नालियों के स्थान पर मेंडों का रूप बन जाता है। सितम्बर से निकले एक फुट तक के कल्लों को काट देना चाएिह। इससे गन्ने की उपज में वृद्धि होती है।

रासायनिक विधि से खरपतवारों का नियंत्रण - शरद ऋतु में बोए गए गन्ने में चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करने के लिए 2, 4 - डी चैड़ी पत्ती वाले एवं सिमेजिन व एट्राजिन घास कुल के खरपतवारों का नियंत्रण करते हैं।

गन्ने में खरपतवार नियंत्रण के लिए सैंकार (मेट्राब्यूजीन) 2 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर, अंकुरण से पहले या बेसालिन (फ्यूक्लोरेलिन) 1.0 किग्रा सक्रिय तत्व बुआई से पहले 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़कते हैं तथा मिट्टी में भली भांति मिला देते हैं। ग्रेमैक्सान (पैराक्वाट) की 0.5 किग्रा मात्रा अंकुरण के बाद 1000 लीटर पानी में घोलकर पंक्तियों के बीच छिड़कते हैं। बहुवर्षीय घासों के नियंत्रण के लिये टेफापान (डेलपान) के सक्रिय तत्व की 3 किग्रा मात्रा 1000 ली. पानी में घोलकर छिड़कते हैं।

## 13.15 गन्ने की सफल सहफसली खेती

सफल सहफसली खेती हेतु मुख्य बातें

गन्ने की समय से बुवाई

क. वर्षा समाप्त होने के बाद की बुवाई कर देनी चाहिए क्योंकि बाद में तापक्रम कम हो जाने (ठंड अधिक पड़ने पर) से जमाव भी कम होता है। गन्ने में 150 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। सहफसल की बुवाइ्र उसके उपयुक्त समय तथा शेष मात्रा सहफसल कटाई के बाद देनी चाहिए। सहफसल की बुवाई उसके उपयुक्त समय पर करना अनिवाय है।

ख. राई, आलू के बाद प्याज की सहफसली खेती 30 सेमी की दूरी पर गन्ने की दो पंक्तियों के बाद 90 सेमी का फासला (90-30-90 सेमी) की विधि काफी उपयुक्त पाई गई।

ग. गेहूं, धनिया और लहसून की खेती हेतु गन्ने की पंक्तियों में 90 सेमी दूरी रखनी चाहिए।

घ. गन्ने के टुकड़ों को जमावरोधक दवा द्वारा उपचार अवश्य करना चाहिए तथा फसल की दीमक एवं अंकुरणबेधक कीट से बचाने हेतु 6.20 ली. गामा बी.एच.सी. 20 प्रतिशत ई.सी. 1875 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से कूंडों में पेड़ों पर डालना चाहिए।

ङ. सहफसल के लिए वांछित खाद की मात्रा गन्ने के लिए दी जाने वाली खाद की मात्रा के अतिरिक्त होनी चाहिए।

2 गन्ने की किस्म का चुनाव - सहफसली खेती के लिए गन्ने की स्वीकृत जातियों जैसे को.शा. 767, को.शा. 802, को.शा. 7918, यू.पी. 1, यू.पी. 5 तथा बी उ. 91 के स्वास्थ्य एवं निरोग बीज को बोना चाहिए।

3 सहफसल की देखभाल '- बुवाई के बाद समस्त क्रियाएं जैसे सिंचाई, अंतः कर्षण क्रियाएं रोग एवं कीटों से फसल सुरक्षा आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

4 सहफसल की कटाई - जैसे ही फसल पककर तैयार हो उसकी कटाई करके तुरन्त सिंचाई करने के पश्चात् नत्रजन की शेष मात्रा दे देनी चाहिए।

5 रिक्त स्थानों की भराई - शरदकालीन गन्ने में कुछ स्थान खाली रह जाते हैं। इन रिक्त स्थानों मे ंसहफसल काटने के बाद फरवरी माह में बीज गन्ने के टुकड़ों को बो देना चाहिए।

1 गन्ने बोने के बाद आलू की बुवाई करनी चाहिए। गन्ने को 90 सेमी की दूरी वाली पंक्ति के मध्य में आलू की दो पंक्ति लेना उत्तम पाया गया है। शीघ्र पकने वाली आलू की किस्म जैसे कुफरी चन्द्रमुखी या कुफरी अलंकार तथा मध्य एवं देर से पकने वाली कुफरी सिंदूरी आदि उपयुक्त रहती हैं। आलू कका केवल 12-16 कुन्तल बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। आलू के लिए खाद के रूप में 180 किग्रा नत्रजन, 10 किग्रा फॉस्फोरेस तथा 100 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नेत्रजन 1/2 मात्रा फॉस्फोरेस एवं पोटाश की पूरी मात्रा आरम्भ में बुवाई से पूर्व देना चाहिए तथा शेष नत्रजन की मात्रा टॉपड्रेसिंग के रूप् में देना चाहिए। आलू में एक दो बार मिट्टी चढ़ाने तथा पांच से सात सिंचाई देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

2 गन्ने के साथ गेहूँ - गन्न बोने के 30-35 दिन बाद जब गन्ने का जमाव हो जाए तो गन्ने की 90 सेमी दूरी की दो पंक्तियों के मध्य गेहूँ की 3 पंक्तियां 20 सेमी की दूरी पर ली जा सकती हैं। गेहूं बोते समय 30 किग्रा नत्रजन, 45 किग्रा फॉस्फोरस तथा 30 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा टॉपड्रेंसिग में प्रयोग करनी चाहिए। गेहूं की केवल बौनी जातियां जैसे यू.पी. 319 तथा के. 816 उपयुक्त पाई गई है।

3 गन्ने के साथ तोरी या लाही - गन्ना बोने के तुरन्त बाद गन्ने की 90 सेमी दूरी वाली दो पंक्तियों के मध्य राई की शीघ्र पकने वाली किस्म वरूणा की दो पंक्तियां बोनी चाहिए। राई को 120 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस तथा 20 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है।

1 गन्ने के साथ धनिया - गन्ने की बुवाई के बाद धनिया की तीन पंक्तियां बोनी चाहिए। धनिया को 40 किग्रा नत्रजन तथा 30 किग्रा फाॅस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। धनिया की कटाई हेतु तैयार होने तक लगभग 3 सिंचाई करनी चाहिए।

2 गन्ने के साथ मूंग - गन्ने की 90 सेमी की दूरी पर बोई गई लाइनों के मध्य मूंग की दो पंक्तियों को बोना चाहिए। मूंग की इस कार्य हेतु टाईप 10 और टाईप 44 उपयुक्त किस्म हैं।

3 गन्ने के साथ उर्द - उर्द की किस्म टाइप 9 उपयुक्त है। गन्ने की पंक्तियों के मध्य उर्द को 25-30 सेमी दूरी पर दो पंक्तियां बोनी चाहिए।

4 गन्ने के साथ प्याज - जहां पर मिट्टी हल्की तथा पानी की सुविधा हो वहां प्याज की पौध गन्ने की बुवाई के तुरन्त बाद रोप देनी चाहिए।

1 गन्ना + गेहूं (HD 2428) - गन्ने की दो पंक्तियों के बीच गेहूं की दो पंक्तियां बोते हैं। इसके अतिरिक्त गेहूं व मसूर भी इस मौसम में गन्ने के साथ सफलतापूर्वक उगा सकते हैं। गेहूं की बुवाई, गन्ने की बुवाई के साथ एक माह बाद 15 नवम्बर से बाद में कीजिए।

2 गन्ना + आलू - गन्ने की दो पंक्तियों के बीच आलू की एक पंक्ति बोते हैं।

3 गन्ना + लाही - गन्ने की दो पंक्तियों के बीच लाही की एक पंक्ति बोते हैं।

4 गन्ना + मटर (सब्जी) - गन्ने की दो पंक्तियों के बीच मटर की एक पंक्ति बोते हैं।

5 गन्ना + प्याज- गन्ने की दो पंक्तियों के बीच प्याज की दो पंक्ति बोते हैं।

बसन्त ऋतु में बोई गई फसल में निम्नलिखित फसलें गन्ने के साथ उगा सकते हैं। इन फसलों की अवधि 50-60 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा गन्ने की उपज में भारी कमी आ सकती है।

1 गन्ना + मूंग - गन्ने की दो पंक्तियों के बीच मूंग की एक पंक्ति बोते हैं।

2 गन्ना + उर्द- गन्ने की दो पंक्तियों के बीच उर्द की एक पंक्ति बोते हैं।

गन्ने की फसल में निराई गुड़ाई करने की सुविधा के लिए गन्ने वाली पंक्ति में ही मूंग या उर्द की फसल उगा सकते हैं। इस प्रकार दो पंक्तियों के बीच खाली जगह में निराई गुडाइ कर सकते हैं। गन्ने की फसल में ब्यांत प्रारम्भ होने से पहले ही साथ की फसल की कटाई कर देनी चाहिये अन्यथा गन्ने का ब्यांत कम होना है और उपज में भारी कमी आ सकती है।

फरवरी - मार्च में बोई गई गन्ने की फसल के साथ मूंग या चारे के रूप में लोगिया या चीना की फसल अन्र्वर्ती फसल के रूप में उगाना लाभदायक है।

फसल चक्र - उत्तरी भारत में गन्ना साधारणतया रबी की फसल के बाद बोते हैं। गन्ने के प्रचलित फसल चक्र निम्न प्रकार है -

फसल चक्र वर्ष -

| | | |
|---|---|---|
| 1 धान - लाही, गन्ना पेड़ी(गन्ने की) | | 3 |
| 2 मक्का - गेहूं, गन्ना पेड़ी | | 3 |
| 3 कपास - मेथी गन्ना पेड़ी | | 3 |
| 4 धान - चना गन्ना पड़ी | | 3 |
| 5 मिर्च - मैथी गन्ना पड़ी | | 3 |
| 6 ज्वार (चारा) - आलू, गन्ना, मूंग- गेहूं | 3 | |
| 7 मक्का - सैंजी, गन्ना पड़ी | | 3 |
| 8 मक्का - आलू, गन्ना पड़ी | | 3 |
| 9 धान - गन्ना (शहद), पेड़ी - मक्का (बसंतकालीन) | 3 | |
| 10 कपास+मेथी गन्ना, पड़ी-मक्का या लोबिया (बसंत) | 3 | |
| 11 मक्का, गन्ना(शरद)+आलू, लोबिया या सोया बीन (बसंत) | | 2 |
| 12 धान, गन्ना (शरद)+ गेहूं मक्का (बसंत) | | 2 |
| 13 मक्का , गन्ना(शरद)+आलू, लोबिया या सोयाबीन (बसंत) | 2 | |
| 14 मक्का - आलू गन्ना+मूंग | 2 | |
| 15 गन्ना,हरी खाद- गेहूं | | 2 |

| | |
|---|---|
| 16 गन्ना, गेहूं, कपास- मटर, गन्ना | 4 |
| 17 गन्ना, गेहूं, अगेती ज्वार या मक्का- चना या मटर, गन्ना | 4 |
| 18 गन्ना, हरी खाद, गेहूं धान- मटर, गन्ना | 4 |

## 13.16 फसल की कटाई -

गन्ने की फसल की उपज और विशेष रूप से रस का गुण फसल की कटाई के समय पर निर्भर होता है। गन्ने के रस में शक्कर (1) ग्लूकोज और (2) सुक्रोज के रूप में पाया जाता है। फसल की कटाई उस समय करनी चाहिए जबकि गन्ना सुक्रोज की मात्रा सबसे अधिक हो क्योंकि यह अवस्था फसल में थोड़े समय तक रहती है अर्थात् जैसे जैसे तापक्रम बढ़ता जाता है, सुक्रोज का ग्लूकाज में परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। प्रयोगों में देखा गया है कि रस सर्वश्रेष्ठ गुण फसल की फरवरी से कटाइ्र करने पर प्राप्त होता है। फसल की कटाई, फसल के पकने पर करनी चाहिए। फसल के पकने की जांच निम्न विधियों से की जा सकती है -

1 गन्ने की पकी हुई सम्पूर्ण फसल पीलापन लिए हुए होती है।
2 पौधों की वृद्धि समाप्त हो जाती है और फूल देने वाली जातियों में फूल निकल जाते हैं।
3 गन्ने की गांठों पर उपस्थित कलियां फूल जाती है।
4 न्ने के तने को बजाने पर धातुओं जैसी ध्वनि निकलती है।
5 गांठों से तोड़ने पर गन्ना आसानी से टूट जाता है।
6 गन्ने के रस का मीठापन बढ़ जाता है।
7 गुड़ बनान पर गन्ने में गुड़ का प्रतिशत अधिक प्राप्त होता है।
8 फसल के पकने की जांच हैण्ड रिफ्रेक्टोमीटर द्वारा की जा सकती है।
9 ब्रिक्स 17 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए।

फसल के पकने पर जलवायु, बुआई के समय, गन्ने की जाति सिंचाई एवं खाद की सुविधाआंे आदि बातों का बहुत प्रभाव पड़ता है। सामान्य अवस्थाओं में उत्तर प्रदेश में गन्ने की फसल 10-12 माह में पककर तैयार हो जाती है। द. भारत में फसल 18-24 माह में पककर तैयार हो जाती है।

फसल की कटाई के लिए खुर्पी, पलकटी अथवा गंडासे का प्रयोग किया जाता है। पौधों को जमीन की सतह से काटना चाहिए। पौधों को काटने के पश्चात् हंसिया की सहायता से पौधों के तने से सूखी पत्तियां हटाकर तना साफ कर लिया जाता है और हरी पत्तियों तथा पौधों के हरे ऊपरी भाग को काटकर अलग करके जानवरों के चारे के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

पाल्सरिया नामक रसायन 4-5 किग्रा 1200 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. छिड़कने से गन्ने की परिपक्वता 6-8 सप्ताह पहले हो जाती है।

## 13.17 उपज

गन्ने की उपज देश के विभिन्न भागों में मृदा एवं जलवायु की अवस्थाओं तथा फसल की गई कर्षण क्रिया के अनुसार भिन्न - भिन्न पाई जाती है। उत्तर प्रदेश में गन्ने की औसत उपज 245 कु./हे. है।

गन्ने की तने की उपज से प्राप्त अन्य उपफल प्राप्त होने का विवरण नीचे दिया गया है -

गन्ने का रस - देशी कोल्हू में - 50-65:

पावर - 60-70%

राव - 12-65%

गुड़ - 18-20%

चीनी -12 -14%

सुक्रोज- 12-14%

गन्ने में शीरा - 3.5%

## 13.18 गन्ने की पेड़ी

गन्ने की बोई गई फसल की कटाई के बाद उसी खेत में बोई गई फसल की जड़ों से गन्ने के नए पौधे तैयार होते हैं। इन पौधों के कारण गन्ने की जो फसल प्राप्त होती है उस फसल को ''गन्ने की पेड़ी'' कहते है।

Ratoon: The emergence of new tillers from the root/ crown of a plant specially as in sugarcance, sorghum etc.

Ratoon cropping: thecultivation of an additional crop from the regrowth of stubbles of previous main crop after its harvest, thereby avoiding reseeding/replanting such as in sugarcane sorghum, rice, fodder grasses etc.

**गन्ने की पेड़ी रखने से लाभ**

1 पेड़ी की फसल के लिए खेत की तैयारी, बीज की बुआई आदि क्रियाओं के लिए खर्च नहीं करना पड़ता।

2 अगर खाद और सिंचाई की समुचित व्यवस्था रखी जाए तो उपज अच्छी प्राप्त होती है। कम समय में प्रति इकाई क्षेत्र अधिक उपज मिलती है।

3 पेड़ी की फसल में प्रति हेक्टेयर उत्पादन व्यय कम लगता है।

4 पेड़ी की फसल अपेक्षाकृत शीघ्र तैयार हो जाती है अतः चीनी के मिलों को गन्ना शीघ्र पहुंचाया जा सकता है।

5 पेड़ी की फसल की कटाई शीघ्र हो जाती है। अतः खेत शीघ्र खाली हो जाता है और उस खेत में रबी की फसल ली जा सकती है।

6 नई बोई गई फसल की तुलना में कम सिंचाई की आवश्यकता होती है क्योंकि अवधि कम होती है।

7 प्रजनन में लाभदायक है। एक ही जाति के गुणों को बनाए रखा जा सकता है।

**पेड़ी रखने से हानियां**

1 एक खेत में लगातार गन्ने की फसल खड़ी रहने के कारण पर कीटों का तथा बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है।

2 भूमि की दशा खराब हो जाती है।

3 कभी कभी पेड़ी की फसल से बहुत कम उपज प्राप्त होती है । अतः आर्थिक हानि भी होती है। अतः केवल एक बार ही और अधिक से अधिक दो बार पेड़ी रखनी चाहिए।

## 13.19 गन्ने के हानिकारक कीट - पतंगे एवं उनकी रोकथाम

**गन्ना कीट नियंत्रण**

| | |
|---|---|
| 1 दीमक (टरमाइट) | अ बी.एच.सी. 5 प्रतिशत धूल 25 से 50 किग्रा/हेक्टेयर<br>ब एल्ड्रिन 5 प्रतिशत धूल 12.5 से 25 किग्रा |
| 2 तना बेधक (शूट बोरर) | अ ग्रीष्मकाल में फसल पर 15 दिन के अन्तर पर तीन बार मेटासिड 50 प्रतिशत घोल 1 लीटर को 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। |
| 3 चोटी बेधक (टाप बोरर) | 30 किग्रा कार्बोफ्यूरान 3 जी. का प्रयोग प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी के नियंत्रण हेतु करें। |
| 4 सफेद ग्रव-बीटिल (ह्राइट ग्रव बीटिल ) | बुवाई के समय गामा बी.एच.सी. 20 प्रतिशत घोल 12.5 ली. को 1875 ली. पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से नालियों में पेड़ों के ऊपर हजारे द्वारा प्रयोग करें। |
| 5 पायरिला | इण्डोसल्फान 35 प्रतिशत घोल 0.67 ली./हे. मैलाथन 50 प्रतिशत घोल 1.25 ली./हे. नूवान 75 प्रतिशत घोल 0.315 ली/हे., वर्षाकाल में बी.एच.सी. 90 प्रतिशत चूर्ण 45 कि./हे. |

## 13.20 गन्ने की बीमारी एवं उनकी रोकथाम

गन्ने कोरोगों द्वारा किनती हानि पहुंचती है, इसका सही सही अनुमान लगाना कठिन है। हमारे देश में गन्ने में लगभग 6 बीमारियां दूसरे देशों से आई। इन सभी बीमारियों द्वारा गन्ने की उपज में लगभग 10 प्रतिशत हानि होती है। गन्ने के प्रमुख रोगों का विवरण आगे दिया जा रहा है।

फफूंदी द्वारा लगने वाले रोग

1 लाल सड़न - गन्ने का प्रमुख रोग लाल सड़न रोग कोलीटोट्राईकम फैल्केटम नामक फफंूदी से फैलता है। पहले ऊपर से तीसरा या चैथी पत्ती सूख जाती है। इसके बाद ऊपर का हरा भाग सूख जता है। गन्ने के उतक लाल हो जाते हैं तथा इन पर लम्बी सफदे धारियां पड़ जाती हैं। सूंघने पर शराब जैसी बू आती है। यह रोग मुख्य रूप से टुकड़ों द्वारा फैलता है। अतः इसकी रोकथाम के लिए काछियों (टुकड़ों) को किसी भी फफूंदीनाशक दवा से उपचारित

कर लेना चाहिए। टुकड़ों को बोने से पहले एगलाल या ऐराआन के 0.25 प्रतिशत घोल में 5 मिनट के लिए डुबो लेना चाहिए।

**लाल सड़न की रोकथाम**

1 अपने क्षेत्र की केवल स्वीकृत जातियों को ही बोना चाहिए जिसमें प्रमुख जातियां ये है - को.शा. 510, बीओ 70 बीओ 91 को.शा. 90269, को.शा. 767, को.शा. 802 को.शा. 7918, 91269 को.शा. 8118, सीओ 1007, सीओ 1336 सीओ 6239 आदि।

2 बीज स्वस्थ खेत में ही लेना चाहिए। यदि किसी भी गन्ने के टुकड़े के सिरे पर लाल रंग दिखाई दे तो उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। बीज बोने से पहले उसका उष्ण उपचार करना नितान्त आवश्यक है।

3 जैसे ही किसी पौधे में रोग के लक्षण दिखाई दें उसे उखाड़कर जला देना चाहिए।

4 रोगी खेत की पेड़ी नहीं रखनी चाहिए।

5 रोगी खेतों में दो वर्ष तक गन्ना नहीं बोना चाहिए और प्रचलित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

6 खेत में जहां तक सम्भव हो पानी नहीं भरना चाहिए क्योंकि ठहरा हुआ पानी रोग के आक्रमण को बढ़ाता है।

7 सिंचाई का पानी रोगग्रस्त खेत में स्वस्थ खेत या पौधाशाला से होकर बहता हो तो ऐसे खेतों में पानी के निकास का तुरन्त उचित प्रबन्ध करना चाहिए ताकि स्वस्थ खेत में रोग न फैले।

8 जिस खेत में रोग के लक्षण प्रकट हो गए हों उस फसल को तुरन्त काटकर पेर देना चाहिए अथवा मिल को सप्लाई कर देनी चाहिए। गन्ने के ठूंठ को उखाड़कर पताई सहित जला देना चाहिए।

1 यदि एक बार बीमारी हो जाती है तो इसका नियंत्रण कृषि रसायनों से कठिन है फिर भी पत्ती के आक्रमण को ब्लाइटाक्स 0.2 प्रतिशत के प्रयोग से कम किया जा सकता है।

2 गेरूई - तने पतले हो जाते हैं। ऊपर से काली पत्तियां निकलती हैं तथा अप्रेल के बाद पर्णविन्यास पंखे की तरह हो जाती है। प्रभावित फसल को 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम - 45 के घोल का छिड़काव लाभदायक होता है।

3 कंडुआ - यह दैहिक रोग है और पौरियों द्वारा फैलता है यह लगभग सभी गन्ना उत्पादन क्षेत्रों में लगता है। लेकिन दक्षिण में इसका प्रकोप अधिक है इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मं को.449, को. 527 और कों. 6806 उगानी चाहिए। रोगग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। रोगी फसल की पेड़ी नहीं लेनी चाहिए

4 सूखा रोग - गन्ने सूखने लगते हैं तथा पौधे पीले पड़ जाते हैं। इस रोग के बीजाणु 27 महीने तक जमीन मेंरह सकते हैं अतः इसकी रोकथाम बड़ी कठिनाई से होती है। यह रोग लाल सड़न के साथ अधिक मिलता है और फसल को क्षति पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्मं बोना और उचित फसल चक्र अपनाना तथा टुकड़ों के सिरों को एगालाल 0.5 प्रतिशत या ऐराटन 0.25 प्रतिशत के घोल में भिगोना चाहिए।

5 पौरी सड़न - यह रोग भी कवकों द्वारा लगता है और मुख्यतया इनके कारण अंकुरण प्रतिशत घट जाती है और पौधे की दूरी बढ़ जाती है। लेकिन टुकड़ों को 0.5 प्रतिशत एगालाल या 0.25 प्रतिशत एराटन के घोल में डुबाने से रोका जा सकता है।

6 शीर्ष गलन - यह रोग फफूंदी से लगता है और वर्षा ऋतु के शुरू में ही लगता है। इसके लक्षण पत्तियों के नीचले स्थान पर कुछ लाली लिए हुए फफोले दिखाई देते हैं। बाद में ये पीले से पड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कोई विशेष तरीका नहीं है क्योंकि यह रोग अधिक क्षति नहीं पहुंचाता है।

7 लाल धारी - यह रोग जीवाणु द्वारा लगता है। यह अधिक क्षति नहीं पहुंचाता है। इसमें पतली लाल धारी, पत्तियों के निचले सिरे से प्रारम्भ होकर नसो के समान्तर बढ़ती है। प्रकोप अधिक होने पर पत्तियां लाल दिखाई देने लगती हैं। इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में बोनी चाहिए।

8 ग्रासी सूट - यह एक वायरस बीमारी है। तनों का आकार घास जैसी झाड़ीनुमा हो जाता है। गन्ने पतले हो जाते हैं। पत्ती तंग व घास के आकार की हो जाती है। बुआई के समय, टुकड़े काटने वाले चाकू या जो कीट पतंगे रस चूसते हैं, कि द्वारा फैलती है। इसकी रोकथाम के लिए वायरस रोधक जाति को बोना चाहिए।

उपर्युक्त सभी बीमारियों की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए -

1 रोगरोधक (CoLK8102, Cos8432, Co62399 आदि) जातियां बोनी चाहिए।

2 बोने से पहले टुकड़ों को 22 मिनट तक गर्म पानी 50 डिग्री से. में डुबोने से बहुत सी बीमारियां नहीं लगतीं।

3 पौधों पर बीमारियों के लक्षण दिखाई देते ही, पौधे खेत से उखाड़ देने चाहिए।

**गन्ने की पेड़ी की बीमारी (स्टनटिंग)**

बहुत वर्षों से भारत में गन्ना उत्पादन वाले रोगों से पेड़ी (रटून) में स्टनटिंग बीमारी देखी जाती है। यह वायरस द्वारा होती है। यह बीमारी कौरयनिफोर्म बैक्टीरियल द्वारा दूर की जा सकती है। इस बैक्टीरिया का कोई नाम नहीं है। जब गन्ने की पेड़ी में यह बीमारी लगती है तो परिपक्व गन्ने की शाखाओं के संवहन बंडल लाल, नारंगी व पीले हो जाते हैं। यह निचली शाखाओं में पाए जाते हैं। यह 3 मिमी. के होते हैं। इसकी रोकथाम के लिए गर्म जल उपचार करते हैं 50 डिग्री से. पर एक घण्टे व रोगरोधी किस्म की बोआई करनी चाहिए। अगर गर्म हवा द्वारा उपचार करनाहो तो 54 डिग्री से. पर 8 घण्टे रखकर या नमीयुक्त हवा द्वारा 54 डिग्री से. पर 4 घण्टे तक रखने पर किया जा सकता है।

## 13.21 सारांश

गन्ने में पिछले दशकों में क्षेत्रफल उत्पादन तथा उत्पादकता की संयुक्त वृद्धि दर क्रमशः 1.81, 2.90 तथा 1.08 प्रतिशत रही हैं। भारत में गन्ने की खेती आदिकाल से की जा रही है। गन्ना उत्पादन में ब्राजील, पाकिस्तान, क्यूबा, चीन, मेक्सिकों, ब्राजील, फिलीपाइन, थायलैण्ड मारसिस, दक्षिण अफ्रीका, संयुक्त राज्य अमेरिका, पीरू, मिश्र, आस्ट्रेलिया, जावा, जिम्बावे आदि प्रमुख देश है। गन्ने की फसल के लिए उष्ण कटिबन्धीय जलवायु की आवश्यकता होती है।

गन्ने की फसल के लिए अनुकूल तापमान 25-30 डिग्री से. रहता है। गन्ने की बुवाई अक्टूबर माह एवं फरवरी माह में की जाती है। फसल में 150 किलोग्राम नाइट्रोजन,80 किलोग्राम फास्फोरस तथा 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर की दर से डाला जाता है। गन्ने की बुआई के 30 दिन पश्चात से 130 दिनों तक निराई गुडाई तथा खरपतवार की रोकथाम के लिए बहुत ही लम्बा समयावधि होती है। गन्ने की फसल की उत्पादकता को प्रभावित करते है। इसी तरह गन्ने में कीटों का प्रकोप भी अधिक होता है। जिनका नियन्त्रण करना आवश्यक हो जाता है। गन्ने की उपज 1000 क्विंटल प्रति हैक्टर के आस-पास रहती है।

## 13.22 बोध प्रश्न

1. गन्ने का उत्पत्ति स्थल हैं-
   (अ) चीन (ब) ब्राजील
   (स) भारत (द) पाकिस्तान
2. गन्ने की रोपाई के लिए आँखों की संख्या होनी चाहिए-
   (अ) 2-3 (ब) 3-4
   (ब) 8-10 (द) 10-15
3. गन्ने की फसल को किस तरह बोया जाता है? लिखिए
4. गन्ने की फसल में लगने वाले कीटों की रोकथाम के किस तरह करेंगे?
5. गन्ने की उन्नतशील किस्मों का उल्लेख कीजिए।

## 13.23 संदर्भ ग्रंथ


13. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ
14. सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा ग्प्, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर: पेज 82-135.
15. Reddy, T.Y. and Reddy, G.H.S.,2000, Principles of Agronomy, Kalyani publishers publishers, New Dehli.P.-154.
16. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 14

# कपास

**इकाई की रूपरेखा**


14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 उत्पत्ति
14.3 वितरण
14.4 वर्गीकरण
14.5 जलवायु
14.6 मृदा
14.7 खेत की तैयारी
14.8 उन्नत किस्मे
14.9 बीज दर
14.10 मिलवां खेती एवं फसल चक्र
14.11 खाद व उर्वरक
14.12 सिंचाई
14.13 खरपतवार नियंत्रण
14.14 कीट नियंत्रण
14.15 कपास में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन
14.16 उपज
14.17 साराशं
14.18 बोध प्रश्न
14.19 सन्दर्भ साहित्य


## 14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- कपास उत्पादन की उन्नत तकनिकी ज्ञात कर पाऐंगें।
- कपास की जलवायु, भूमि, बुआई, तकनीकी आदि।
- कपास में खाद की मात्रा, सिचाई आदि।
- कपास के कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

## 14.1 प्रस्तावना

कपास (Gossypium species) मालवेसी (Malvaceae) कुल की खरीफ की प्रमुख रेशेवाली नगदी फसल है जिसे 'सफेद सोना' भी कहा जाता है। कपास का राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में

महत्वपूर्ण स्थान है। इसके उत्पादन में दस लाख कृषक तथा इससे सम्बन्धित उद्योग व्यवसाय में लाखों लोगों को रोजगार मिलता है। कपास से होने वाली आय तथा इसकी उपयोगिता के कारण यह बहुत महत्वपूर्ण फसल मानी जाती है, इसका देश की आर्थिक व्यवथा में महत्वपूर्ण स्थान है। कपास से 42000 करोड़ रू. से अधिक की विदेशी मुद्रा अर्जित होती है जो देश की कुल आय की करीब 38 प्रतिशत है। मानव की प्रथम आवश्यकता भोजन के बाद द्वितीय आवश्यकता कपड़े की पूर्ति कपास ही करती है। वर्तमान समय में मनुष्य में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने के साथ ही कपास का महत्व भी बढ़ा है तथा उसकी संश्लेषित धागों से बने कपड़ो पर निर्भरता कम हुई है। आज भी वस्त्र उद्योग में कपड़ों के उत्पादन का 70 प्रतिशत भाग कपास के रेशे से ही निर्मित होता है। कपास के बिनौले को पशुओं को खिलाने एवं तेल निकालने के पश्चात् खली को खाद के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। कपास के रेशों के अलावा डंठलो से मूल्यावान उच्चकोटि के पार्टिकल बोर्ड, कारूगेटी बक्से तथा कागज भी बनाये जाते है। भारत में कपास की खेती वृहद पैमाने पर की जाती है फिर भी औसत उत्पादन मात्र 491 किलोग्राम/है. ही है। कम उत्पादन का कारण वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र होने के साथ कीट व्याधियों का अत्यधिक प्रकोप तथा उन्नत शस्य क्रियाओं का अभाव है।

**कपास के गुण**

1. **रेशे की लम्बाई -** अधिक लम्बे रेशे वाली कपास अच्छे गुणों वाली मानी जाती है। रेशे की लम्बाई 1.5-3.0 से.मी. तक होती है। रेशे की बारीकी, मजबूती, परिपक्वता, समानता आदि कपास के रेशे के गुण है।
2. **रूई का प्रतिशत-** कपास के रेशे वाले भाग को रूई कहा जाता है। फसल के उत्पादन को कपास कहते है। कपास में रेशा व बिनौले को अलग करने की क्रिया को ओटाई कहते है। देशी किस्मों का ओटाई प्रतिशत 30-43, अमेरिकन किस्मो का 30-35 व संकर किस्मों का ओटाई 32-34 होता है।

## 14.2 उत्पत्ति

हमारे देश में कपास की खेती आदिकाल से की जाती रही है। ऋग्वेद और मनुस्मृति में भी कपास का उल्लेख है। इसके प्राचीनतम अवशेष मोहन जोदड़ो की खुदाई में पाए गए है, जो लगभग 5000 वर्ष पुराने है। प्राचीन काल में भारत की यात्रा करने वाले विभिन्न यात्रियों ने भी अपने लेखों में कपास की खेती का वर्णन किया है। इन लेखों से यह पता चलता है कि लगभग 3000 वर्ष तक भारत विश्व में सूती वस्त्रों का मुख्य केन्द्र रहा है। कपास शब्द संस्कृत के कुरपासा एवं कुरपासम् से लिया गया है जो मनुस्मृति (800 ई.पू.) में वर्णित है। कपास की उत्पत्ति के बारे में निश्चित मत नहीं है कुछ विद्वानों के मतानुसार कपास का मूल स्थान अफ्रीका और एशिया तथा नई दुनिया के मध्य दक्षिणी अमेरिका है। कुछ विद्वान उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार भारत वर्ष को कपास का उत्पत्ति स्थान मानते है।

## 14.3 वितरण

विश्व में कपास उत्पादन करने वाले प्रमुख देश है - भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, चीन, ब्राजील, मिश्र मेक्सिको, सूडान आदि। क्षेत्र की दृष्टि से कपास उगाने वाले देशों में भारत का स्थान प्रथम है। भारत में 117.73 लाख हैक्टर क्षेत्र में कपास की खेती होती है जिससे 340 लाख बेलस (Bales) कपास का उत्पादन होता है। देश में कपास का सर्वाधिक क्षैत्र 41.46 लाख हैक्टर महाराष्ट में है।

राजस्थान के कपास उत्पादन करने वाले मुख्य जिले है- श्रीगंगानगर, भीलवाड़ा बांसवाड़ा व पाली। राज्य में इसकी खेती 4.50 लाख हैक्टर क्षेत्र में होती है जिससे 16 लाख टन बेलस (Bales) कपास का उत्पादन होता है। राजस्थान में कपास की उत्पादकता 604 किग्रा प्रति हैक्टर है।

## 14.4 वर्गीकरण

भारत में उगाई जाने वाली कपास को दो समूहो में विभक्त किया जाता है- (1) पुराने विश्व की कपास देशी-कपास (गोसीपियम हरबेसियम, गोसीपियम आरबोरियम) व नये विश्व की कपास- अमेरिकन कपास (गोसीपियम हिर्सुटम, गोसीपियम बारबेडेन्स)

**गोसीपियम हरबेसियम (Gossyoium herbaceum)** - इस जाति के पौधों का तना पतला व गठीला होता है जिस पर पर्याप्त मात्रा में शाखाएँ होती है। पत्तियों में साधारणतया 4-7 कटाव पाये जाते है। भारत में यह जाति पश्चिमत तट से लेकर तमिलनाडू तक उगाई जाती है।

गोसीपियम आर्बोरियम (Gossyoium arborium) :- यह जाति भारत में सबसे अधिक उगाई जाती हैं। इस वर्ग में कपास के पौधे एकवर्षीय होते है। पत्तियों में 5-7 कटाव होते है।

गोसीपियम हिर्सुटम (Gossyoium hirsutum)- भारत के सभी कपास उत्पादक प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। इस जाति के पौधे एकवर्षीय अच्छे गुणों वाले होते है।

गोसीपियम बारबेडेन्स (Gossyoium barbadense) - धागे की दृष्टि से यह कपास कच्छी होती है। यह एक लम्बे स्टेपल वाली कपास है। इसके धागे बहुत महिने होते है। इस जाति का धागा पतला व सफेद रंग का होता है।

## 14.5 जलवायु

कपास एक उष्ण कटिबन्धीय फसल है। कपास के लिए आदर्श जलवायु इस प्रकार है- औसत तापमान $15^0$ सेल्सियम तथा कम से कम 50 सेमी. समान वितरण वाली वार्षिक वर्षा, फसल तैयार होने के समय प्रचुर मात्रा में धूप, शुद्ध वातावरण और पाला रहित मौसम होना चाहिये। बीज अंकुरण के लिए कम से कम $15^0$ सेल्सियम तापमान तथा वानस्पतिक वृद्धि के लिए $15^0$-$25^0$ सेल्सियम तापमान होना चाहिये। फल पकते दिन का तापमान $15^0$-$25^0$ सेल्सियम तापमान होना चाहिये। फल पकते समय दिन का तापमान $25^0$-$30^0$ सेल्सियस तापमान सहन कर सकते है। कम या अधिक नमी होने पर फसल को नुकसान होता है। 125

से.मी. से अधिक वर्षा इसके लिए हानिकारक होती है। फूल खिलते समय मौसम साफ व हवा शान्त होनी चाहिए, क्योंकि तेज हवा के कारण इसके फूल व गूले झंड जाते है।

## 14.6 मृदा

कपास के लिए गहरी दोमट उपजाऊ व अच्छी जलधाण क्षमता वाली मृदा उपर्युक्त होती है। यह हल्की अम्लीय मृदा में भी उगाई जा सकती है जिसका पी.एच.मान 5.0-8.5 के मध्य हों । भारत में कपास मुख्यतः काली मृदा, एल्यूवियल, लाल और लेटेराइट मृदाओं में उगाई जाती है। इनमें से काली मृदा का क्षेत्र जो मध्य व दक्षिणी भारत में है सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

## 14.7 खेत की तैयारी

रबी की फसल की कटाई के बाद पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके 2-3 जुताईयाँ देशी हल से करके खेत तैयार कर लेना चाहिए। काली मृदा वाले क्षेत्रों में गर्मी के मौसम में खेत में कई बार बक्खर चलाते है जो भूमि में 7.5 से 10.0 से.मी. गहराई तक जाता है। इससे खरपतवार नष्ट हो जाते है तथ मिट्टी भुरभुरी हो जाती है। खेत को समतल करने के लिए खेत में बुवाई से पूर्व पाटा चलाया जाता है। दीमक प्रभावित क्षेत्रों में अन्तिम जुताई के समय एण्डोसल्फॉन 4 प्रतिशत या क्यूनालफॉन 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से खेत में मिलाया जाता है।

## 14.8 उन्नत किस्मे

**देशी कपास की उन्नत किस्में**

**जी कोट-11-** बांसवाडा जिले के लिए उपर्युक्त इस देशी कपास का ओटाई प्रतिशत 42-43 व रेशे की औसत लम्बाई 22.86 मिलीमीटर होती है। यह किस्म 170-180 दिन में पककर 12-15 क्विटंल प्रति हैक्टर पैदावार देती है।

**दिग्विजय -** बांसवाड़ा जिले के लिए इस उपयुक्त किस्म की 38-42 ओटाई प्रतिशत तथा उपज 7-8 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.जी.-8-** प्रदेश के श्रीगंगानगर, अजमेर, भीलवाड़ा व उदयपुर जिलो के लिए उपयुक्त इस किस्म की पैदावार 16-18 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**आर.जी.-18-**यह किस्म 160-170 दिन में पकती है तथा इसकी पैदावार 24-26 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**जी-1-** इस किस्म के रेशों की लम्बाई 0.59-0.67 इंच व औटाई प्रतिशत 37-40 है।

**विरनार -** कपास की इस देशी किस्म के रेशों की औसत लम्बाई 0.88 से 0.96 इंच, ओटाई 36 से 39 प्रतिशत एवं उच्चतम् कताई क्षमता 30 मिलीलीटर होती है। बुवाई हेतु 15 से 20 किलों बीज प्रति हैक्टेयर काम में लेवें।

**प्रताप कपि-1-** यह राज्य के असिंचित क्षेत्रों के लिए उपर्युक्त किस्म है।

**अमेरिकन कपास की किस्में -**

**बीकानेरी नरमा-** जल्दी पकने वाली इस किस्म के रेशे की लम्बाई 21-22 मि.मी. व ओटाई प्रतिशत 33-34 है। इसकी औसत उपज 16-18 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

**गंगानगर अगेती-** यह किस्म 190-200 दिन में पककर 20-22 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार देती है। इस किस्म के रेशे की लम्बाई 25.6 मि.मी. एंव ओटाई प्रतिशत 36 है।

**आर.एस.टी. 9-** इस किस्म के रेशे की लम्बाई 23.8 मि.मी. व ओटाई प्रतिशत 36 है। यह 185-190 दिन में पककर 22-24 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है।

**आर.एस.-875-** इस किस्म के रेशे की लम्बाई 27.1 मि.मी. औटाई प्रतिशत 35 व पकने की अवधि 160-170 दिन है। यह 22-25 क्विंटल प्रंति हैक्टर उपज देती है।

**आर.एस.-2013**-यह किस्म 165-175 दिन में पककर तैयार होती है तथा इसकी पैदावार 33-24 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

**एल.आर.ए-5166**-यह किस्म 180-185 दिन में पककर 20-22 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार देती है। इसके रेशे की लम्बाई 26-28 मि.मी. व औटाई प्रतिशत 36-38 है।

**संकर कपास की किस्में -**

**मरू विकास (राज एच एच-16)-** यह किस्म 170-180 दिन में पककर तैयार हो जाती है व 35-40 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है। इसके रेशे की लम्बाई 26.8 मि.मी. व औटाई प्रतिशत 35 है।

**एन एच 44-** यह किस्म 190-200 दिन में पकती है तथा 24-25 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देती है इसके रेशे की लम्बाई 25-26 मि.मी. ओटाई प्रतिशत 33-34 है।

**संकर 4 -** इस संकर किस्म के रेशे की औसत लम्बाई 1.06 से 1.10 इंच, ओटाई 34 प्रतिशत तथा उच्चतम कताई क्षमता 40 से 50 मिलीलीटर होती है। इसकी रूई रेशम सी नरम और सफेद होती है। बुवाई हेतु इसका 2.5 किलो बीज प्रति हैक्टर काम में लेवें।

**वराहलक्ष्मी -** इस संकर किस्म के रेशे की औसत लम्बाई 2.2 से 3.0 से.मी. तथा कताई क्षमता 36 मिलीलीटर होती है। बुवाई हेतु इसका 2.5 किलो प्रति हैक्टर काम में लेवें।

**बी.टी. कपास** से तात्पर्य बेसिलय थुरीन्जेन्सिस नामक जीवाणु से है। यह एक ऐसा जीवाणु है जो कपास में लगने वाली सुण्डियों में प्राकृतिक बीमारी पैदा करके मार देता है। बेसिलय थुरिन्जेन्सिस एक मिट्टी में पाये जाने वाला जीवाणु है जिसका स्टेन क्राई कपास के कीड़ो की लार्वा के लिए जहर का काम करता है। इस क्राईस्टैªन को बीज में डाला गया है इस कारण इस को बी.टी. कपास कहते है। बी.टी. कपास की निम्न किस्म है-VBCH-1006 (S) सिग्मा, कोट 33 (ओलेबीटी), NCS-138 BT, NCS-145 BG-II, MRC-6025 BT, RC-7017 BG-II ,RCH-134 BT, RCH-134 BG -II RCH-314 BT, अंकुर 2226 BG,ACH-33-2 Bg-II,KCH-707-BG-II,NAM COT-402 BT

## 14.9 बीज दर

कपास में विभिन्न परिस्थतियों पर बीज की मात्रा निर्भर करती है। कपास की किस्म बुवाई की विधि, पौध अन्तरण, मृदा नमी व बीज की शुद्धता पर बीज की मात्रा निर्भर करती है।

अमेरिकन कपास के लिए बीज दर 15-17 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, देशी किस्म के लिए 12-15 किग्रा. प्रति हैक्टर तथा संकर किस्मों के लिए 2.5-3.0 कि.ग्रा प्रति हैक्टर काम में लेते है। आर एस टी-9 किस्म के लिए बीजदर 20-25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रखते है। बीटी कपास 450 ग्राम का पेकट आधा एकड भूमि में बोया जाता है।

**बीजोपचार**

1. गुलाबी सुण्डी को नष्ट करने के लिए कपास के 40 कि.ग्रा. बीज में एल्यूमिनियम फॉस्फाईड की एक गोली रखकर उसको हवारोधी बनाकर 24 घण्टे तक धूमित करते है। ई.डी.बी. एम्प्यूल का प्रयोग भी प्रधूमन के लिए किया जा सकता है। धूमित करना संभव न हो तो तेज धूप में बीजों को पतली तह के रूप् में फैलाकर 6 घण्टे तक तपने दें।
2. बीजों के रेशे हटाने के लिए 10 कि.ग्रा. बीज के लिए 1 लीटर गंधक को तेजाब पर्याप्त रहता है। मिट्टी या प्लास्टिक के बर्तन में बीज डालकर गंधक का तेजाब डालते है और एक दो मिनट तक लकड़ी से हिलाते है। बीज काले पड़ते ही बहते हुए पानी में बीजों को धो लेते है तथा तैरते बीजों को अलग कर लेते है। इस उपचार के बाद बीजों को प्रधूमित करने की आवश्यकता नहीं होती है।
3. बीज जनित जीवाणु रोग से बचाव हेतु बीजों को 6-8 घण्टे पानी में भिगोकर सुखाने के पश्चात् 10 लीटर पानी में एक ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या 10 ग्राम पोषामाईसिन के घोल में 8-10 घण्टे तक उपचारित कर सुखा लेते है।
4. जड़ गलन रोग की रोकथाम हेतु बीजों को 2 ग्राम कार्बेण्डाजिम या 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा दोनों से उपचारित कर बुवाई करें।

**बुवाई का समय एवं विधि**

कपास की बुवाई का उपयुक्त समय अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न- भिन्न है परन्तु 10 अप्रेल से 31 मई तक बुआई का कार्य अवश्य सम्पन्न हो जाना चाहिये। बुवाई कतारों से करें। अमेरिकन किस्मों में कतार से कतार की दूरी 60 सेमी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 से.मी. रखनी चाहिये। देशी किस्मों में कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 30 से.मी. रखनी चाहिये। संकर किस्मों में कतार से कतार की दूरी 150 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सेमी रखे। बीटी कपास में कतार से कतार से कतार की दूरी 1.9 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 से.मी. रखे। श्रीगंगानगर क्षेत्र में देशी कपास की बुवाई का उपर्युक्त समय अप्रैल के प्रथम सप्ताह से मई के प्रथम सप्ताह तक तथा अमेरिकन कपास की बुवाई का समय 15 अप्रैल से 15 मई तक है। अजमेर, उदयपुर, भीलवाड़ा व कोटा खण्ड में 10 मई से 31 मई तक कपास की बुवाई कर ली जानी चाहिए। बाँसवाड़ा क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र में बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में कर देनी चाहिये। कतार से कतार व पौधे से पौधे की दूरी तालिकानुसार करनी चाहिए-

**तालिका- कपास की कतार से कतार व पौधे से पौध की दूरी (दूरी से.मी. में)**

| खण्ड | अमेरिकन किस्मे | | देशी किस्मे | | संकर किस्में | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कतार | पौध | कतार | पौधे | कतार | पौधे |
| अजमेर | 60 | 45 | 45 | 30 | - | - |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| गंगानगर | 75 | 30 | 60 | 30 | 150 | 60 |
| भीलवाड़ा | 60 | 45 | - | - | - | - |
| जोधपुर | 60 | 45 | 45 | 30 | - | - |
| कोटा | 60 | 45 | 45 | 30 | 150 | 60 |
| उदयपुर | 90 | 45 | 60 | 30 | 150 | 60 |

## 14.10 मिलवां खेती एवं फसल चक्र

कपास की कतारो के बीच एक कतार वैसाखी मूंग की बोना लाभप्रद है। बारानी क्षेत्र में अन्तर्शस्य अपनाना उपयुक्त है। जुड़वा कतार विधि से अन्तर्शस्य अधिक लाभप्रद रहती है। सिंचित क्षेत्र में निम्न फसल चक्र लाभप्रद व पैदावार में वृद्धि करने वाले पाया गया है।

कपास - मसूर

कपास - मेथी-गन्ना

कपास - गन्ना-पेड़ी

हरीखाद - गेहूँ-कपास-गन्ना।

कपास - गेहूँ (एक वर्ष)

मक्का - गेहूँ कपास - मैथी (दो वर्ष)

मक्का - सरसों - कपास - मैथी (दो वर्ष)

## 14.11 खाद व उर्वरक

फसल की बुवाई 3-4 सप्ताह पूर्व 8-10 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट प्रति हैक्टर की दर से खेत में हल चलाकर भली भांति मिला देनी चाहिए। कपास की अमेरिकन किस्मों में 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 45 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से देना चाहिए। देशी किस्मों में 50 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 25 किलो फॉस्फेट की आवश्यकता होती है। पोटाशयुक्त उर्वरक मिट्टी परीक्षण के आधार पर देना चाहिए। कपास की संकर किस्मों 100 किलो नत्रजन व 40 से 50 किलो फॉस्फेट प्रति हैक्टेयर देवें। फॉस्फोरस और पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा व नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के समय ऊर कर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा फूलों की कलियाँ बनते समय देनी चाहिए। पोटाश उर्वरक मिट्टी परीक्षण के आधार पर देवें। बीटी कपास की फसल कम समय में पककर तैयार होती है तथा उपज भी अधिक प्राप्त होती है इसलिये फसल को भरपूर पोषण की आवश्यकता होती है अतः मृदा परीक्षण कराकर उर्वरक प्रयोग करें। फिर भी कृषक निम्न प्रकार प्रति हैक्टर के हिसाब से उर्वरक प्रयोग करें।

| | |
|---|---|
| बोआई के समय | 125 किलोग्राम डीएपी + 38 किग्रा यूरिया + 62 किग्रा म्यूरेट आॅफ पोटाश+ 25 किग्रा जिंकसल्फेट |
| बोआई के 30 दिन बाद | 85 किग्रा यूरिया |
| बोआई के 60 दिन बाद | 85 किग्रा यूरिया + 60 किग्रा म्यूरेट आॅफ पोटाश |

आवश्यकता पड़ने पर मृदा विशेषज्ञ की सलाह लेकर सूक्ष्म तत्वों या कमी वाले पोषक तत्वों का छिड़काव करें।

## 14.12 सिंचाई

बुवाई के बाद फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करे। उर्वरक के बाद और फूल आते समय सिंचाई अवश्यक करें। अंकुरण के बाद पहली सिंचाई 20 से 25 दिन में कीजिये। इससे पौधों की जड़े ज्यादा गहराई तक बढ़ती है। इसी समय पौधों की छंटनी भी कर दीजिये। तत्पश्चात् वर्षा नही होने पर डोडे बनने तक आवश्कतानुसार सिंचाई करें। बोआई से 50-60 दिन तक कम पानी की आवश्यकता होती है परन्तु अकुंरण, पौधा वृद्धि, फूल आने के समय, डेन्डू बनने के समय तथा डेन्डू विकास के समय सिंचाई सुनिश्चित करें। कपास की फसल में 3 से 4 सिंचाई जरूरी है। पहली सिंचाई देरे से करे व गुलर और फूल आते समय सिंचाई अवश्य करे। कपास की बुवाई के बाद श्रीगंगानगर में 6-7 तथा जोधपुर में 4-5 तथा मेवाड़ क्षेत्र में 3-4 सिंचाई करनी चाहिए। श्रीगंगानगर क्षेत्र में 30 दिन व अन्य क्षेत्रों में 20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। दो फसली क्षेत्र में 15 अक्टूबर के बाद सिंचाई नही करें। कपास पानी के जमाव के प्रति संवेदनशील है अतः अतिरिक्त पानी/जमाव पानी का निकास करें । ड्रिप सिंचाई पद्धति से कपास की उपज में वृद्धि होती है। अतः बूंद बूंद सिंचाई को अपनाए।

## 14.13 खरपतवार नियंत्रण

कपास में खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है अन्यथा पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट हो जाते है तथा मिट्टी भुरभूरी हो जाती है। पहली गुड़ाई जब पौधे 10-12 से.मी. ऊँचे हो जाये तब करनी चाहिए। इसके बाद एक-एक माह के अन्तर पर दो निराई-गुड़ाई और करनी चाहिए। बुआई के 8-9 सप्ताह बाद तक फसल को खरपतवार से रहित रखना चाहिये इसके लिये 2-3 निराई गुड़ाई करना पर्याप्त करता है। खरपतवारों की अधिक समस्या होने पर रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई पूर्व फ्लूक्लोरेलिन या डाइयूरोन 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर मिट्टी में मिला देना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिए कि मिट्टी में पर्याप्त नमी हो। खरपतवारनाशक पैडिमैथालिन 750-1520 ग्राम प्रति हैक्टेयर अथवा एलाक्लोर 2-2.5 किलो सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें। फसल अंकुरण से पूर्व 500 ग्राम आक्सीडायजोन प्रति हेक्टर छिड़काव करें। जहां कपास के साथ मक्का या अन्य फसल हो वहां खरपतवार नाशक का प्रयोग न करें।

## 14.14 कीट नियंत्रण

**रस चूसने वाले कीट**

**हरा तेला -** इसके वयस्क पत्ती की निचली सतह से रस चूसता है जिससे पत्ती नीचे की तरह मुड़ जाती है और कपनुमा बन जाती है।

**माहूँ -** निम्फ तथा वयस्क समुह में पाये जाते है। ये पत्ती, तने, पुष्प आदि से रस चूसते है तथा शहदनुमा पदार्थ अपने शरीर के बाहर निकालते है जिससे पत्ती काली पड़ जाती है व फफंूदी का आक्रमण बढ़ जाता है।

**थ्रिप्स -** वयस्क कीट भूरे रंग का कटे पंख वाला होता है निम्फ व वयस्क पत्तियों का रस चूसते है जिसके कारण पत्ती के किनारे मुड़ जाते है। अंत में पत्तियां सुखकर गिर जाती है।

**कपास का लाल कीड़ा -** निम्फ तथा वयस्क पत्तियों तथा हरे गुलरो का रस चूसते है तथा कपास के रेशों को अपने मल द्वारा खराब कर देते है।

रस चूसक कीडों के नियत्रंण हेतु निम्न कीटनाशक प्रयोग करें।

1. चैपा, सफदे मक्खी, माहू व तेला - इमिडाक्लोरप्रिड 0.4 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ छिडकाव करें।
2. सफदे मकखी - एसीटामिप्रिड 0.2 ग्राम/लीटर पानी
3. मीलीबग-प्रोफेनोफॉस 2 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करें।

**पत्ती भक्षक -**

**तम्बाकू की सुण्डी -** पंतगो के अगले पंख सुनहरे, भूरे रंग के सफेद धारीदार होते है सुण्डियाँ मैले हरे रंग की होती है जिनके शरीर पर पीलंे, हरे, नारंगी रंगो की लम्बवत् धारियाँ होती है। उदर के प्रत्येक खण्ड के दोनों और काले धब्बे होते है। नवजात इल्लियाँ पत्तीयों के क्लोरोफिल को खाती है।

**अर्धकुण्डलन सुण्डी -** हरे रंग के वयस्क पंतगे पत्ती के निचले भाग पर अण्डे देते है। सुण्डियाँ अर्धकुण्डलक होती है तथा पत्तों को किनारे से मध्यशिरा की ओर खाती है और पत्तियों को जालीदार बना देती है।

**कपास का पत्ती मोड़क -** वयस्क पंतगे पत्ती को निचली सतह पर अण्डे देते है। इल्ली एक पत्ती को ऊपर से या मध्य भाग से मोड़क्र अथवा 2-3 पत्तियो को आपस में चिपकाकर अन्दर से ही पर्णरहित पदार्थ को खाती है।

**गूलर की सूण्डी -**

**अमेरिकन बॉल वर्म:-** वयस्क मादा पंतगा पौधों के कोमल भागों पर अण्डे देते है। सुण्डियां अक्सर हरे भूरे रंग की होती है तथा कपास के डोडो के अन्दर छेद कर आधी बाहर व आधी अन्दर रहती है। सुण्डी से ग्रसित गुलर जमीन पर गिर जाते है।

**गुलाबी सुण्डी -** काले रंग की वयस्क मादा पौधे के कोमल भागो पर अण्डे देती है। गुलाबी सुण्डी गुलर को खाती है। गूलरों के अन्दर सुण्डी बीज के अन्दर जाकर प्रायः दो बीजों को जोड़कर कोष बनाकर रहती है। चित्तीदार सुण्डी-इससे ग्रसित पुष्प्प तना एव गूलर अविकसित अवस्था में ही गिर जाते है वयस्क पंतगे पुष्पों पर अण्डे देते है। हरे सफेद रंग की सुण्डियाँ जिनके शीर्ष भाग पर काले रंग के धब्बे होते है।

**पौध-व्याधी संरक्षण:-** मुख्य रोग जीवाणु अंगमारी व जड़ गलन है। इनके नियंत्रण हेतु रसायनों का छिड़काव निम्नानुसार करे-

**प्रथम छिड़काव -** एक लीटर डाईमिथोएट या मिथाइल डिमेटोन या सवा लीटर मेलाथियान प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

**दूसरा छिड़काव -** दूसरा छिड़काव जुलाई के दूसरे सप्ताह से अगस्त प्रथम सप्ताह तक फिर कीजिये। उपयुक्त दवाओं के अतिरिक्त क्यूनालफॉस एक लीटर या मोनोक्रोटोफॉस एक लीटर/हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।

**तीसरा छिड़काव -** परमेथिन 400 मि.ली. या फेनवेलरेट 450 मि.ली. या क्यूनालफॉस सवा लीटर या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.5 कि.ग्रा. या एण्डोसल्फॉन डेढ़ लीटर या सेवीमोल 3 कि.ग्रा. या मोनोक्रोटोफॉस एक लीटर या क्लोरोपायरीफॉस एक लीटर का छिड़काव प्रति हेक्टर की दर से अगस्त के पहले से तीसरे सप्ताह में करें। इसे 15 से 20 दिन के अन्तर पर दोहराये।

**चैथा छिड़काव -** सितम्बर के दूसरे सप्ताह या तृतीय सप्ताह में 2.5 कि.ग्रा. कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण या तीन लीटर सेवीमोल 40 प्रतिशत या 1.4 लीटर फोसालाॅन या मोनोक्रोटोफॉस या एक लीटर क्यूनालफॉस या क्लोरोपायरीफॉस एक लीटर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

**नोट -** तीसरे, चैथे व पांचवे छिड़काव में लगातार सिन्थेटिक पाइरेथ्रोइड (परमेथ्रिन, फेनवेलरेट) का प्रयोग न करे बल्कि प्रयोग तीसरे व पांचवे छिड़काव में ही करे। बालवर्मकी प्रभावी रोकथाम करने के लिये कपास की फसल लेने के तुरन्त बाद इसके डंठल जला दीजिये। इण्डोक्साकार्ब एक मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल का छिड़काव करे। साथ की गुलाबी सुण्डी के लिये इसके अतिरिक्त स्पाइनोसेड की एक मि.ली. मात्रा 3 लीटर पानी में घोलकर छिड़के।

**ब्लेक आर्म (जीवाणु अंगमारी) -** दूसरे, तीसरे एवं चैथे छिड़काव में काम में ली जाने वाली दवा के साथ प्रति हैक्टर 200 ग्राम पोषामाईसिन तथा 2 कि.ग्रा. तांबयुक्त फफूंदनाशी दवा मिलाकर छिड़काव करे।

**जड़ गलन रोग -** बीजोपचार करे। रोग ग्रसित खेतों में कपास और मोठ की मिश्रित फसल लेवें। रोग का प्रकोप अधिक हो तो रोगग्रस्त खेतों में दो वर्ष तक कपास की फसल न लें।

**संकर कपास (सिंचित) -** संकर कपास की फसल में पौध संरक्षण हेतु पहले दो छिड़काव के स्थान पर किसी भी दानेदार कीटनाशक दवा जैसे फोरेट 10 कि.ग्रा./हैक्टर से भूमि उपचारित कर ले। साथ ही पौध संरक्षण हेतु अन्य किस्मों पर जो कीटनाशक दवाये चैथे एवं पांचवे छिड़काव में इस्तेमाल की जाती है, उन्हीं का छिड़काव दिये गये विवरण के अनुसार नवम्बर के प्रथम तथा तीसरे सप्ताह में किया जाना आवश्यक है।

**अमेरिकन कपास (असिंचित) -** प्रथम छिड़काव- ग्रे-वीविल, जैसिड़, सफेद मक्खी, तेला, पत्ती मोड़क आदि कीड़ो की रोकथाम के लिए जुलाई के आखिरी अथवा अगस्त के पहले सप्ताह में फार्मोथियान या डाईमिथोएट या मिथाइल डिमेटोन एक लीटर या मेलाथियान सवा लीटर या मिथाइल पैराथियान चूर्ण 2 प्रतिशत 20 कि.ग्रा. का प्रति हेक्टर छिडकाव/भुरकाव करें।

**द्वितीय छिड़काव -** बालवर्म, जैसिड़, ग्रे-वीविल आदि की रोकथाम के लिये अगस्त के अन्तिम अथवा सितम्बर के पहले सप्ताह में मोनोक्रोटोफॉस एक लीटर या कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 कि.ग्रा. या फेनेट्रोथियान 1.25 लीटर या एण्डोसल्फाॅन 1.5 लीटर का छिड़काव करें। इसके साथ 8 ग्राम स्टेप्टोसाइक्लिन या 20 ग्राम पोषामाईसिन भी मिलाइये।

**तृतीय छिड़काव -** सितम्बरब के तीसरे या चैथे सप्लाह में द्वितीय छिड़काव कपास के लिये दिये गये अन्तिम दो छिड़काव कर देना ही काफी रहता है।

**तिरक रोग-** यह एक दैहिक बीमारी है। इस बीमारी में पत्तियाँ पीली व बाद में लाल होकर गिर जाती है। गूलर आकार में छोटे होते है व अपरिपक्व गूलर में दरार पड़ जाती है। यह रोग फल व

फूल के समय सही मात्रा में उर्वरक उपयोग, समय पर सिंचाई व पौध संरक्षण अपनाने पर काफी हद तक कम हो जाता है।

## 14.15 कपास में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

- खेत की गहरी जुताई करके गर्मी में खुला छोड देना चाहिये। जिससे कीट तथा रोग के अण्डे व बीज नष्ट हो जाये।
- गंधक के अम्ल द्वारा उपचारित प्रतिरोधी किस्मों के प्रमाणित बीज ही उगाने चाहिये। कपास का पत्ती मोड़क विषाणु रोग जिस क्षेत्र में आता हे वहाँ आर.एस.-875, एल.एच.एच.-144 तथा एल.आर.के. - 516 जैसी प्रतिरोधी किस्म का बीज ही उपयोग में लाना चाहिये।
- उचित सस्य क्रियायें अपनाये, जिसमें कि भूमि की जुताई, स्वस्थ बीज, पानी तथा खाद पर विशेष ध्यान देना चाहिये।
- कपास की फसल एक ही खेत में बार-बार नहीं लगानी चाहिये एवं कपास की फसल के आप-पास कुष्माण्ड कुल की सब्जियां तथा बैंगन-भिण्डी परिवार की फसल नहीं उगाये।
- फसल बुवाई से 8-9 सप्ताह बाद तक फसल को खरपतवार रहित रखना चाहिये। खरपतवारों की ज्यादा समस्या हो तो पैडिमैथालिन 1.0-1.25 किलो सक्रिय तत्व अथवा एलाक्लोर 2.0-2.5 किलो सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें। परन्तु ध्यान रहे कपास के साथ मक्का या अन्य फसल न हो।
- रस चूसने वाले कीड़ो के बचाव हेतु ईमीडोक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 5-8 ग्राम प्रति किलो की दर से बीजापचार करना चाहिये।
- ट्राइकोडर्मा विरिड़ी 4 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिये जिससे जड़ गलन तथा उकठा रोगों की रोकथाम होगी।
- मक्का तथा लोबिया को फसल की बाड़ पर लगाना चाहिये जो कि परजीवी व परभक्षी कीटों की संख्या बढ़ाने में सहायक है।
- चिड़ियों को आकर्षित करने के लिये सिटेरिया (कांगणी) एक बांस के डण्डे खेत में लगाने चाहिये। 9-10 लाइन कपास के बाद में एक लाइन सिटेरिया की लगावे।
- पांच फेरोमोन ट्रेप प्रति हेक्टेयर खेत में लगावे जिससे कीटों की निगरानी आसानी से की जा सके।
- रस चूसने वाले कीड़ो की रोकथाम के लिये 5 प्रतिशत नीम अर्क के घोल का छिड़काव करना चाहिये।
- परजीवी कीट ट्राइकोगामा किलोनीस के 1.5 लाख अण्डे प्रति हेक्टेयर के हिसाब से फसल बुवाई के 45 दिन बाद 7 से 10 दिनों के अंतर से तीन बार छोड़ना चाहिये।
- अमेरिकन बालवर्म तथा तम्बाकू की इल्ली के लिए विशेष एन.पी.वी. 250-400 एल.ई. घोल प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करें।
- एन.पी.वी. से रोकथाम न हो पाये तब जीवाणु बेसिलस थ्यूरिजिनेन्सिस 1 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिये। तदोपरान्त नीम कीटनाशक उपयोग में लाना चाहिये।

- सभी उपायों की अपनाने के बाद भी कीड़े नियंत्रित ही होते हो तब निम्न दवाओं का प्रयोग करें।

**प्रथम छिडकाव -** एक लीटर हाइमिथोएट 30 ई.सी. या मिथाइल डिमेआन 25 ई.सी. या फार्मेथियॉन 25 ई.सी. या सवा लीटर मैलाथियॉन 50 ई.सी. में से किसी एक दवा का छिड़काव कीट दिखने पर करें।

**दूसरा छिड़काव -** इस चूसने वाले कीड़ो के लिये दूसरो छिड़काव जुलाई के दूसरे से अगस्त प्रथम सप्ताह में फिर करे। उपयुक्त दवाओं के अतिरिक्त मिथाइल पैराथियॉन 2 प्रतिश चूर्ण 20-25 किलो या मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू एस.सी. या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. एक लीटर काम में लेवें।

**तीसरा छिड़काव -** 1.25 लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या 1.25 लीटर एण्डोसल्फॉन 35 ई.सी. या एक लीटर मानोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू एस.सी. या 1 लीटर क्लोरपायरोफॉस 20 ई.सी. का छिड़काव प्रति हेक्टेयर की दर से अगस्त के पहले से तीसरे सप्ताह में करें।

**चैथा छिड़काव -** सितम्बर के प्रथम से तृतीय सप्ताह में 2.5 किलोग्राम कार्बेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण, या एक लीटर क्यूनालफॉस 25 ई.सी. या मानोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यू.एस.सी. या 450 मिलीमीटर फेनवलरेट 20 ई.सी. या सवा लीटर एण्डोसल्फॉन 35 ई. सी. या 1 लीटर क्लोरोपायरोफॉस का प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करें।

**पांचवा छिड़काव -** यदि कीटो का प्रकोप अधिक दिखाई दे तो अक्टूबर में उपर्युक्त में से किसी एक दवा का छिड़काव करे व ध्यान रखे एक ही प्रकार की दवाई का प्रयोग बार-बार नही करे।

**कपास की चुनाई -** कपास की चुनाई विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग समय में होती है क्योकि कपास में काफी लम्बी अवधि तक फूल आते रहते है। सभी पौधों पर फूल एक साथ नहीं आते है तथा प्रत्येक पौधे पर सारे फूल एक साथ नहीं आते है। जब कपास के डोडे काफी संख्या में पककर पूरे खिल जाये तो उनकी चुनाई करनी चाहिए। डोडो की चुनाई कई बार की जाती है। साधारणतया चुनाई अक्टूबर से दिसम्बर तक तथा कभी-कभी जनवरी के प्रथम सप्ताह तक की जाती है। साधारणतयाः कपास में पांच बार चुनाई करते है, यह कपास की किस्म पर निर्भर करता है। चुनाई प्रातःकाल पौधों पर औस पड़ी हो उस समय नहीं करनी चाहिए। चुनाई प्रातः 9-10 बजे प्रारम्भ करना उचित रहता है। कपास में बिनौले और रूई को अलग करने की विधि को ओटाई कहते है। हाथ चरखी या शक्तिचलित मशीन से ओटाई की जाती है। बीटी कपास की फसल 155 से 180 दिन में पककर तैयार हो जाती है अतः डेंडू खिलने के बाद 2-3 तुड़वाई कर लें। फसल तुडवाई के बाद पौधे के डंठलो को खेत में खड़ा नहीं रहने दें।

## 14.16 उपज

कपास की औसतन उपज 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टर है जिसमें 30-35 प्रतिशत रूई मिल जाती है। कपास की मिश्रित फसल भी ली जाती है। उदाहरणार्थ -

| मिश्रित फसल | कपास की उपज (क्विंटल/ है.) | अन्य फसले की उपज (क्विंटल/है.) |
|---|---|---|
| कपास + मूंगफली | 8-9 | 3-4 |
| कपास + मूंग | 8-9 | 2-3 |

| | | |
|---|---|---|
| कपास + ज्वार | 7-8 | 5-7 |
| कपास + अरहर | 8-9 | 2-3 |

## 14.17 साराशं

कपास की खेती के लिए गहरी उपजाऊ व अच्छी जल धारण वाली मृदा उपर्युक्त रहती है। उन्नत किस्मे- देशी: जी कोटा-11, दिग्विजय, आर.जी.-18, जी-1, विरनार, प्रताप कृषि-11 अमेरिकनः बीकानेरी नरमा, गंगानगर अगेती, आर.एस.टी. 9, आर.एस.-875, आर.एस.-810 आर.एस.-2013, एल.आर.ए. 5166। संकरः मरू विकास, एन.एच.एच.-44 संकर-6, संकर-4, वाराहलक्ष्मी। बीजदर - अमेरिकन : 15-17 कि.ग्रा./हे. देशी 12-15 कि.ग्रा./हें. व संकर 2.5-3.0 कि.ग्रा./है.। बुवाई का समय- अप्रैल से मई माह तक। उर्वरक - अमेरिकनः 75 नाइट्रोजन व 45 फॉस्फोरस/है, देशीः 50 नाइट्रोन व 25 फॉस्फोरस/हैं. व संकर 100-120 नाइट्रोजन व 40-50 फॉस्फोरस/ हैं.। उपज 18-20 क्विंटल/हैक्टर। ओटाई प्रतिशत-30-35।

## 14.18 बोध प्रश्न

1.0 कपास की उन्नत किस्में कौन-कौन सी है ?

2.0 बी.टी. कपास क्या है ?

3.0 कपास में सिचाई कब -कब करनी चाहिए ?

4.0 कपास एकीकृत नाशीजीव प्रबंन्धन की जानकारी दीजिए ?

## 14.19 सन्दर्भ साहित्य


15. Singh, Chhidda. 1999.,Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Delhi, pp : 112-125.
16. Singh, S.S.,1993, Crop Management under lirrigated and Rainfed Conditions,Kalyani Publishers,New Delhi,pp : 113-123.
17. ICAR, New Delhi, 1980,Handbook of agriculture,Indian Council of Agricultural Resrch,New Delhi.

# इकाई 15

# तिलहनी फसल

**इकाई की रूपरेखा**

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 सरसों या तोरिया
15.3 अलसी
15.4 सूरजमुखी
15.5 कुसुम या कुसुम्भा
15.6 मूँगफली
15.7 अण्डी, अरण्डी या रेंड
15.8 तिल
15.9 सोयाबीन
15.10 सारांश
15.11 बोध - प्रश्न
15.12 संदर्भ ग्रन्थ

## 15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- विभिन्न तरह के तिलहन फसलें, उनके उत्पादन की उन्नत तकनिकी ज्ञात कर पाऐंगें।
- तिलहन फसल की जलवायु, भूमि, बुआई, तकनीकी आदि।
- तिलहन फसल में खाद की मात्रा, सिचाई आदि।
- तिलहन फसल के कीट एवं रोग तथा उनका नियंत्रण

## 15.1 प्रस्तावना

देष की अर्थव्यवस्था में तिलहनी फसलों का विषेष योगदान है। भारत विष्व का तीसरा सबसे बड़ा तिलहन उत्पादक देष है। विष्व के कुल क्षेत्रफल में 19% तथा उत्पादन में 9% का योगदान तिलहनी फसलों से आता है। भारत में लगभग ढ़ाई करोड़ हैक्टेयर में तिलहन की खेती होती है। जिससे लगभग 10 करोड़ टन तिलहन का उत्पादन होता है। प्रति व्यक्ति खाने योग्य तेल की उपलब्धता 8.1 किलो / वर्ष है, जो धीरे-धीरे कम होती जा रही है, कारण'' उत्पादन हास'' तेजी से हो रहा है। तिलहनी फसलों की उत्पादकता 935 किलो / हेक्टेयर है, जबकि विष्व की औसत उत्पादन 1632 किलो / हेक्टेयर है।

## 15.2 फसल - सरसों या तोरिया

**वानस्पतिक नाम -** ब्रैसिका स्पीसीज (कुल - कूसीफेरी)

**उत्पत्ति स्थान -** चीन

**महत्व:-** बीज, जानवरों के हरे चारे एवं खली, तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। यह विटामिन ए का प्रमुख स्त्रोत है

**जलवायु:-** सरसों की फसल के लिये शुष्क और ठण्डी जलवायु की आवष्यकता होती है। कम वर्षा वाले स्थानों पर शुष्क फसल के रूप में सरसों की फसल सफलतापूर्वक उगाई जाता है।

**भूमि:-** सरसों और तोरिया की खेती हल्की रेतीली से लेकर भारी मटियार भूमियों तक जा सकती है। जिस भूमि में सरसों की खेती की जाये उसमें जल निकास का उचित प्रबंध होना आवष्यक है।

**जातियाँ:-** पूसा कल्याणी, टा. 151, क्रान्ति, कृष्णा लाहा 101, आर.एल.18 वरूण, टा.9, टा. 36, PT. 303

**भूमि की तैयारी:-** पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व बाद में 4-5 जुताइयाँ हैरो या देषी हल से।

**बीज दर:-** 1 शुद्ध फसल बोने में 4-5 क्रिग्रा./हे एवं मिश्रित फसल उगाने में 2-3 क्रिग्रा./हे

**अन्तरण:-** शुद्ध फसल में पंक्तियों के बीज अन्तरण 25-60 से.मी एवं पौधो के बीज 10-15 से.मी

**बुबाई:-** सरसों की बुबाई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक, छिटकवा एवं लाइन दोनों विधियों के द्वारा की जाती है।

**खाद एवं उर्वक:-** सधारणतया क्रमष N 60.90, P2O 30.40 एवं K मृदा परीक्षण के अनुसार देना चाहिये।

**सिंचाई:-** आवष्यकतानुसार पहली सिंचाई बुबाई के 30 दिना बाद 4-6 पत्तिया निकलने पर एवं दूसरी फूल आते समय 70-75 दिन बाद अवष्यक करना चाहिए।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** आवष्यकतानुसार निराई-गुडाई समय-समय पर करनी चाहिये। रासायनिक विधि से आइसोप्रोट्यूरान या एलाक्लोर 1Kg/800.1000 लीटर पानी से छिडकाव करें।

**मिश्रित खेती:-** सरसों मुख्यतः गेहूँ, जौ, चना, मसूर आदि के साथ मिलाकर बोया जाता है।

**कटाई:-** सरसों वर्ग की सभी फसलों की कटाई 90-150 दिन बाद की जाती है। फसल पकने पर पत्तियाँ एवं फलिया पीली पड़ जाती है।

**उपज:-** मिश्रित फसल 2-3 कु./हे एवं शुद्ध फसल 10-15 कु./हे.।

**भण्डारण:-** दानों में नमी की मात्रा 7-10: रखकर भण्डार में रखना चाहिए।

**हानिकारक कीट:-** मस्टर्ड सा फ्लाइ (आरा मक्खी), एफिड या माहू एवं विहार की रोमिल सूँडी।

**रोग:-** अंगमारी सा झुलसा, मृदु रोमिल फफूँद एवं मौजेक इसके अलावा इसमें सफेद गेरूई, चूर्णी फफूँद एवं एन्थ्रेक्नोज आदि।

## 15.3 फसल - अलसी

**वानस्पतिक नाम -** लाइनम यूसीटैटिसिमम (कुल-लाइनेसी)

**उत्पत्ति स्थान :-** फारस की खाडी से लेकर कैस्पियन सागर के मध्य या अफगास्तिान ऐसी मान्यता है।

**महत्व:-** रेषा, बीज , खली , तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है।

**जलवायु:-** अलसी की फसल के लिये शुष्क और ठण्डी जलवायु एवं 80 से 100 सेमी. वार्षिक वर्षा की आवष्यकता होती है।

**भूमि:-** असली की खेती हल्की रेतीली से लेकर मटियार, दोमट एवं उचित जल निकास भूमि में होती है।

**जातियाँ:-** जे.एल.एस (जे) 1, जवाहर 17, जवाहर 552, जवाहर 7, जवाहर 18, टा. 397, श्वेता, सुभ्रा, गौरव, मुक्ता आदि उन्नतषील जातियाँ उपयुक्त रहती है।

**भूमि की तैयारी:-** पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व बाद में 4-5 जुताइयाँ हैरो या देषी हल से करते है एवं जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिये।

**बीज दर:-** शुद्ध फसल बोने में 15-20 क्रिग्रा./हे एवं मिश्रित फसल उगाने में 8-10 क्रिग्रा./हे

**अन्तरण:-** मिश्रित फसल में 1-2 मीटर एवं शुद्ध फसल 25-30 से.मी में पंक्तियों में अन्तरण

**बुबाई:-** छिटकवा एवं लाइन दोनों विधियों के द्वारा 7 अक्टूबर से 13 नवम्बर तक 3-4 सेमी गहराई में की जाती है।

**खाद एवं उर्वक:-** सधारणतया N P K मृदा परीक्षण एवं आवष्यकतानुसार देना चाहिये।

**सिंचाई:-** आवष्यकतानुसार पहली सिंचाई 4-6 पत्तिया निकलने पर एवं दूसरी फूल आते समय अवष्यक करना चाहिए।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** बोने के 30-35 दिन बाद पहली निराई-गुडाई की जाती है। रासायनिक विधि से खरपवार नियंत्रण 2,4डी का अमाइन लबण या एम.सी.पी.ए. 0.50 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से 800 लीटर पानी से छिडकाव करें।

**मिश्रित खेती:-** सरसों मुख्यतः गेहूँ, जौ, चना, आदि के साथ मिलाकर बोया जाता है।

**कटाई:-** दाने वाली फसल की कटाई मध्य मार्च से लेकर अप्रैल के प्रारम्भ तक होती है। पकने पर पौधो से पत्तियाँ गिर जाती है तथा तना पीला पड़ जाता है।

**उपज:-** मिश्रित फसल 4-5 कु./हे एवं शुद्ध फसल 8-10 कु./हे.।

**भण्डारण:-** दानों में नमी की मात्रा 10-12% पर भण्डार करना चाहिए।

**हानिकारक कीट:-** लेफिया या लूसर्न कैटरपीलर या अलसी सेमीलूपर, अलसी मक्खी या गाल मिज आदि।

**रोग:-** गेरूई, उकठा, पत्ती के धब्बे, पाउडरी मिल्ड्यू या चूर्णिल आसिता आदि।

## 15.4 फसल - सूरजमुखी

**वानस्पतिक नाम -** हैलीएन्थस एन्नस (कुल- कम्पोजिटी )

**उत्पत्ति स्थान :-** उत्तरी अमेरिका।

**महत्व:-** बीज,खली,तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। इसका तेल हृदय रोगियो के लिये उपयुक्त रहता है।

**जलवायु:-** ये अप्रदीप्तिकालीन पौधा है। प्रकाष अवधि का इसकी वृद्धि एवं विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके कारण इसे खरीफ, रबी व बसंत में आसानी से उगाया जा सकता है।

**भूमि:-** रबी की फसल के लिये भारी दोमट व खरीफ के लिये एल्यूवियल दोमट मदा, उचित जल निकास के साथ अति उत्तम है

**जातियाँ:-** संकर जातियाँ- बादषाह, PSF-5 मार्डन(संकुल) PKL-7, BSH-1, DRSHI

**भूमि की तैयारी:-** पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व बाद में 2-3 जुताइयाँ हैरो या देषी हल से करते है एवं जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिये।

**बीज दर:-** 8-10 किलो प्रति हेक्टेयर बीज पर्याप्त रहता है।

**बुबाई:-** पक्ति से पंक्ति 60-80 सेमी एवं पौधे से पौधे 20-25 सेमी की दूरी पर 3-4 सेमी गहराई, कतार में करनी चाहिये। सूरजमुखी की बुबाई विभिन्न मौसमो निम्नवत् की जाती है। खरीफ - जुलाई के प्रथम सप्ताह से अगस्त तक, रबी - मध्य अक्टूबर से 30 नवम्बर एवं जायद - 15 फरवरी से 15 मार्च।

**खाद एवं उर्वक:-** क्रमष N P K 68.80रू60रू40.50 किलो प्रति हेक्टेयर की आवष्यकता होती है।

**सिंचाई:-** रबी में दो बार और बंसत में 5-6 बाव सिंचाई की आवष्यकता पडती है। फसल उगने के 25-30 दिन बाद पहली और करीब 50 दिन बाद दूसरी सिंचाई कर देनी चाहिए।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** बुबाई के 10-12 दिन में पहली निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। पहले दो महिनों में 1-2 बार निराई-गुड़ाई करना आवष्यक होता है। सूरजुखी फसल में 2,4-डी खरपतवारनाषी का प्रयोग नहीं करना चाहिय क्योकि यह इस फसल के लिये बहुत ही हानिकारक है।

**कटाई:-** जब सूरजमुखी के बीज पककर कड़े हो जाए, तो उसके फूलों की कटाई कर लेनी चाहिए। पके हुए फूलों का पिछला भाग पीले भूरे रंग का हो जाता है। शीतकालीन फसल 130-140 दिन, जायद 90-100 दिन एवं खरीफ फसल 120-130 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

**उपज:-** 20 क्विंटल / हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

**भण्डारण:-** भण्डार ठण्डी एवं शुष्क जगह पर करना चाहिए।

**हानिकारक कीट:-** सिरवेधक एवं जैसिड आदि। 0.025 प्रतिषत मैटासिस्टाक्स या डाइमक्रेन (25 ई.सी) एक मिली.दवा को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

**रोग:-** वर्षा ऋतु में झुलसा या अंगमारी रोग का प्रकोप अधिक होता है। फसल को रोगमुक्त रखने के लिये जिनेब (डाइथेन जैड-78) की 2.5 किग्रा मात्रा 1000 ली.पानी में घोलकर प्रभावित फसल पर छिड़काव करे। आवष्यकता पड़ने पर 10-15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिए।

## 15.5 फसल - कुसुम या कुसुम्भा

**वानस्पतिक नाम -** कारथेमष टिंकटोरियम (कुल- कम्पोजिटी )

**उत्पत्ति स्थान :-** इसका जन्म-स्थान एबीसीनिया व अफगानिस्तान के पर्वतीय क्षेत्र माने जाते है। कुछ वैज्ञानिक इथोपिया को भी इसका जन्म स्थान मानते है।

**महत्व:-** बीज, खली, औषधि, तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। इसका तेल हृदय रोगियो के लिये उपयुक्त रहता है।

**जलवायु:-** भारत वर्ष में कुसुम रबी की ऋतु में उगाई जाती हैं। यह अप्रदीप्तिकाल फसल है, परन्तु लम्बे प्रकाषकाल में अधिक उपज देती है।

**भूमि:-** कुसुम की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। कम उर्वर रेतीली भूमियों से लेकर, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व कर्नाटक की काली मृदाओं तक इसकी खेती की जाती है। अम्लीय भूमि एवं जल भराव वाली भूमि पूर्णतया अनुपयुक्त होती है।

**जातियाँ:-** NP-30, NP-18 N-62-8, N-7 आदि उन्नतषील जातियाँ उपयुक्त रहती है।

**भूमि की तैयारी:**-पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व बाद में 2-3 जुताइयाँ हैरो या देषी हल से।

**बीज दर:-** बीज की दर कुसुम की जाति, बोने के समय, मुदा में नमी की मात्रा आदि पर निर्भर करती है।

सिंचित 10-15 किग्रा /हे, शुद्ध फसल - शुष्क क्षेत्र 15-20 किग्रा/हे एवं शुद्ध फसल - शुष्क क्षेत्र 4-5 किग्रा/हे।

**बुबाई:-** शुद्ध फसल की बुबाई पंक्तियों में हल के द्वारा अक्टूबर के प्रारम्भ में व मिश्रित फसल की बुबाई 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जाती है। पक्ति से पक्ति 40-50 सेमी एवं शुष्क क्षेत्रों में 60 सेमी. की दूरी व पौधों का आपस में अन्तरण 20-25 सेमी की दूरी रखा जाता है

**खाद एवं उर्वक:-** असिंचित क्षेत्रों में 30-40 किग्रा N,30 किग्रा. P2O व 20 किग्रा. K एवं सिचित क्षेत्रों में 40-60 किग्रा N, 40 किग्रा..P2O व 30 किग्रा. K देना लाभादायक होता हे।

**सिंचाई:-** यद्यपि कुसुम की खेती वर्षा के आधार पर की जाती है, परन्तु दो सिंचाई, पहली बोने के 30 दिन बाद व दूसरी फूल आते समय करना चाहिए। फसल में आवष्यकतानुसार जल निकास अत्यन्त आवष्यक है। थोडे समय तक खेत पर पानी ठहरने से फसल नष्ट हो सकती हैं

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** प्रारम्भ में फसल को खरपतवार से बचाने के लिए, बोने के 30 दिन बाद एक निराई करना आवष्यक होता है।

**मिश्रित खेती:-** रबी की मुख्य फसलों जैसे- चना, जौ व अलसी के साथ उगाया जाता है।

**कटाई:-** फसल की किस्म के अनुसार 120-180 दिन बाद फसल पक तैयार हो जाती है।

**उपज:-** असिंचित क्षेत्रो में 6-8 क्विंटल/हेक्टेयर है, सिंचित क्षेत्रो में 15-20 क्विंटल/हेक्टेयर है एवं मिश्रित फसल में 2-6 क्विंटल/हेक्टेयर है।

**भण्डारण:-** बीजो को तीन-चार दिन धूप में सुखाकर बीज में नमी 8: रहने पर करना चाहिए।

**हानिकारक कीट:-** एफिड या माहू, पत्ती की सूडी, कुसुम की मक्खी इत्यादि।

**रोग:-** उकठा, गेरूई एवं आल्टरनेरिया लीफ ब्लाइट है।

## 15.6 फसल - मूँगफली

**वानस्पतिक नाम -** अरैकिस आइपोजिया (कुल- लेग्यूमिनेसी)

**उत्पत्ति स्थान -** अधिकांष विद्वानों के मतानुसार मूँगफली का जन्म स्थान दक्षिणी अमेरिका है।

**महत्वः-** बीज, जानवरों के हरे चारे एवं खली, तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है। इसमे विटामिन ए, बी1, बी2 तथा ई भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

**जलवायुः-** उष्ण-कटिबन्धीय पौधा होने के कारण इसे लम्बे तथा गर्म मौसम की आवष्यकता पड़ती है।

**भूमिः-** देष के विभिन्न भागों में मूँगफली की खेती बलुअर, बलुअर दोमट, दोमट और काली मिट्टी पर सफलतापूर्वक की जाति है, परन्तु बलुअर दोमट भूमि मूँगफली के लिऐ सबसे उत्तम होती है।

**जातियाँः-** मंजरा (GN-2), त्रिपति-4, फूले व्यास (JI-220), कादिरी-1, मूँगफली-13, मूँगफली-45 इत्यादि।

**बीज दरः-** औसतन बीज या दानों की मात्रा प्रति हेक्टेयर 100-120 किग्रा. होती है।

**अन्तरणः-** गुच्छेदार जातियाँ -45 सेमी. X10 सेमी. एवं फैलकर चलने वाली जातियाँ -60 सेमी. X10 सेमी

**बुबाई विधिः-** मूँगफली की बुआई डिबलर विधि, सीड प्लाण्टर विधि एवं सीड प्लाण्टर विधि के द्वारा की जाती है।

**बुबाई का समयः-** देष के विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा व जलवायु को ध्यान रखते हुऐ मूँगफली की विभिन्न जातियों की बुआई भिन्न-भिन्न समय पर की जाती हैं। उत्तरी भारत में बुआई प्रायः जून के प्रथम सप्ताह से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक करते है।

**खाद एवं उर्वकः-** मूँगफली दलहनी फसल है। अतः इसकी जड़ो में पाए जाने वाले जीवाणु वातावरण की नत्रजन को मृदा स्थिर करते है। मृदा परीक्षण के अनुसार बुआई के समय 50-60 किग्रा. फॉस्फोरस ,पोटाष 20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर एवं वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में बुआई के समय केवल 20 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर देना लाभदायक होता है।

**सिंचाईः-** उत्तरी भारत में मूँगफली की बुआई वर्षा प्रारम्भ होने पर करते है। खरीफ की फसल में सूखा पड़ने पर आवष्यकतानुसार 2-3 सिंचाइयों कर सकते है।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रणः-** निकाई-निड़ाई का मूँगफली की खेती में बहुत ही महत्व है। पन्द्रह दिन के अन्तर पर 2-3 निकाई-गुड़ाई करना लाभदायक है।

**मिश्रित खेतीः-** मूँगफली को उत्तरी व दक्षिणी भारत के अनुक प्रान्तों में ज्वार, बाजरा,अरहर, अण्डी, सोयाबीन, कपास, मिर्च, गन्ना व मक्का के साथ मिलाकर बोया जाता है।

**कटाईः-** फसल की पूर्णतया परिपक्वता पर मृदा की किस्म, मृदा में नमी की मात्रा, जलवायु व फसल की जाति का प्रभाव पड़ता है। सामान्य परिस्थितियों में अगेती जातियाँ 105 दिन एवं पछेती जातियाँ 135 दिन तक कट जाती है।

**उपज:-** मूँगफली में फसल की उपज विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार 10-12 कु.प्रति हेक्टेयर तक होती है। गुच्छेदार जातियाँ 8-10 कु.प्रति हेक्टेयर तक एवं फैलने वाली जातियाँ 12 कु.प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है।

**भण्डारण:-** मूँगफली की फलियों का संग्रह गोदामों में ही करना चाहिए। बीजों को फलियों से निकालकर संग्रह करने पर बीजों के गुणों में कमी आती है।

**हानिकारक कीट:-** बिहार रोमिल सूंडी, तम्बाकू की सूँडी, मूँगफली का एफिड, सफेद सूँडी, दीमक आदि।

**रोग:-** टिक्का रोग, रोजेट या विषाणु रोग, जड विगलन, एंथ्रैक्नोज, कोलर रोट, चारकोल सड़न, गेरूई आदि।

## 15.7 फसल - अण्डी, अरण्डी या रेंड

**वानस्पतिक नाम -** रिसिनस कोम्यूनिस (कुल- यूफोरबिएसी)

**उत्पत्ति स्थान:-** अधिकांष वैज्ञानिकों के मतानुसार अण्डी का जन्म स्थान अफ्रीका अनुमानतः इथोपिया है।

**महत्व:-** बीज, खली , तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में उपयोग किया जाता है।

**जलवायु:-** अण्डी समुद्र तल से लेकर 6000 से 7000 की ऊँचाई तक उगाई जा सकती है। इसकी बुआई खरीफ ऋतु में तथा कटाई रबी में की जाती है। इसकी खेती को पाले से भारी नुकसान होता है।

**भूमि:-** सामान्यतः अण्डी की खेती के लिए हल्की और भुरभुरी मृदा उपयुक्त होती है।

**जातियाँ:-** टा.3, तराई 4, कालपी 6, अरूणा, भाग्य, सौभाग्य, जी.एस.एच.3 इत्यादि।

**भूमि की तैयारी:-** अण्डी की शुद्ध फसल के लिए खरीफ में वर्षा प्रारम्भ होने पर पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व 2-3 जुताई देषी हल से करते है।

**बीज दर:-** विभिन्न परिस्थितियों में अण्डी के बीज की दर निम्न प्रकार रखते है।

| बुआई विधि | शुद्ध फसल | मिश्रित फसल |
|---|---|---|
| 1. डिबलिंग विधि | 8-10 किग्रा/हे. | 3-5 किग्रा/हे. |
| 2. हल के पीछे कूडों में | 8-10 किग्रा/हे. | 3-5 किग्रा/हे. |

**अन्तरण:-** शुद्ध फसल - 90 सेमी. X 60 सेमी. एवं बौनी किस्मों - 60 सेमी. X 45 सेमी

**बुवाई:-** वर्षा प्रारम्भ होने पर जून के अन्तिम सप्ताह से लेकर जौलाई के प्रथम सप्ताह तक हल के पीछे पंक्तियों में बुआई एवं डिबलिंग विधि के द्वारा की जाती है।

**खाद एवं उर्वक:-** क्रमंष NPK 40-50:40-50:20-40 किग्रा/हे. की आवष्यकता होती है।

**सिंचाई:-** बुआई के समय पर्याप्त नमी का मृदा में होना आवष्यक है। वर्षा ऋतु में सूखा पड़ने पर 1-2 सिंचाई की आवष्यकता पड़ती है। इसकी खेती अंसिचित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** अण्डी की फसल में 2-3 निकाई-गुड़ाई करना लाभदायक है। मिश्रित फसल में मुख्य फसल के अनुसार निकाई-गुड़ाई करते है।

**मिश्रित खेती:-** अण्डी की फसल जैसे - कपास, ज्वार, गन्ना, अरहर, मिर्च, लोबिया, मूँगफली आदि फसलो के साथ मिश्रित रूप से उगाई जाती है।

**कटाई:-** सामान्यतः 4-5 महीने में पौधों पर फूल आने आरम्भ हो जाते है। फूल आने के बाद फल 2-3 माह के बाद पकते है। विभिन्न जातियों की बुआई के अनुसार फसल नवम्बर से लेकर फरवरी तक पककर तैयार होती है।

**उपज:-** मिश्रित रूप में उगाई जाने पर 5-6 कु. व अकेली उगाने पर 10-12 कु/हे. तक दाने की उपज प्राप्त होती है।

**हानिकारक कीट:-** बिहार की रोएदार सूँडी या गिंडार, अरण्डी की सेमीलूपर एवं अरण्डी बीज छेदक आदि।

**रोग:-** लीफ ब्लाइट या अंगमारी एवं रतुआ या गेरूआ आदि।

## 15.8 फसल - तिल

**वानस्पतिक नाम -** सिसेमम इण्डिकम (कुल- पैडालिएसी)

**उत्पत्ति स्थान -** अधिकांष वैज्ञानिकों का मत है कि तिल का उत्तत्पि स्थान अफ्रीका है, क्योकि अफ्रीका में तिल का पौधा जंगली रूप् में उगा हुआ पाया जाता है।

**महत्व:-** बीज ,खली, तेल एवं औद्योगिक क्षेत्र में किया जाता है। इसके बीज में 50% तेल व 18-20% तक प्रोटीन होती है।

**जलवायु:-** भारत वर्ष में तिल समुद्र तल से लेकर लगभग 1200 मीटर की ऊँचाई तक उगाया जाता है। तिल की फसल के लिए गर्म और जलवायु की आवष्यकता होती है।

**भूमि:-** इसकी खेती कपास की काली, भारी मटियार भूमि से लेकर बलुअर दोमट व हल्की दोमट में की जाती है। जल निकास वाली भूमि तिल की खेती के लिये उपयुक्त होती है।

**जातियाँ:-** सूर्या, हरियाणा, तिल, उमा, नीलम, स्वेता, सुभ्रा, हिमा, ग्वालियर 35, एन. 32 इत्यादि।

**भूमि की तैयारी:-** तिल की फसल के लिये अधिक भूमि की तैयारी की आवष्यकता नहीं होती है।वर्षा प्रारम्भ होने पर एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से 2-3 जुताई देषी हल या कल्टीवेटर से करना उपयुक्त है।

**बीज दर/ बुबाई:-** शुद्ध फसल में 7-8 किग्रा/हेक्टेयर एवं मिश्रित फसल में 2-5 किग्रा/हेक्टेयर बीज की मात्रा में छिटकवां विधि एवं पंक्तियों (25-30 सेमी. ग् 10-15 सेमी.) में बुआई करते है। उत्तरी भारत बीज की बुआई वर्षा प्रारम्भ होने पर खरीफ की ऋतु में करते है। विभिन्न क्षेत्रों में बुआई जून-जौलाई में करते है।

**खाद एवं उर्वक:-** मिश्रित फसल में, साथ में उगाई गई फसल में दिए गए खाद से तिल की पूर्ति हो जाती है। हल्की बलुअर मृदाओं में 30 किग्रा. नत्रजन व 60 क्रिग्रा. फास्फोरस व 30 क्रिगा. पोटाष प्रति हेक्टेयर की दर से दिया जा सकता है। खाद बुआई के समय ही खेत में दे देते है।

**सिंचाई:-** वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में सिंचाई की आवष्यकता नहीं पड़ती है। सूखा पड़ने पर 1-2 सिंचाई आवष्यकतानुसार की जा सकती है। तिल की फसल में जल निकास का उचित प्रबंध होना नितान्त आवष्यक है।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** फसल बोने के 3-4 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करके खरपतवार का नियंत्रण करते है। पौधों की ऊँचाई 7-8 सेमी. होते ही (बोने के 15-20 दिन बाद) पौधो की छँटाई कर देते है।

**मिश्रित खेती:-** कपास, अण्डी, अरहर, ज्वार, बाजरा, मक्का ग्वार आदि फसलो के साथ करते है।

**कटाई:-** तिल की फसल जातियों के अनुसार 85-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है।

**उपज:-** शुद्ध फसल से 5-8 कुन्टल बीज प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाता है।

**हानिकारक कीट:-** तिल लीफ रोलर, सैसेमम गाल फ्लाई, तिल का हरा तेला या जैसिड एवं बिहार की रोएदार सूँडी या गिंडार या कमला आदि।

**रोग:-** रोजेट एवं लीफ स्पोट आदि।

## 15.9 फसल - सोयाबीन

**वानस्पतिक नाम -** ग्लाइसिन मैक्स (कुल- लेग्यूमिनेसी)

**उत्पत्ति स्थान :-** चीन

**महत्व:-** सोयाबीन दलहन वर्ग की एक फसल है जिसका वर्गीकरण पाष्चात्य देषों में तिलहनों के अन्तर्गत किया जाता है। इसका उपयोग तेल, चारे, विभिन्न खाद्य पदार्थो के रूप में एवं औद्योगिक क्षेत्र में किया जाता है। इसमे 42% प्रोटीन , 22% तक वसा तथा 30% तक कार्बोहाइड्रेट होते है। अंकुरण के समय लोहा व विटामिन सी की मात्रा बढ़ जाती है। भारत में सबसे अधिक सोयाबीन मध्यप्रदेष राज्य उगाई जाती है। इसलिये मध्यप्रदेष को सोया प्रदेष भी कहते है।

**जलवायु:-** सोयाबीन फसल साधारण शीत से लेकर साधारण उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में आसानी से उगाई जा सकती है।

**भूमि:-** सोयाबीन की खेती सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परन्तु अच्छी फसल के लिए दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त है। खेत में पानी के निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।

**जातियाँ:-** अलंकार, अंकुर, षिलाजीत, पी.के.262, पी.के 416, जवाहर सोयाबीन 2, इत्यादि जातियाँ।

**भूमि की तैयारी:-** सोयाबीन के बीज के अच्छे अंकुरण के लिये आवश्यक है कि मृदा को भुरभुरी बना लिया जाये । पिछली फसल कटने के बाद एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व बाद में 2-3 जुताइयाँ हैरो या देषी हल से करते है।

**बीज दर:-** खरीफ की फसल के लिये 70-75 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर व बसन्त ऋतु में 100-120 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर आवष्यक है।

**अन्तरण:-** खरीफ की अगेती फसल में 4-5 सेमी X 3-4 सेमी व पछेती फसल 60 सेमी X 3 सेमी व बसन्त की फसल 30-40 सेमी X 2.5-3.0 सेमी

**बुबाई विधि:-** सोयाबीन की बुआई पंक्तियों में हल के पीछे या सीडड्रिल द्वारा की जाति है।

**बुबाई का समय:-** खरीफ - 25 जून से 5 जुलाई तक। बसन्त- 15 फरवरी से 15 मार्च तक।

**खाद एवं उर्वक:-** N- 20-30 किग्रा/कु./हे., P205- 60-80 किग्रा/हें. एवं K2O- 40-60 किग्रा/हें

**सिंचाई:-** सूखा पड़ने पर शाखाओं के विकास, फूल आते समय, फलियाँ बनते समय व दाने के विकास के समय पर पानी की बहुत आवष्यकता होती है। सोयाबीन के द्वारा प्रतिदिन औसतन 0.8 हेक्टेयर सेमी पानी का उपयोग कर लिया जाता है।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण:-** फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 30-40 दिन में निराई-गुड़ाई या रासायनिक विधि से खरपतवार का नियंत्रण करना बहुत आवष्यक होता है।

**कटाई:-** सोयाबीन की विभिन्न जातियाँ 90-110 दिन तक फसल पक कर तैयार हो जाती है।

**उपज:-** असिंचित क्षेत में 16-20 कु./हे एवं सिंचित क्षेत्र में 20-25 कु/हे.

**भण्डारण:-** बीज को भण्डार में रखते समय बीज में 10: से अधिक नमी नहीं रखनी चाहिए।

**हानिकारक कीट:-** लीफ माइनर, तनाबेधक बीटिल, बिहार की रोमिल सूँडी, सफेद मक्खी, एफिड, सोयाबीन मैगेट इत्यादि।

**रोग:-** बीज एवं पौध आर्द्र गलन, मूल गलन, पत्तीय धब्बा रोमिल फफूँद, पीला मोजेक, कली झुलसा, बैक्टीरियल रोग इत्यादि।

## 15.10 साराशं

कृषि अन्तर्गत दलहन , तिलहन एवं अनाज फसलो का समावेष किया जाता है। जिसमे तिलहनी फसलों का भी विषेष महत्व है, तिलहन वे फसले है। जिनसे तेल उत्पन्न किया जाता है। तिलहनी फसलों में तिल, मॅगफली, सोयाबीन और सूरमुखी महत्वपूर्ण है। सभी प्रकार के तिलहनों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टी, वर्षा एवं तापमान की आवष्यकता होती है। अतः ये भारत के सभी राज्यों में न्यूनाधिक मात्रा में पैदा किए जाते है। भारत में नियोजन काल में तिलहनों के उत्पादन क्षेत्र एवं कुल उत्पादन में वृद्धि हुई , फिर भी यह हमारी मांग की तुलना में कम है।

अतः फसल यो फसल पद्धति के प्रबंधन में बीज शौध की तैयार से लेकर फसल कटाई तक अपनायी जाने वाली समस्त तकनीकी का ज्ञान होना आवष्यक है।

## 15.11 बोध प्रष्न

1. याबीन की सघन सस्य क्रियाओं का वर्णन करे?
2. गफली का अर्थिक महत्व लिखिये ?
3. रजमुखी को तीनो ऋतुओं में क्यो उगाया जाता है?

**वस्तुनिष्ठ प्रष्न**

1 सोयाबीन में तेल की कितनी प्रतिषत मात्रा पायी जाती है ?

(A) 18.20 (B) 20.22

(C) 22.24 (D) 24.26

2 सूरजमुखी का जन्म स्थान कहाँ है ?

(A) दक्षिण अमेरिका (B) उत्तरी अमेरिका

(C) चीन (D) पष्चिमी अमेरिका

3 भारत में किस राज्य का सोयाबीन क्षेत्रफल एवं उत्पादन अधिक है ?

(A) उत्तर प्रदेष (B) मध्य प्रदेष

(C) पंजाब (D) राजस्थान

4 खरीफ तिलहनी फसल कौन है ?

(A) तोरिया (B) अलसी

(C) चना (D) मूँगफली

5 तिलहनी फसल कौन है ?

(A) चना (B) अलसी

(C) गेहूँ (D) गन्ना

## 15.12 संदर्भ सामग्री


17. अहलावत आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलें, रामा पब्लिशिंग हाउस मेरठ
18. सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा XI, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अमेर: पेज 82-135.
19. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi. P. 110-154.
20. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), मध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

# इकाई 16

# दलहनी फसलें

**इकाई की रूपरेखा**

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 `महत्व एवं उपयोग
16.3 दलहनी फसलों का वर्गीकरण
16.4 अरहर उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.5 मूंग उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.6 उड़द उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.7 मोठ उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.8 मटर उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.9 मसूर उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.10 राजमा उत्पादन की उन्नत तकनीक
16.11 सारांश
16.12 बहु चयनात्मक प्रश्न
16.13 संदर्भ ग्रन्थ

## 16.0 उद्देश्य

शाकाहारी मनुष्यों की पोषण सुरक्षा की दृष्टि से दलहनी फसलों का क्या महत्व है। दलहनी फसलों का भारतीय कृषि प्रणाली में क्या महत्व है के बारे में जानना। खरीफ एवं रबी मौसम में उगाई जाने वाली विभिन्न दलहनी फसलों की जानकारी करना। विभिन्न दलहनी फसलों की उन्नत सस्य तकनीक के बारे में जानना आदि।

## 16.1 प्रस्तावना

भारत में नही बल्कि संसार के कई देशों जैसे- भारत, उप-महाद्वीप (पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा श्रीलंका), पूर्वी अफ्रीका (केनिया, युगांड़ा, तंजानिया तथा मलावी), आस्ट्रेलिया, ट्रीनीड़ाड़, प्यूरटोरिको, स्पेन, इथोपिया, अर्जेन्टाइना, कनाड़ा तथा सयुंक्त राज्य अमेरिका में बड़े पैमाने पर दालें उगाई जाती है। विश्व में 82.0 मि. है. में दालें उगाई जाती है जिनसे 62.0 मि. टन दाल मिलती है। क्षेत्र विशेष के अनुसार दालों की सापेक्षित महत्ता अलग-अलग है। भारत में दलहनी फसलें जैसे- चना, अरहर, मूंग, उड़द, मसूर, मटर, मोठ, कुल्थी, खेसारी, चवलां व राजमा आदि खरीफ एवं रबी में प्रमुखता से उगाई जाती है। भारत में कुल दालों का क्षेत्रफल 23.0 मि. है. जिनसे 17.29 मि. टन दालों का उत्पादन वर्ष 2010-11 में प्राप्त हुआ। भारत में कुल बोया गया क्षेत्रफल में दलहनी फसलों का मात्र 12 प्रतिशत ही हिस्सेदारी है। देश में विगत 5 दशकों के

अन्तर्गत दलहनी फसलों के क्षेत्रफल में कोई आशातीत वृद्धि नही हुई है परन्तु उत्पादन में दुगुने के करीब पहुंच गया है, साथ ही उपज प्रति हैक्टेयर में 50 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है। वर्तमान में दालों की उपलब्धता 33 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन (2009-10) रह गई है जो कि वर्ष 1990-91 में यह 41 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन थी। भारत विश्व में सबसे ज्यादा दलहन उत्पादन करने वाला देश है, जिसका विश्व में दलहन उत्पादन में 24 प्रतिशत हिस्सा है। भारत में दलहनी फसलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण हिस्सा चना (48 प्रतिशत), अरहर (15 प्रतिशत), मूंग (7 प्रतिशत), उड़द (7 प्रतिशत), मसूर (5 प्रतिशत) व मटर (5 प्रतिशत) आदि है। भारत के प्रमुख दलहन उत्पादक राज्य जैसे- मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश है जो कि कुल दलहन उत्पादन का 80 प्रतिशत उत्पादन करतें है।

## 16.2 महत्व एवं उपयोग

भारत की अधिकांश आबादी शाकाहारी है और उनके लिए प्रोटीन का मुख्य स्त्रोंत दालें है। अतः दालें भोजन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। दालों में प्रोटीन की मात्रा धान्य फसलों की तुलना में अधिक होती है उचित अनुपात में दालों व धान्यों के मिश्रण से अच्छा भोजन प्राप्त किया जा सकता है। यह वैज्ञानिक दृष्टि से मखनिया दूध के बराबर प्रोटीनयुक्त समझा जाता है क्योंकि जैविक मान की दृष्टि से धान्य और दालों के प्रोटीन एक-दूसरे के पूरक है। भारत की कृषि प्रणाली में भी दालों की महत्वपूर्ण भूमिका है। दालों को चारे तथा हरी खाद के लिए भी उगाया जाता है। दलहनी फसलों की जड़ों में गांठें होती है जिनमें राइजोबियम जीवाणु रहते है और वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन, जो अधिकाशं जीवों के लिए अपनी निष्क्रिय प्रकृति के कारण अनुपयोगी है, का स्थरीकरण करते है और दलहनी फसलों को उपलब्ध कराते है। दालों में सूखा सहने की क्षमता के कारण इनकी खेती कम उर्वर तथा सीमित नमी वाली स्थितियों में भी की जा सकती है। इस प्रकार दालों की खेती से कीमती कृषि निवेशों जैसे- नाइट्रोजन वाली खादें एवं पानी की बचत होती है।

कम अवधि की यह फसलें तापमान व प्रकाश काल के लिए कम संवेदनशील है। अतः इन्हे वर्ष में कभी भी उगाया जा सकता है। इस प्रकार कम अवधि वाली दलहनी फसलें बहु-फसली कार्यक्रम में प्राथमिकता पाती है और अन्न उत्पादन बढाने में सहायता मिलती है। दलहनी फसलों की जड़े काफी गहराई तक जमीन में नीचे चली जाती है जिससे जमीन की स्वतः जुताई सी हो जाती है। इससे जमीन की जल धारण क्षमता बढ़ती है। दलहनी फसलों को सस्य क्रम पद्धति में स्थान देने से मृदा उर्वरता बढ़ाती है। अतः भारतीय कृषि में दालों का स्थान बेजोड़ है

## 16.3 दलहनी फसलों का वर्गीकरण

भारतवर्ष में दालों की विभिन्न फसलों की खेती की जाती है। इनमें प्रमुख हैः चना (साइसर एरीटीनम), अरहर (कैजेनस कजान), मूंग (विग्ना रैडियटा), उड़द (विग्ना मूंगो), मसूर (लेन्स क्यलिनेरिस), मटर (पाइसम सेटाइवम), मोठ (विग्ना एकोनिटीफोलिया), कुल्थी (ड़ोलिक्स विफ्लोरस), खेसारी (लेथाइरस सेटाइवस), चवलां (विग्ना एनग्युकुलेटा), राजमा (फेजिओलस वलगेरिस) आदि को खरीफ एवं रबी में प्रमुखता से उगाया जाता है।

**अ. खरीफ दलहनी फसलें-**

1. अरहर (कैजेनस कजान) - अन्य नामः रेड़ ग्राम, तूर
2. मूंग (विग्ना रैडियटा) - अन्य नामः मूंगबीन, ग्रीनग्राम
3. उड़द (विग्ना मूंगो) - अन्य नामः उड़दबीन, ब्लेकग्राम
4. मोठ (विग्ना एकोनिटीफोलिया) - अन्य नामः मोठबीन
5. चवलां (विग्ना एनग्युकुलेटा) - अन्य नामः लोबिया
6. कुल्थी (ड़ोलिक्स विफ्लोरस) - अन्य नामः हॉर्सग्राम

**रबी दलहनी फसलें-**

1. चना (साइसर एरीटीनम) - अन्य नामः बंगालग्राम, चीकपी
2. मटर (पाइसम सेटाइवम) - अन्य नामः पी
3. मसूर (लेन्स क्यलिनेरिस) -
4. राजमा (फेजिओलस वलगेरिस) - अन्य नामः कीड़नीबीन
5. खेसारी (लेथाइरस सेटाइवस) -

## 16.4 अरहर उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** भारत में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में अरहर का चने के बाद दूसरा स्थान है। शाकाहारी मनुष्यों के लिए अरहर की दाल प्रोटीन का मुख्य स्त्रोंत है। इसकी दाल में 20.9 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। अरहर की पत्तियां व फलियों के छिलके पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रुप में काम लिये जाते है। अरहर की फसल उगाने से इसकी जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करते है। इसके अतिरिक्त अरहर मृदा क्षरण रोकने में व वायु प्रतिरोधक फसल के रुप में भी उपयोगी है। इसे मिश्रित फसल के रुप में अन्य फसल के साथ उगाकर अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है।

**उत्पत्ति -** अरहर विश्व की सबसे पहले उगाई जाने वाली फसलों में से एक है। वेविलोय के अनुसार इसका उत्पत्ति स्थान भारत है, परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि अरहर की उत्पत्ति अफ्रीका में नील नदी के ऊपरी भाग के क्षेत्र से हुई है, क्योंकि वहाँ इसकी जंगली प्रजातियां पाई जाती है।

**वितरण -** विश्व में अरहर खेती मुख्यतः भारत, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, मलेशिया, इंड़ोनेशिया, वेस्टइंड़ीज आदि देशों में होती है। अरहर की खेती करने वाले सभी देशों में भारत प्रथम स्थान पर है। भारत में बोई जाने वाली दलहनी फसलों में क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से चने के बाद दूसरा स्थान अरहर का है। हमारे देश में अरहर की खेती मुख्यतयाः उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक आदि राज्यों में इसकी खेती बहुतायत से की जाती है। राजस्थान में इसकी खेती मुख्यतयाः बांसवाड़ा, झालावाड़, धौलपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ व कोटा जिलों में होती है।

**जलवायु-** आद्र एवं शुष्क दोनों प्रकार के नम एवं गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। शुष्क जलवायु के ऐसे क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहता है जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो। पौधों की उचित बढ़वार के लिए नम जलवायु उपयुक्त रहती है। इसकी खेती के लिए 75-

100 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त है। पौधों में फूल आते समय व फलियां बनते समय तेज धूप की आवश्यकता होती है। फसल पकते समय पाला पड़ना व तेज वर्षा होना हानिकारक है।

**मृदा का चुनाव एवं तैयारी-** अरहर की खेती दोमट या चिकनी दोमट एवं कपास की भारी काली मृदाओं जिनमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो एवं मृदा का पी.एच. मान 6.5-7.5 अधिक उपयुक्त रहती है तथा अधिक अम्लीय एवं ऊसर मृदायें अनुपयुक्त पाई गई है। मध्यम व भारी भूमियों में रबी फसल कटने के बाद एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके गर्मी में खुला छोड़ दे। ऐसा करने से भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है तथा तेज धूप व ताप से मृदा मे छिपे हुये रोग पैदा करने वाली फफूंद, कीड़े-मकोड़े एवं खरपतवारों के बीज नष्ट हो जाते है। इसके बाद 2-3 जुताई हैरो या कल्टीवेटर अथवा देशी हल से करते है। मिश्रित फसल के रुप में उगाने पर सह फसल मक्का या ज्वार आदि के अनुसार खेत की तैयारी करते है। खेत खरपतवार रहित होना चाहिए तथा जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। मध्य क्षेत्रों में जल के सरंक्षण एवं जल उपयोग की कुशलता वृद्धि करने हेतु मेड़ एवं नाली बनायें।

**भूमि उपचार -** अन्तिम जुताई के समय क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिलाना चाहिए या प्रति किलो बीज में 10 मिलीलीटर क्यूनॉलफॉस 25 ई सी मिलाकर बीजोपचार करे। भूमिगत कीडों एवं दीमक की रोकथाम के लिए बुवाई से पूर्व भूमि उपचार करना आवश्यक है ।

**उन्नत किस्में-** अरहर फसल से अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए। किस्मों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के साथ-साथ ये किस्में रोग प्रतिरोधी तथा उस क्षेत्र की जलवायु के लिए प्रयुक्त हो।

**प्रभात:** इस किस्म के पौधों की ऊंचाई 150-170 से.मी. होती है। यह किस्म 115-135 दिन में पककर 12-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इस किस्म का दाना पीला तथा 1000 दानों का वजन 50-55 ग्राम होता है।

**आई. सी. पी. एल.-87 (प्रगति):** इस किस्म के पौधे बौने (90-100 से.मी.) एवं उखटा रोग के प्रतिरोधी पाये गये है। यह किस्म 150-170 दिन में पककर 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसकी फलियां मोटी एवं लम्बी होती है तथा गुच्छों में आती है व एक साथ पकती है। इस किस्म का दाना बड़े एवं हल्के भूरे रंग के होते है। इस किस्म की कटाई के बाद गेंहू की फसल बोयी जा सकती है।

**ग्वालियर-3:** इस किस्म के पौधों की ऊंचाई 225-275 से.मी. होती है। यह किस्म 180-250 दिन में पककर 8-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है।

**यू. पी. ए. एस.-120:** इस किस्म के पौधों की ऊंचाई 150-200 से.मी. होती है। यह किस्म 120-140 दिन में पककर 10-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इस किस्म की कटाई के बाद गेंहू की फसल बोयी जा सकती है।

**आई. सी. पी. एल.-151 (जाग्रिति):** यह शीध्र पकने वाली किस्म जो 120-145 दिन में पककर 12-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसके पौधों की ऊंचाई 100-120 से.मी. होती है। इसमे पकाव एक साथ आता है अर्थात् डिटरमिनेट प्रकार की किस्म है। इस किस्म का दाना बड़ा एवं हल्के पीले रंग का होता है। यह किस्म भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

**मानक (एच. 77-216) -** यह किस्म 130-135 दिन में पककर 18-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इस किस्म में अधिक सूखा व तापक्रम सहन करने की क्षमता पायी गयी है।

**आई. सी. पी. एल.-88039 -** यह किस्म 140-155 दिन में पककर 12-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इस किस्म मे पकाव एक साथ आता है। यह किस्म भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

इसके अतिरिक्त पूसा-33, पूसा-84, पूसा-855, टाईप-21, शरदा व पारस आदि उपयुक्त किस्में है।

**बीजोपचार-** कवकजनित रोगों से बचाव हेतु बीजों को बुवाई से पूर्व कार्बेण्डाजिम 1.0 ग्राम या थाइरम 3.0 ग्राम या ट्राइकोड़र्मा विरिडि 4.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। इसके उपरान्त 4-5 मि.ली. क्लोरोपायरीफॉस से प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। बाद में बीजों को सदैव राइजोबियम एवं फॉस्फोरस घोलक जीवाणु (पी.एस.बी.) प्रत्येक का 600 ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से उपचारित करके बुवाई करे। कल्चर से उपचारित बीज को उर्वरकों के साथ मिलाकर कभी भी नही बोयें।

**बुवाई का समय व विधि -** जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहाँ पर 1-15 जून तक फसल की बुवाई कर देनी चाहिए। वर्षा आधारित फसल के लिए जुलाई के मध्य तक वर्षा होते ही बुवाई कर देवें। देर से बुवाई की गई फसल पर कीट व रोगों का प्रकोप अधिक होता है। बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। अरहर की फसल को सदैव पंक्तियों में बोना उत्तम रहता है। पंक्तियों की दूरी सदैव साथ बुवाई की गई फसल जैसेः मूंगफली, मक्का, मूंग व उड़द आदि पर निर्भर करती है। शुद्ध फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60-75 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15-20 से.मी. तथा बीज 5 से.मी. की गहराई पर ही करनी चाहिए। हल के पीछे पोरा लगाकर बुवाई करते है। कुछ बौनी किस्में जैसे प्रभात व अन्य के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. रखी जानी चाहिए।

**बीज दर -** अरहर में बीज दर उसकी किस्म व बुवाई के समय पर निर्भर करती है। शुद्ध अरहर की फसल के लिए 15 किलोग्राम तथा मिश्रित फसल के लिए 6-8 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है ।

**अन्तः सस्य फसलें -** अरहर को अन्तः फसल / मिश्रित फसल के रुप में भी उगाया जा सकता है। खरीफ ऋतु में बोये जाने वाली अन्तः फसलें मक्का, ज्वार, उड़द, मूंग व तिल के साथ दो कतारों के बीच एक या दो कतारें मक्का, ज्वार, उड़द, मूंग व तिल की लगाकर करीब 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर मक्का व ज्वार तथा 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उड़द, मूंग व तिल की अतिरिक्त उपज प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार छाया चाहने वाली फसलें जैसे हल्दी व अदरक आदि को भी अरहर के साथ सफलतापूर्वक मिश्रित फसल के रुप में बोया जा सकता है।

**फसल चक्र -** उचित फसल चक्र अपनाकर अरहर की अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। जैसे- अरहर + मक्का - गेंहू, अरहर + मूंगफली - गन्ना, अरहर + ज्वार - चना तथा अरहर - गेंहू।

**खाद एवं उर्वरक -** अरहर की फसल में प्रति हैक्टेयर 15-20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई से पूर्व खेत में डालें। दलहनी फसल होने के कारण अरहर की फसल में भी नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नही होती है, केवल प्रारम्भ की अवस्था में 18-20 कि.ग्रा. नत्रजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व कूडों में ऊर कर देवें तथा फसल बाद में जड़ों में उपस्थित जीवाणु इसकी पूर्ति वायुमण्डल से नत्रजन स्थिरिकरण से कर लेते है। फॉस्फोरस, पोटाश एवं जस्ता मृदा परीक्षण के आधार पर दें। मिट्टी की जाँच के अनुसार गंधक की कमी वाली भूमि में प्रतिवर्ष 250 किलोग्राम जिप्सम या 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में (गंधक उर्वरक के रुप में) देने से उपज में वृद्वि होती है। जस्ते की कमी वाली मृदाओं में 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में डाले या खडी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट $ 0.25 प्रतिशत चूने के घोल का छिडकाव करने से उपज में वृद्वि होती है ।

**सिंचाई -** अरहर की मूसला जड़े होने के कारण जमीन में अधिक गहराई तक जाती है। यदि सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो तो एक या दो सिंचाई पर्याप्त है। वर्षा न होने पर पहली सिंचाई फसल की प्रारंभिक अवस्था में ही की जानी चाहिए। दूसरी सिंचाई सर्दी में फूल व फलियां बनते समय की जानी चाहिए। यह फसल पानी की कमी तो सहन कर लेती है परन्तु जलभराव होने पर भारी हानि होती है। इसलिए जल निकास की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम -** अरहर को मुख्यतया खरीफ में उगाया जाता है अतः खरपतवार नियंत्रण के उपाय न किए जाएं या अधिक वर्षा होने पर खरपतवार बहुत तेजी से बढ़ते है। उत्पादकता में कमी को रोकने हेतु अरहर को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। फसल को 25-40 दिन की अवस्था तक दो बार खुरपी से निराई-गुडाई करके खरपतवारों से मुक्त रखा जा सकता है। जहाँ खरपतवारों की अधिक समस्या हो व निराई-गुडाई करना मुश्किल हो वहां बुवाई से पूर्व आधा कि.ग्रा. फ्लूक्लोरेलिन (सक्रिय अवयव) प्रति हैक्टेयर की दर से 800 लीटर पानी में घोल बनाकर फ्लेट फेन नोजल से छिड़काव करने के तुरन्त बाद जुताई करके मिट्टी में मिला देंवे, तत्पश्चात् अरहर की बुवाई करे या पेंडिमिथेलीन 0.75-1.0 कि.ग्रा. (सक्रिय अवयव) प्रति हैक्टेयर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त बाद व अंकुरण से पूर्ण फ्लेट फेन नोजल से छिड़काव करें।

**फसल संरक्षण -** उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग, स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग कर उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

**फली छेदक -** इस कीट की सुण्डियां फलियों में दाना पड़ते समय फली में छेद करके दानों को खाती है। इनके रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. या क्यूनॉलफॉस 25 ईसी 1.0 लीटर या कारबेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से फूल आते

ही छिड़काव / भुरकाव करे। यदि आवश्यकता हो तो हर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव / भुरकाव करे।

**पत्ती लपेटक कीट -** इस कीट की सुंण्डियां पौधे की चोटी की पत्तियों को लपेटकर सफेद जाला बुनकर व उसी में छिपकर पत्तियों को खाती है। इसकी रोकथाम हेतु मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. या डाइमिथेएट 30 ई. सी. दवा का 1.0 लीटर 600-800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करे या मिथाइल पैराथियान (2 प्रतिशत चूर्ण) का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करे।

**लाल लट -** प्रारंभिक अवस्था में अरहर के बढ़ते हुए पौधों की पत्तियों को लाल बाल वाली लट खा जाती है। इस कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. या क्यूनाॅलफाॅस 25 ई सी 1.0 लीटर या कारबेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से फूल आते ही छिड़काव/भुरकाव करे। यदि आवश्यकता हो तो हर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव/भुरकाव करे।

**फल मक्खी -** फली के अन्दर दाने को खाकर हानि पहुंचाती है। इस कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. या डाइमिथेएट 30 ई. सी. दवा का 1.0 लीटर 600-800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करे।

**उखटा रोग -** यह कवक जनित रोग है इससे पौधों की जड़े काली पड़ जाती है तथा शाखायें गल जाती है। इस रोग की रोकथाम हेतु उचित फसल चक्र अपनाया जाना चाहिए तथा जिस खेत में पहले उखटा रोग लगा हो वहां आगामी 2-3 वर्षो तक यह फसल न बोयें। उखटा रोधी किस्म टाइप-21 व आई. सी. पी. एल.-87 की बुवाई करें।

**अरहर का बन्झा रोग (स्टेरेलीटी मौजेक) -** इस रोग से ग्रसित पौधों में छोटी-छोटी पत्तियां अधिक लगती है, फूल नही आते, जिससे दाना नही बनता है। पत्तियां छोटी हल्के रंग की हो जाती है। यह रोग माइट्स के द्वारा फैलता है। माइट्स के प्रकोप होने पर 1.5-2.0 किलो घुलनशील गन्धक या 1.0 लीटर मिथाइल डिमेटोन 25 ई. सी. प्रति हैक्टेयर की दर से पानी में घोलकर छिड़काव करे। इसके लिये बहार प्रजाति की किस्म का प्रयोग करे।

**कटाई व मड़ाई -** अगेति किस्म की नवम्बर-दिसम्बर में व देर से पकने वाली किस्मों की कटाई मार्च-अप्रेल में की जाती है। कटाई के बाद फसल को एक सप्ताह तक खेत में ही सूखने के लिए छोड़ देते है। अच्छी प्रकार सुखाकर लकड़ी से पीटकर या जमीन पर पटक कर फलियों को अलग कर लेते है। मंढाई के लिए पुल मैन थ्रेसर भी काम में लिया जा सकता है।

**उपज -** उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर अरहर की उपज 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**भण्ड़ारण -** दानों को अच्छी प्रकार सुखाकर जब उनमें नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत रह जाये तो इसे भण्ड़ार गृह में रख देते है।

## 16.5 मूंग उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** राजस्थान में खरीफ की दालों में मूंग सर्वाधिक लोकप्रिय है। मूंग में 23 प्रतिशत प्रोटीन, 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट व 1.3 प्रतिशत तक वसा होती है। मूंग के बीजों में राइबोफ्लेविन, थाइमिन व विटामिन 'सी' की भरपूर मात्रा होती है। मूंग की दाल बहुत हल्की व शीघ्र पचने वाली होती है। मूंग का उपयोग दाल के अलावा नमकीन, मिष्ठान एवं पापड़ बनाने में किया जाता है। मूंग की फसल पशुओं के लिये हरा चारा तथा हरी खाद के लिए भी उगाई जाती है। दलहनी फसल होने के कारण यह राइजोबियम जीवाणुओं द्वारा वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन को मृदा में संचित करने की क्षमता रखती है जिससे मृदा की गुणवत्ता बढ़ती है।

**उत्पत्ति -** मूंग का उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष है। भारत में इसका विस्तार चीन, जापान, अफ्रीका व अन्य देशों में हुआ।

**वितरण -** मूंग की खेती मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में बहुतायत से की जाती है ।

**जलवायु-** मूंग की फसल को अधिक तापमान, कम नमी एवं मध्यम वर्षात 60-80 से.मी. वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगायी जाती है। इसके अच्छे अंकुरण के लिये 20-25 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान तथा बढवार व फली बनने हेतु 25-30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है।

**मृदा का चुनाव एवं तैयारी-** मूंग की खेती हेतु हल्की से दोमट लवण व क्षार रहित एवं मृदा का पी.एच. मान 6.5-7.5 अधिक उपयुक्त रहती है तथा अधिक अम्लीय एवं ऊसर मृदायें अनुपयुक्त पाई गई है। खेत की तैयारी अरहर में दी गई है।

**भूमि उपचार -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**उन्नत किस्में-** मूंग की उन्नत किस्में निम्नलिखित दी गई है।

**के-851:** यह खरीफ एवं जायद दोनों मौसम के लिये उपयुक्त पायी गयी है। इस किस्म का दाना मोटा तथा चमकदार होता है जिससे बाजार भाव अच्छा मिलता है। यह किस्म 60-80 दिन में पककर 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। यह किस्म शुष्क खेती तथा सिंचित क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है।

**पूसा बैसाखी:** यह किस्म जायद मौसम के लिये अधिक उपयुक्त है क्योंकि जायद में इसमें पीत रोग नहीं लगता है। इसका दाना मध्यम आकार का चमकदार होता है। यह 60-75 दिन में पककर 5-6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसे देरी से भी अर्थात अगस्त माह के प्रथम सप्ताह तक बोया जा सकता है।

**एम. एल. 131:** यह किस्म 80-90 दिन में पककर 5-10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसका दाना छोटा एवं हरा होता है।

**एम. एल. 267:** यह किस्म मध्यम ऊंचाई की 80-90 दिन में पककर 9-12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसका दाना मध्यम चमकीला तथा गहरे हरे रंग का होता है। यह किस्म छाछ्या रोग से मध्यम प्रतिरोधी है।

**आई. पी. एम. 02-03 -** यह किस्म खरीफ एवं जायद दोनों के लिए उपयुक्त पाई गई है। यह 68-70 दिनों में पककर 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। यह किस्म पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

**पी. ड़ी एम. 139 (सम्राट) -** यह किस्म जायद के लिए उपयुक्त पाई गई है। यह 65-70 दिनों में पककर 6-8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। यह किस्म पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

**बीजोपचार-** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**बुवाई का समय -** उन्नत किस्म का निरोग बीज बुवाई मानसून की वर्षा होने के साथ-साथ ही करे या वर्षा देरी से हो तो 30 जुलाई तक भी की जा सकती है।

**बीज दर -** मूंग के छोटे दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 16 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तथा बड़े दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है ।

**बुवाई की विधि व गहराई -** अधिक पैदावार के लिये मूंग की बुवाई सदैव कतार में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 30-40 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10-15 से.मी. तथा गहराई 3-5 से.मी. रखें। समय से बुवाई करके फसल को तना मक्खी कीट के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

**अन्तः सस्य फसलें -** मूंग को अन्तः फसल / मिश्रित फसल के रुप में भी उगाया जा सकता है । खरीफ ऋतु में बोये जाने वाली फसलें मक्का, ज्वार व अरहर के साथ दो कतारों के बीच एक या दो कतारें मूंग की लगाकर करीब 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर अतिरिक्त उपज प्राप्त की जा सकती है।

**खाद एवं उर्वरक -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**सिंचाई -** मूंग प्रायः वर्षापौषित क्षेत्रों में ही बोया जाता है एवं इसमे सूखा सहने की क्षमता भी अधिक होती है अतः सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। यदि सिंचाई सुविधा उपलब्ध हों तो एक सिंचाई बुवाई के 45-50 दिन बाद (फूल आते समय) देने से उपज अच्छी प्राप्त होती है। यह घ्यान रहे कि सिचाईं हल्की हो तथा सिचाईं के बाद खेत में देर तक पानी खडा नही रहे।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है। फसल संरक्षण - उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग, स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग कर उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

**मोयला, हरा तेला व मक्खी -** इनकी रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. दवा की 1.25 ली. या डायमिथेएट 30 ईसी या मैलाथियान 50 ईसी 1.0 ली. को 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर हानि से बचाया जा सकता है। एसीफेट 0.5 किलो प्रति हैक्टेयर पानी में घोलकर 30, 50 एवं 70 दिन की फसल पर छिड़काव करे या एजाडिरेक्टिन 300 पीपीएम 1.5 ली. या एजाडिरेक्टिन 300 पीपीएम 750 मिली. + मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. दवा की 500 मिली. प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़के।

**तना मक्खी व सफेद मक्खी -** प्रारम्भ में ये कीट कोमल तने को ग्रसित करके अन्दर प्रवेश कर जाता है एवं छेद को बन्द कर लेता है। इनके उपचार हेतु डाइमिथेएट 30 ई. सी. दवा का 1.0 लीटर 600-800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिडकाव करे। दूसरा छिडकाव 15 दिन बाद आवश्यक होने पर पुनः दोहरावें।

**फली भेदक -** इस कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. या क्यूनॉलफॉस 25 ईसी 1.0 लीटर या कारबेरिल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से फूल आते ही छिड़काव / भुरकाव करे। यदि आवश्यकता हो तो हर 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव/भुरकाव करे।

**ब्लेक लीफ वीविल एवं ब्ल्यू बीटल (फली बीटल) -** इसके नियंत्रण हेतु 20-25 किलो प्रति हैक्टेयर की दर से मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण भुरके।

**पीत्तशीरा मोजेक (विषाणु) रोग -** इस रोग की रोकथाम मे लिये रोग का प्रकोप दिखाई देते ही डायमिथेएट 30 ईसी 1.0 लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करे। आवश्यकता हो तो 15 दिन के अन्तराल पर फिर छिड़काव करे।

**जड़ गलन रोग -** यह रोग मृदा जनित एवं कवक के ö ारा फैलती है तथा इसके रोगाणु मृत जीवांश पद्धार्थो पर पाया जाता है। इस रोग का प्रकोप अंकुरित पौधों पर और बढवार अवस्था पर अधिक होता है। रोग के लक्षण पौधे की पत्तियों, शाखाओं, तना एवं जडों पर गहरे रंग के घाव दिखाई देते है तथा प्रभावित पौधा एक सप्ताह के अन्दर सूख जाता है। इस रोग की रोकथाम मे लिये कार्बेण्डाजिम 1.0 ग्राम या थाइरम 3.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करे तथा प्रभावित पौधों को उखाड़ कर जला दें या मिट्टी में दबा देवें।

**क्रिंकल विषाणु रोग -** इस रोग से प्रभावित पत्तियां व्यांकुचित हो जाती है एवं फलियां कम बनती है या नही बनती है। इसके रोकथाम हेतु डायमिथेएट 30 ईसी 1.0 लीटर अथवा मिथाइल डिमेटान 25 ईसी 750 मिलीलीटर का प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई के 15 दिन बाद छिड़काव करे। आवश्यकता हो तो 15 दिन के अन्तराल पर फिर छिड़काव करे।

**चित्ती जीवाणु रोग -** खरीफ मूंग में यह रोग जेन्थोमोनास जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग में छोटे गहरे भूरे रंग के धब्बे पत्तों पर तथा प्रकोप बढ़ने पर फलियों और तने पर भी दिखाई देते है। इससे पौधा मुरझा जाते है। रोग के लक्षण दिखाई देते ही 20 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन या 2.0 किलो ताम्रयुक्त कवक मार का प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करे। आवश्यकता हो तो दवा का छिड़काव दोहरावें।

**सरकोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग -** इस रोग के नियंत्रण हेतु बाविस्टीन या टोपसिन-एम 1.0 ग्राम प्रति लीटर (0.1 प्रतिशत) के दो छिड़काव, पहला छिड़काव बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही तथा दूसरा पहले छिड़काव के 15 दिन बाद बहुत प्रभावी पाया गया है।

**छाछ्या रोग -** इस रोग से पौधे में पत्तियों की ऊपरी सतह पर शुरु में सफेद गोलाकार पाउड़र जैसे धब्बे हो जाते है तथा बाद में पाउड़र सारे तने एवं पत्तियों पर फेल जाता है। पत्तियां छोटी रहकर पीली पड़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिये प्रति हैक्टेयर ढाई किलो घुलनशील गन्धक अथवा डाइनेकेप 400 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर के घोल का पहला छिड़काव रोग के प्रारम्भिक लक्षण से 10 प्रतिशत से कम प्रकोप होने से पूर्व ही प्रारम्भ करें। दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद करें तभी रोग का नियंत्रण से अधिक लाभ मिलेगा या 25 किलो गन्धक चूर्ण का भुरकाव करें।

**पीलिया रोग -** इस रोग से फसल में पीलापन आ जाता है एवं रोग दिखाई देते ही 0.1 प्रतिशत गन्धक के तेजाब या 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट (हरा कसीस) का छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो यह छिड़काव दोहराये।

**कटाई व मड़ाई -** मूंग की फसल अधिक पक जाने पर या सूख जाने पर फलियां झडने लगती है जिससे उपज में काफी नुकसान उठाना पडता है। फलियों के झड़कर गिरने से होने वाली हानि को रोकने के लिये फलियों को पूरी तरह पकने के बाद एवं झडने से पहले काट लेवे। इसके बाद खलिहान में फसल को लगभग एक सप्ताह तक धूप में सुखाकर बैलों अथवा थ्रेसर द्वारा मड़ाई करके भूसा उड़ाकर दाना अलग कर ले तथा दानों को इतना सुखा ले कि नमीं की मात्रा 12 प्रतिशत से अधिक न हो।

**उपज -** उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर मूंग की उपज लगभग 10-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**भण्ड़ारण -** दानों को अच्छी प्रकार सुखाकर जब उनमें नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत रह जाये तो इसे भण्ड़ार गृह में रख देते है।

## 16.6 उड़द उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** हमारे प्रदेश में उड़द का प्रयोग मुख्य रुप से दाल के लिए किया जाता है। उड़द को पीसकर पापड़ एवं विभिन्न व्यंजन भी बनाये जाते है। उड़द में 24 प्रतिशत प्रोटीन, 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट व 1.5 प्रतिशत वसा के साथ-साथ फाॅस्फोरिक एसिड़, विटामिन व खनिज पदार्थो की भरपूर मात्रा होने से इसका मानव आहार में बहुत महत्व है। इसका चारा पशुओं के लिये पौष्टिक होता है तथा हरी खाद के लिए भी उगाया जाता है। दलहनी फसल होने के कारण वायुमण्ड़लीय नाइट्रोजन को मृदा में संचित करने की क्षमता होती है। यह फसल मृदा उर्वरता एवं मृदा संरक्षण दोनो में सहायक होती है।

**उत्पत्ति -** भारत में उड़द की खेती प्राचीनकाल से होती आयी है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में उड़द का उल्लेख मिलता है। इसलिए उड़द का उत्पति स्थान भारतवर्ष ही माना जाता है।

**वितरण -** उड़द की खेती आमतौर पर सम्पूर्ण भारत में की जाती है परन्तु पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार तथा राजस्थान में इसकी खेती बहुतायत से की जाती है।

**जलवायु-** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**मृदा का चुनाव एवं तैयारी-** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**भूमि उपचार -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**उन्नत किस्में-** उड़द की अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए। किस्मों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि अधिक उत्पादन के साथ-साथ ये किस्में रोग प्रतिरोधी तथा उस क्षेत्र की जलवायु के लिए प्रयुक्त हो।

**टी-9** - यह किस्म मध्यम कद की बढवार वाली है तथा 80-90 दिन में पककर 8-10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है । इस किस्म का दाना छोटा तथा काला होता है।

**पन्त यू 19** - यह किस्म का कद मध्यम एवं दाना छोटा तथा काला होता है। यह 80-90 दिन में पककर 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है।

**पन्त यू 31 -** यह किस्म का कद छोटा, सीधी बढने वाली, दाना मध्यम आकार तथा भूरे रंग का होता है। यह किस्म समकालिक परिपक्वता के साथ 70 दिनों में पककर 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। यह किस्म पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

**के. यू 96-3 -** यह किस्म छोटे कद की लगभग 70 दिन में पककर 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है। इसका दाना छोटा तथा काला होता है। यह किस्म पीत चितेरी रोग से अवरोधी पायी गयी है।

**बीजोपचार**- विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**बुवाई का समय -** उन्नत किस्म का निरोग बीज बुवाई मानसून की वर्षा होने के साथ-साथ ही करे या वर्षा देरी से हो तो 30 जुलाई तक भी की जा सकती है।

**बीज दर -** उड़द के छोटे दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 16 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तथा बड़े दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है ।

**बुवाई की विधि व गहराई -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**अन्तः सस्य फसलें -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**खाद एवं उर्वरक** - विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**सिंचाई -** उड़द प्रायः वर्षापौषित क्षेत्रों में ही बोया जाता है एवं इसमे सूखा सहने की क्षमता भी अधिक होती है अतः सिंचाई की आवश्यकता नही होती है। यदि सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो तो एक सिंचाई बुवाई के 45-50 दिन बाद (फूल आते समय) देने से उपज अच्छी प्राप्त होती है। यह घ्यान रहे कि सिचाईं हल्की हो तथा सिचाईं के बाद खेत में देर तक पानी खडा नही रहे।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम** - विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**फसल संरक्षण -** उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। समेकित रोग व कीट प्रबन्धन जिसमें रोगरोधी प्रजातियों का प्रयोग, स्वस्थ बीजों का प्रयोग, कर्षण क्रियाओं में बदलाव, कवकनाशी तथा जैवनाशी तत्वों का प्रयोग कर उत्पादकता को स्थिर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

**मोयला, हरा तेला व मक्खी -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**तना मक्खी व सफेद मक्खी -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**फली भेदक -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**ब्लेक लीफ वीविल एवं ब्ल्यू बीटल (फली बीटल) -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**पीत्तशीरा मोजेक (विषाणु) रोग -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**क्रिंकल विषाणु रोग -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**छाछ्या रोग -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**पीलिया रोग -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**कटाई व मड़ाई -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**उपज -** उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर उड़द की उपज लगभग 10-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**भण्ड़ारण -** दानों को अच्छी प्रकार सुखाकर जब उनमें नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत रह जाये तो इसे भण्ड़ार गृह में रख देते है।

## 16.7 मोठ उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** मोठ राजस्थान की सूखा ग्रस्त क्षेत्रों की महत्तवपूर्ण फसल है। यह खरीफ में उगायी जाने वाली दलहनी फसलों में सबसे अधिक सूखा सहन करने वाली फसल है। मोठ के पौधे भूमि में सघन फैलाव द्वारा जाल के रुप में बिछ जाते है तथा हवा व पानी द्वारा मृदा कटाव को रोकते है। मोठ रेतीली भूमि को स्थानान्तरित होने से रोकता है। राजस्थान के सूखे क्षेत्रों में मानव आहार की प्रोटीन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति में मोठ का बड़ा योगदान है। मोठ की दाल एवं इसके व्यवंजन दैनिक भोजन का प्रमुख अंश है। इसमें 18-22.5 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। मोठ से बनी बीकानेरी भुजिया अपने स्वाद के लिए देश-विदेश में प्रसिद्ध है। इसकी हरी फलियों की पौष्टिक सब्जी बनती है तथा हरे पौधे चारे के रुप में काम आते है। मोठ का सूखा चारा स्वाद की दृष्टि से भी पशुओं द्वारा बहुत पसन्द किया जाता है।

**उत्पत्ति -** मोठ का उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष है। इसकी जंगली जातियां उत्तर में हिमालय पर्वतीय क्षेत्र से लेकर दक्षिण में श्रीलंका तक व्यापक रुप से फैली है।

**वितरण -** भारत में मोठ की खेती प्रायः शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है। राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात व जम्मू एवं कश्मीर इसके प्रमुख उत्पादक क्षेत्र है। क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान का प्रथम स्थान है। कुल क्षेत्रफल का 85 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है जिसमें से 80 प्रतिशत पश्चिमी राजस्थान में ही है। राजस्थान में चूरु, बीकानेर, नागौर, जोधपुर व बाड़मेर मोठ उगाने व उत्पादन करने वाले मुख्य जिले है। वर्तमान में मोठ के अन्तर्गत 14.36 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल है जिससे 1.88 लाख टन उत्पादन तथा 131 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

**जलवायु-** मोठ की फसल के लिए गर्म एवं शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। इसमें सूखा सहन करने की अधिक क्षमता होने के कारण यह देश के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अन्य फसलों से अधिक प्रसिद्ध है। वर्षा पोषित, कम उपजाऊ, सीमान्त क्षेत्र, जहाँ वर्षा असमान रुप से वितरित होती है वहाँ भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा समती है। सामान्य वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी उपज अपेक्षाकृत अच्छी होती है। परन्तु खेत में पानी एकत्र होना फसल के लिए हानिकारक है। पौधों की बढ़वार व विकास के लिए औसतन 25-30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त समझा जाता है। मृदा का चुनाव एवं तैयारी- विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**भूमि उपचार -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**उन्नत किस्में-** मोठ की उन्नत किस्में जो रोग प्रतिरोधी तथा उस क्षेत्र की जलवायु के लिए प्रयुक्त हो।

**जड़िया:** इसके पत्ते चैड़े होते है तथा फूलों व फलियों के ठंड़ल छोटे होते है। पौधा जमीन पर फैलता रहता है और दाना भूरे रंग का होता है। यह किस्म 100-120 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 2-3 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

**ज्वाला:** इस किस्म की पत्तियां चैड़ी तथा कम कटाव वाली होती है जो फसल पकने तक हरी रहती है। यह किस्म 80-90 दिन में पककर 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह पीली मोजेक विषाणु रोग रोधी किस्म है।

**आर. एम. ओ.-40:** इस किस्म के पौधों की पत्तियां चैड़ी तथा कम कटाव वाली व गहरे हरे रंग की होती है जो फसल पकने तक हरी रहती है। इसकी फलियां व दाने भूरे रंग के होते है। यह किस्म 62-65 दिन में पककर 6-9 क्विंटल प्रति हैक्टेयर दाना उपज एवं 13-14 क्विंटल सूखे चारे क उपज प्राप्त होती है। यह पीत्तशिरा मोजेक विषाणु रोग रोधी इस किस्म में सूखा सहने की क्षमता होती है।

**आई. पी. सी. एम. ओ.-912 (विकास):** इस किस्म की पत्तियां अधिक कटावदार व हल्की हरी होती है। यह 75-80 दिन में पककर 5-6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह पीत्तशिरा मोजेक विषाणु रोग रोधी और चित्ती जीवाणु रोग के प्रति सहनशील है।

**एफ. एम. एम.-96:** इस किस्म की पत्तियां चैड़ी परन्तु ज्यादा कटावदार व हल्के हरे रंग की होती है। यह किस्म 58-62 दिन में पककर 5-6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर दाना उपज देती है। यह पीत्तशिरा मोजेक विषाणु के प्रति अधिक सहनशील होती है।

**आर. एम. ओ.-225 (मरु वरदान):** यह किस्म कम वर्षा एवं पश्चिम, उत्तर पश्चिम राजस्थान के शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए विकसित हेतु किस्म है। इसका दाना हल्का भूरा व फलियां पकने तक हरी रहती है। यह किस्म 64-67 दिन में पककर 6-6.5 कुंतल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

**आर. एम. ओ.-435 (मरु बहार):** यह राजस्थान के पश्चिम व उत्तर पश्चिम शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 65-67 दिन में पककर 6-6.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

**आर. एम. ओ.-257:** यह राजस्थान के शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 62-67 दिन में पककर 5.0-5.5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह पीत्तशिरा मोजेक विषाणु रोग रोधक एवं सूखा सहन करने वाली किस्म है।

**काजरी मोठ-1 (सी. जेड़. एम.-79):** यह बारानी स्थितियों के लिए जुलाई के दूसरे पखवाड़े तक बुवाई के लिए उपयुक्त है। अर्द्ध-विस्तारी किस्म है जो पीली मोजेक विषाणु के प्रति रोगरोधी है। इसमें 25 प्रतिशत प्रोटीन होता है। यह किस्म 74-82 दिन में पककर 3-6 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

**बीज दर -** मोठ की शुद्ध फसल के लिए 10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर चाहिए। मोठ की आर. एम. ओ. -40 तथा एफ. एम. एम. -96 किस्मों हेतु 15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

**बीजोपचार-** मोठ की फसल में बैक्टीरियल लीफ स्पोट के नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 100 पी. पी. एम. (एक ग्राम प्रति दस लीटर) पानी के घोल में एक घन्टे तक भिगोने के बाद बीज को कैप्टॉफ 75 एस. ड़ी 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करे। बीज को बुवाई से पूर्व आधा ग्राम थायोयूरिया प्रति लीटर पानी के घोल में अथवा 5 ग्राम

थायोयूरिया $ 1 मि.ली. ड़ी. एम. एस. ओ. प्रति दस लीटर पानी के घोल में 4-5 घंटे भिगोने के बाद छाया में सुखा ले। इसके बाद राइजोबियम एवं फॉस्फोरस घोलक जीवाणु (पी.एस.बी.) से मूंग की तरह बीजोपचार कर बुवाई करे।

**बुवाई का समय -** मोठ की बुवाई मानसून की वर्षा शुरु होने से लेकर 15 अगस्त तक की जा सकती है।

**बुवाई की विधि व गहराई -** अधिक पैदावार के लिये मोठ की बुवाई सदैव कतार में करनी चाहिए। कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 15-20 से.मी. तथा गहराई 3-5 से.मी. रखें। आर. एम. ओ. -40 तथा एफ. एम. एम. -96 किस्मों को कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 15 से.मी. ही रखकर बुवाई करे।

**अन्तः सस्य फसलें -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**फसल चक्र -** मोठ को अकेले व मिश्रित फसल के रुप में बोया जाता है। बाजरे के साथ मोठ की आर. एम. ओ. -40 किस्म की बुवाई करना लाभदायक पाया गया है। मोठ की 30-30 से.मी. की दो कतारों के बाद 30 से. मी. की दूरी पर एक कतार बाजरा की बुवाई करें ( 2: 1 अनुपात)। द्विवर्षीय फसल चक्र: मोठ -पड़त -बाजरा, मोठ - पड़त - तिल आदि।

**खाद एवं उर्वरक -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**सिंचाई -** मोठ प्रायः वर्षापौषित क्षेत्रों में ही बोया जाता है एवं इसमे सूखा सहने की क्षमता भी अधिक है अतः सिंचाई की आवश्यकता नही होती है।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**फसल संरक्षण -** उत्पादकता बढाने के लिये फसलों का जैविक एवं अजैविक कारकों से बचाव अत्यन्त आवश्यक है। अतः समेकित रोग व कीट प्रबन्धन अपनाकर नियंत्रण करे।

**कातरा -** मोठ की फसल में कातरा कीट का प्रकोप होता है। कातरा कीट की रोकथाम हेतु इसकी प्रथम व द्वितिय अवस्था में क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या मिथाइल पैराथियान 2.0 प्रतिशत चूर्ण का 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिए।

**चित्ती जीवाणु रोग -** खरीफ मोठ में यह रोग जेन्थोमोनास जीवाणु द्वारा फैलता है। इस रोग में छोटे गहरे भूरे रंग के धब्बे पत्तों पर तथा प्रकोप बढ़ने पर फलियों और तने पर भी दिखाई देते है। इससे पौधा मुरझा जाते है। रोग के लक्षण दिखाई देते ही 20 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन या 2.0 किलो ताम्रयुक्त कवक मार का प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करे। आवश्यकता हो तो दवा का छिड़काव दोहरावें।

**पीत्तशीरा मोजेक (विषाणु) रोग -** विस्तृत जानकारी मूंग की खेती में दी गई है।

**सूखा जड़ गलन रोग -** यह रोग मृदा जनित एवं कवक के द्वारा फैलती है। रोगी पौधों की नीचे की पत्तियां पीली पड़कर सुखने लगती है। ऐसे पौधों का आधार भाग व जड़ें भी सूख जाती है और अन्त में पौधा मुरझा जाता है। रोग के बचाव के लिए 3 ग्राम कैप्टान या 2 ग्राम कार्बेण्ड़ाजिम से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

**कटाई व मड़ाई -** मोठ की फसल अक्टूबर या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में पककर तैयार हो जाती है। मोठ की फलियां सूखने पर कटाई करनी चाहिए। पौधे सूखने के बाद पत्तियां अलग करके फलियों व ड़ण्ठलों पर दाँय चलाकर दाने अलग कर लिए जाते है।

**उपज** - उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर मोठ की दाना उपज 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तथा सूखे चारे की उपज 5-8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त होती है।

**भण्ड़ारण -** भण्ड़ारण करने से पूर्व मोठ को धूप में अचछी तरह सूखाकर उचित नमी की मात्रा 9-10 प्रतिशत रह जाये, पर भण्ड़ार गृह में ही भण्ड़ारण करना चाहिए।

16.8 मटर उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** मटर एक महत्त्वपूर्ण दलहनी फसल हैं। इसका उपयोग सब्जी एवं दालों दोनों ही रूप में किया जाता है। यह आर्थिक एवं पौष्टिक गुणवत्ता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण फसल है। भारतवर्ष में दो तरह की मटर एक सब्जी वाली मटर तथा दूसरी दाने वाली मटर उगाई जाती है। सब्जी वाली मटर को पकने से पहले ही फलियों को तोडकर ताजी सब्जी एवं केनिंग के रूप में काम में लेते है इसके दाने हरे, बहुत मीठे तथा सूखने पर सिकुड जाते है एवं दाने वाली मटर के दाने कम मीठे, सफेद, सूखने पर गोल रहते है तथा इसको विभिन्न रूप जैसे चाट, छोला, दाल, सब्जी एवं आटे इत्यादि मे प्रयोग किया जाता है। पौष्टिक गुणवत्ता की दृष्टि से काफी अधिक मात्रा में पाचक प्रोटीन (22.5 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेट (62.1 प्रतिशत), वसा (1.8 प्रतिशत), खनिज लवण (कैल्शियम एवं लोहा) तथा विटामिन्स (राइबोफ्लोविन एवं थायमिन) पाया जाता है।

**उत्पत्ति -** वैज्ञानिकों के अनुसार विभिन्न वर्ग की मटर का जन्म स्थान भिन्न-भिन्न देश है। देशी मटर (पाइसम आरवेन्स) के पौधे सर्वप्रथम इटली में जंगली रुप मे पाये गये। बेबीलोव (1935) के अनुसार मटर का उत्पत्ति स्थान पश्चिमी भारत तथा एशिया माइनर के बीच होना चाहिए। अतः सही रुप से नही कहा जा सकता है कि इसकी उत्पत्ति कहाँ हुई है।

**वितरण -** भारतवर्ष में यह मुख्यतया उत्तर प्रदेश, मघ्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, असम, राजस्थान, उडीसा, एवं झारखण्ड में उगाई जाती है।

**जलवायु -** मटर के लिये ठण्ड़ी जलवायु उपयुक्त रहती है। पाले से इसके फूल व फली को नुकसान पहुंचता हैं। बीज की बुवाई करते समय तापक्रम 220 सेन्टीग्रेड होना चाहिये। अधिक तापक्रम पर बोने से पौधे कमजोर होते है तथा पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे कम तापक्रम पर अंकुरण बहुत धीरे होता है।

**भूमि का चयन एवं तैयारीः-**

मटर की अच्छी पैदावार के लिए भुरभुरी दोमट व उचित जल निकास वाली मृदा उत्तम रहती है। खेत की तैयारी के लिए एक दो बार मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें। तत्पश्चात् पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

**उन्नत किस्में** - अच्छी पैदावार के लिए उन्नत किस्मों का बीज बोना महत्त्वपूर्ण है।

**अर्किल** - यह अगेती किस्म है, फलियाँ 60-65 दिन में पककर तुड़ाई लायक हो जाती है। फलियाँ लम्बी, तलवानुमा व 5-6 दानों वाली होती है। औसत उपज 60-70क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

**आजाद पी-1 -** यह मध्यम अवधि की किस्म है और इसमें फलियाँ 70-80 दिन में पककर तैयार हो जाती है। फलियाँ लम्बी, दाने 6-7 व मोटे होते है। उपज 80-100 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।

**बोनविला -** मध्यम अवधि वाली यह किस्म 80-85 दिन में पककर तैयार हो जाती है। फलियाँ मध्यम लम्बी व दाने सिकुड़े होते है। उपज 80-90 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।

**बीजदर -** अगेती किस्मों के लिए 100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तथा मध्यम व देरी से तैयार होने वाली किस्मों के लिए 80 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है।

**बीजोपचार** - विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**बुवाई का समय -** मैदानी क्षैत्रों में अगेती किस्मों के लिए 15 सितम्बर से 15 अक्टूबर व मध्यम व देर से पकने वाली किस्म के लिए 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक समय उपयुक्त रहता है। बुवाई के समय कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. (अगेती किस्म) तथा 40 से.मी. (मध्यम देर से पकने वाली) होनी चाहिए तथा पौधों से पौधों की दूरी 10 से.मी. रखना चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक -** मटर की फसल में प्रति हैक्टेयर 15-20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई से पूर्व खेत में डालें। मटर की अच्छी फसल के लिये 20 किलो नत्रजन, 40 किलो फाॅस्फोरस, 20 किलो पोटाश एवं 20 किलो गंधक प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व कूडों में ऊर कर देवें तथा शेष नत्रजन 20 कि.ग्रा. खडी फसल में पहली सिंचाई के समय देवे। उर्वरकों को सदैव मृदा परीक्षण के आधार पर देना अधिक लाभदायक रहता है। मिट्टी की जाँच के अनुसार गंधक की कमी वाली भूमि में प्रतिवर्ष 125 किलोग्राम जिप्सम या 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में देने से उपज में वृद्धि होती है। जिन मृदाओं में जस्ते की कमी पाई जावे वहां पर 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय भूमि में डाले या खडी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट $ 0.25 प्रतिशत चूने के घोल का छिडकाव करने से उपज में वृद्वि होती है । मटर की फसल में 0.5 कि.ग्रा. मोलिब्डेनम प्रति हैक्टेयर की दर से देने पर उपज में वृद्धि पायी गई है।

**सिंचाई -** मटर की फसल को अधिक नमी की आवश्यकता होती है। सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो वहां दो सिचाई देने से पैदावार अच्छी होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 25-30 दिन बाद (शाखाएं निकलते समय) एवं दूसरी सिंचाई 50-60 दिन बाद (फूल आते समय) करे। यह घ्यान रहे कि सिंचाईं हल्की हो तथा सिंचाईं के बाद खेत में देर तक पानी खडा नही रहना चाहिये।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**फसल संरक्षण -** मटर की फसल में कीट मुख्यतया माहू (एफिड), शूट फलाई, लीफ माईनर, फली छेदक एवं रोग पाउडरी मिल्डयू, रतुआ, तना गलन, डेम्पिंग ऑफ एवं डाउनी मिल्डयू से नुकसान होता है। इनकी रोकथाम के लिये निम्न उपाय अपनाने चाहिये।

**दीमक:** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**माहू (एफिड):** इसके नियंत्रण के लिये मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. की 1.0 लीटर मात्रा 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करे।

**शूटफ्लाई एवं लीफ माईनर:** शूटफ्लाई के कारण टहनी का अगला भाग मर जाता है एवं बढोतरी बन्द हो जाती है। इसका प्रकोप बीज उगने के 15-20 दिन बाद प्रारम्भ होता है जबकि लीफ माईनर मटर के पत्तो के अन्दर सुराख करके हानि पहुंचाते है इनका प्रकोप फसल के उगने से प्रारम्भ होकर पूरे मौसम तक रहता है। इसके नियंत्रण के लिये फोरेट 10 जी 10 किलोग्राम प्रति

हैक्टेयर की दर से बुवाई के समय ऊर कर देवे या फूल आने से पूर्व व फली लगने के बाद 500 मिली लीटर मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 1.0 लीटर क्यूनॉलफॉस 25 ई. सी. प्रति हैक्टेयर छिडके।

**फली छेदक:** इस कीट की लट गहरे हरे रंग की सवा इंच लम्बी व चैथाई इंच मोटी होती है जो बाद में गहरे भूरे रंग की हो जाती है। ये लटे फसल में फूल आने से लेकर कटाई तक नुकसान पहुंचाती है तथा लटें फली में छेद करके अन्दर का दाना खोखला कर देती है। इनकी रोकथाम हेतु फूल आने से पूर्व व फली लगने के बाद मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. दवा की 500 मि.ली. या क्यूनॉलफॉस 25 ई. सी. की 1.0 लीटर या डाइमिथोएट 30 ई. सी. की 1.0 लीटर मात्रा 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करे। दवा छिडकने के पन्द्रह दिन बाद तक फसल खाने के काम में न लें।

डेम्पिंग ऑफ एवं डाउनी मिल्डयू: रोग की रोकथाम हेतु बीजोपचार कार्बेण्डिजम 1.0 ग्राम + थाइरम 2.0 ग्राम या थाइरम 3.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करे।

**तना गलन:** इस प्रकोप से फसल को बचाने के लिये पेन्टाक्लोर नाइट्रोबेंजीन (पी. सी. एन. बी.) 0.2 प्रतिशत से मृदा ड्रेन्चींग करे या बुवाई से पूर्व बीजोपचार कार्बेण्डाजिम 1.0 ग्राम या बेनोमील 1.0 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करे।

**चूर्णी फफूंद (पाउडरी मिल्ड्यू):** रोग की रोकथाम हेतु गंधक चूर्ण 25 किलो प्रति हैक्टेयर का भुरकाव करे या 2.5 किलो 50 प्रतिशत घुलनशील गंधक के 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करे या 750 मिलीलीटर कैराथेन के 0.1 प्रतिशत घोल का छिड़काव करे।

**रतुआ (रोली):** इस रोग की रोकथाम के लिये बीज को बुवाई से पहले कार्बेण्डिजम 1.0 ग्राम + थाइरम 2.0 ग्राम या थाइरम 3.0 ग्राम से करे या खडी फसल में मेन्कोजेब 2.5 ग्राम या बेनोमील 0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करे।

**फलियों की तुड़ाई -** जब फलियों में दाने पूर्ण विकसित हो जाए तथा फलियों का रंग गहरा हरा हो जाए, उस अवस्था में तुड़ाई कर लेनी चाहिए।

**उपज** - मटर की अगेती किस्में 60-65 दिन में तुड़ाई लायक होकर औसतन 60-70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है तथा मध्यम अवधि वाली किस्में 75-80 दिन में तुड़ाई लायक होकर 80-100 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

16.9 मसूर उत्पादन की उन्नत तकनीक

दलहनी फसलों में मसूर का विशेष स्थान है और रबी दलहनी फसलों में जल्दी पककर तैयार होने वाली एक प्रमुख फसल है। भारतवर्ष में रबी दलहनी फसलों में चने के बाद मसूर की खेती सबसे अधिक क्षेत्रफल में की जाती है। मसूर की खेती बारानी क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक ली जा सकती है। भारतवर्ष में मसूर का क्षेत्रफल 15.10 लाख हैक्टेयर है जिससे प्रतिवर्ष 10.00 लाख टन उत्पादन होता है। राजस्थान में मसूर की खेती लगभग 18.5 हजार हैक्टेयर में की जाती है जिससे प्रतिवर्ष 16.8 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है । मसूर उपज के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहयोग करती है। इनकी जड़ें वातावरण से वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरिकरण करने के साथ-साथ भूमि में फास्फोरस उपलब्धता को बढ़ाती है। मसूर का उपयोग

मुख्यतः दाल के रुप में किया जाता है तथा शाकाहारी मनुष्य के लिए पोषण की दृष्टि से भी यह एक महत्तवपूर्ण दलहन है जिसमें प्रोटीन (25.0 प्रतिशत), वसा (0.7 प्रतिशत), खनिज लवण (2.1 प्रतिशत), रेशा (0.7 प्रतिशत), कार्बोहाइड्रेट (59.0 प्रतिशत) तथा अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता पाई जाती है । प्रत्येक व्यक्ति को औसतन 80 ग्राम प्रतिदिन दाल खाना अति आवश्यक है इसलिए बढ़ती जनसंख्या को पोषण सुरक्षा प्रदान करने हेतु दलहनों का उत्पादन बढ़ाना होगा। हालांकि मसूर में अन्य दलहनों की अपेक्षा उत्पादन क्षमता काफी अच्छी है परन्तु उपयुक्त तकनीकों की कमी होने के कारण आशातीत उत्पादन नही मिल पा रहा है। दलहनों का उत्पादन इनके अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादकता को बढ़ाकर बढ़ाया जा सकता है। इस लेख में मसूर उत्पादन के लिए नयी तकनीकों का विवरण दिया गया है जिससे हमारे देश में मसूर उत्पादन में आत्मर्निभरता आयेगी साथ ही निर्यात की संभावना बढ जाएगी ।

**जलवायु-** मसूर की अच्छी फसल के लिये प्रारम्भ में उष्ण एवं तर वातावरण की जरुरत होती है किन्तु पकते समय ठण्डा लेकिन धूप वाला वातावरण होना आवश्यक है। मसूर की असिंचित फसल के लिये भूमि में उपलब्ध नमी एवं सर्दी के मौसम में ओंस की बून्दें पर्याप्त होती है ।

**मृदा का चुनाव एवं तैयारी-** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**भूमि उपचार -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है।

**उन्नत किस्में-** मसूर की अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए।

**सीहोर 74-7 -** इस किस्म में 75 दिन पर फूल आते है और 115 दिन में फसल पककर 17.0 कुंतल प्रति हैक्टेयर तक उपज देती है । यह किस्म उखटा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी पाई गयी है ।

**जे. एल. 3 (जवाहर मसूर) -** इसके पौधे सीधे, पत्तियां हल्के हरे रंग एवं मोटे दाने (3.0 ग्राम प्रति 100 दानों का वजन) तथा मटमेले रंग का होता है। यह किस्म 115-120 दिन में पककर 12-14 कुंतल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किस्म उखटा रोग के प्रति सहनशील पाई गयी है।

**डी. पी. एल. 62 (शेरी) -** इसका पौधा आंशिक रुप से सीधा, पत्तियां हरे रंग एवं पत्तियों पर रोयें पाये जाते है। इसका मोटे दाने (3.4 ग्राम प्रति 100 दानों का वजन) तथा धूसर मटमैले रंग का होता है। यह किस्म 120-125 दिन में पककर 17-18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किस्म रतुआ एवं उखटा रोग के प्रति प्रतिरोधी पाई गयी है।

**आई. पी. एल. 81 (नूरी) -** इसका पौधा आंशिक रुप से फैलने वाला, पत्तियों का रंग हरा होता है। इसके दाने मोटे (2.7 ग्राम प्रति 100 दानों का वजन) तथा धूसर मटमैले रंग के होते है। यह किस्म 115-120 दिन में पककर 12-15 कुंतल प्रति हैक्टेयर उपज क्षमता के साथ-साथ रतुआ एवं उखटा रोग के प्रति प्रतिरोधी पाई गयी है ।

**बीजोपचार-** विस्तृत जानकारी मटर की खेती में दी गई है।

**बुवाई का समय -** अधिकतम पैदावार प्राप्त करने के लिए असिंचित क्षेत्र में मसूर की बुवाई करने का उचित समय अक्टूबर प्रथम सप्ताह से द्वितीय पखवाड़ा (20 अक्टूबर) है। सिंचित क्षेत्र में मसूर की बुवाई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक करना उचित रहती है।

**बीज दर** - मसूर में छोटे दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 35-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर तथा बड़े दानों वाली किस्मों की बुवाई के लिए 50-60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

**बुवाई की विधि व गहराई -** विस्तृत जानकारी मटर की खेती में दी गई है।

**अन्तः सस्य फसलें -** मसूर को अन्तः फसल/मिश्रित फसल के रुप में भी उगाया जा सकता है। शरद ऋतु में बोये जाने वाले गन्ने के साथ मसूर की मिलवां खेती की जा सकती है। गन्ने की दो कतारों के बीच दो कतारें मसूर की लगाकर करीब 6-8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर अतिरिक्त मसूर प्राप्त की जा सकती है। इससे गन्ने की फसल पर कोई प्रतिकुल प्रभाव नही पड़ता है। इसके अलावा धान-गेहूँ फसल चक्र में मसूर का उत्पादन "उतेरा विधि" से भी किया जाता है। इससे विधि से दाल के अतिरिक्त भूमि की उपजाऊ शक्ति में बढोतरी होती है। इस विधि में मसूर की शीघ्र पकने वाली किस्मों को धान की कटाई के 10-15 दिन पहले खडी फसल में छिटकवां विधि से बुवाई करनी चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक -** विस्तृत जानकारी मटर की खेती में दी गई है। बारानी क्षेत्रों में 2 प्रतिशत (20 ग्राम/लीटर पानी) यूरिया के घोल का छिड़काव मसूर में फूल आने की अवस्था पर करने से उपज में वृद्धि होती है। यदि किसी कारण इस अवस्था पर छिड़काव नहीं कर सकें तो फलियां बनते समय छिडकाव करने से भी लाभ होता है।

**सिंचाई -** मसूर को प्रायः असिंचित परिस्थितियों में ही बोया जाता है क्योंकि इसमे सूखा सहने की क्षमता अन्य दलहनी फसलों की तुलना में अधिक होती है। जहाँ सिंचाई सुविधा उपालब्ध हो वहां एक सिचाई देने से फसल अच्छी होती है। यदि जाड़े में वर्षा न हो तो बुवाई के 45-50 दिन बाद (फूल आते समय) एक सिंचाई अवश्य करे। यह घ्यान रहे कि सिचाईं हल्की हो तथा सिचाईं के बाद खेत में देर तक पानी खडा रहने पाए ।

**निराई-गुडाई एवं खरपतवारों की रोकथाम -** विस्तृत जानकारी अरहर की खेती में दी गई है। फसल संरक्षण - पौधो का रस चूसने वाले कीड़े जैसे माहू एवं फली छेदक कीड़ों की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास 36 डब्लू.एस.एल. दवा की 500 मि.ली. मात्रा 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करने पर हानि से बचाया जा सकता है। शुरू में सुखा या उखटा रोग के नियंत्रण के लिए कार्बेण्डाजिम 1.0 ग्राम या थाइरम 2.5 ग्राम या ट्राइकोडर्मा विरिडी 4.0 ग्राम + 2.0 ग्राम वीटावेक्स (कार्बोक्सिन 75 डब्लू पी) प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। जिन खेतों में उखटा रोग लग चुका हो उन खेतों में उचित फसल चक्र अपनायें और तीन वर्ष तक मसूर की फसल न बोयें तथा उखटा रोग से प्रतिरोधी किस्में बोयें। रतुआ रोग के नियंत्रण के लिए मेन्कोजेब की 2-2.5 ग्राम या गधंक का भुरकाव या बेनोमील 0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करे।

**कटाई व मड़ाई -** मसूर की फसल अधिक पक जाने पर या सूख जाने पर फलियां झडने लगती है जिससे उपज में काफी नुकसान उठाना पडता है। इस हानि से बचने के लिए फसल को उसकी दैहिक (फिजियोलोजिकल) परिक्वता पर ही काट लेना चाहिए। यह अवस्था पत्तियाँ पीली पड़ जाने पर आ जाती है इस अवस्था पर कटाई करने से बीजों की गुणवत्ता पर कोई प्रतिकूल असर नही पडता तथा दानों के छितराव से होने वाले नुकसान को रोका जा सकता है। फसल को लगभग एक

सप्ताह तक धूप में सुखाकर बैलों अथवा थ्रेसर द्वारा मड़ाई करके भूसा उड़ाकर दाना अलग कर ले तथा दानों को इतना सुखा ले कि नमी की मात्रा 12 प्रतिशत से अधिक न हो।

**उपज -** उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर मसूर की उपज लगभग 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**भण्ड़ारण -** भण्ड़ारण करने से पूर्व मोठ को धूप में अचछी तरह सूखाकर उचित नमी की मात्रा 9-10 प्रतिशत रह जाये, पर भण्ड़ार गृह में ही भण्ड़ारण करना चाहिए।

## 16.10 राजमा उत्पादन की उन्नत तकनीक

**महत्व -** राजमा एक दलहनी फसल है। सामान्यतः हमारे देश में राजमा का उत्पादन पहाड़ी क्षेत्रों की ठंड़ी जलवायु में होता है। परीक्षणो से ज्ञात हुआ है कि मैदानी भागो में भी रबी मौसम में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह फसल मैदानी क्षेत्रों में भी लाभदायक पाई गई है। फसल की उपज क्षमता, कम अवधि, अधिक पोषक तत्व, ऊंचे बाजार भाव आदि इस दलहन के आकर्षक गुण है।

**उत्पत्ति -** बेबीलोव (1951) का अनुमान है कि राजमा की उत्पत्ति मैक्सिकों में हुई है। वानस्पतिक अनुसंधान से पता चलता है कि राजमा के पौधे काफी प्राचीन काल से उगाये जाते रहे है।

**वितरण -** राजमा भारतवर्ष में मुख्यतः जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, गुजरात तथा दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में उगाई जाती है। भारतवर्ष में यह मुख्यत्तयाः खरीफ में हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, उत्तराखण्ड़ व उत्तर प्रदेश के पर्वतीय भागों में उगाई जाती है तथा रबी मौसम में यह मैदानी क्षेत्रों में जहां पाला नही पड़ता है जैसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान का दक्षिणी पूर्वी भाग एवं गुजरात राज्यों में उगाई जाती है।

**जलवायु -** इसे भारत के उत्तरी-पहाडी क्षेत्रों में खरीफ मौसम में एवं मध्य क्षेत्रों में रबी (शरद ऋतु) मौसम में सफलतापूर्वक ली जाती है। हमारे देश में राजमा का अधिक उत्पादन सामान्यतः पहाडी क्षेत्रों की ठण्डी जलवायु से प्राप्त होता है। राजमा की फसल को ठण्ड़ी जलवायु एवं पाला रहित होनी चाहिए। पाले से इस फसल को वानस्पतिक बढ़वार के साथ-साथ फूल व फली को नुकसान पहुंचता हैं।

**मृदा का चुनाव एवं तैयारी-** राजमा की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली हल्की एवं भारी दोमट लवण व क्षार रहित भूमि अधिक उपयुक्त रहती है। उदासीन मृदा (पी.एच. मान 6.5-7.2) उपयुक्त होती है। अच्छे अंकुरण के लिये खेत की 3-4 जुताई करना आवश्यक है ताकि भूमि भुरभुरी हो जावे। इसके बाद पाटा लगाकर खेत समतल कर लेवें। फालतु पानी के निकास का समुचित प्रबन्ध करना भी आवश्यक है।

**उन्नत किस्में** - राजमा की अधिक उत्पादन लेने हेतु सदैव उन्नत किस्म के बीजों को ही बुवाई के लिये काम में लेना चाहिए।

**पी डी आर-14 (उदय) -** इस किस्म के पौधे झाड़ीनुमा, फलियां हरी तथा फलों का रंग सफेद होता है। 40-50 सेन्टीमीटर ऊंची यह किस्म 115-120 दिन में पककर 12-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। लेकिन सिंचित क्षेत्रों तथा अच्छे फसल प्रबन्ध में इसकी पैदावार 20-22

क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक होती है। इसके दाने चित्तीदार एवं 100 दानों का वजन 38-40 ग्राम होता है।

**वी एल 63 -** 110-115 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्र तथा अच्छे फसल प्रबन्ध में 20-22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसके दाने बादामी तथा 100 दानों का वजन 36-38 ग्राम होता है।

**एच यू आर 15** - 108-110 दिन में पकने वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्र तथा अच्छे फसल प्रबन्ध में 18-20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसके दानों का रंग सफेद तथा 100 दानों का वजन 35-38 ग्राम होता है।

**एच यू आर 136 -** 105-107 दिन में पककर तैयार होने वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्र में 14-16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। इसके दानों का रंग गहरा लाल होता है तथा 100 दानों का वजन 44 -45 ग्राम होता है।

**एच. यू. आर. 137 (मालवीय राजमा 137)** - यह किस्म उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र के लिए विकसित की गई है। इसके पौधे सीधे, मध्यम बौने एवं गहरे गुलाबी रंग के दाने पाये जाते है। यह किस्म सिंचित क्षेत्र में 18-22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किस्म बीन कॉमन मोजेक विषाणु रोग से सवेंदनशील पाई गयी है।

**आई. पी. आर. 96-4 (अम्बर) -** यह किस्म उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र के लिए विकसित की गई है। यह किस्म सिंचित क्षेत्र में 15-16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है तथा इसके दाने बडे होते है एवं 100 दानों का वजन 39 ग्राम पाया गया है। यह किस्म बीन कॉमन मोजेक विषाणु एवं लीफ क्रींकल रोग से प्रतिरोधी गयी है।

**आई. पी. आर. 98-5 (अत्कर्ष) -** यह किस्म उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्रों हेतु विकसित की गई है। यह किस्म सिंचित क्षेत्र में 17 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है तथा इसके दाने गहरे लाल रंग के होते है। यह किस्म बीन कॉमन मोजेक विषाणु रोग से सहनशील पायी गयी है।

**आई. पी. आर. 98-3-1 (अरूण) -** यह किस्म मध्य क्षेत्र के लिए विकसित की गई है। यह किस्म सिंचित क्षेत्र में 16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है। यह किस्म बीन कॉमन मोजेक विषाणु रोग से सहनशील पायी गयी है।

**बीज दर एवं बीज उपचार -** राजमा की फसल हेतु 100 से 125 किलो बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है। बुवाई से पूर्व प्रति किलो बीज को 1 ग्राम कार्बेण्डिजम या 3 ग्राम थाइरम से उपचारित करना चाहिये।

**बुवाई का समय एवं विधि -** राजमा पर तापक्रम के उतार चढ़ाव का हानिकारक प्रभाव पडता है। विशेषतः फूल के समय ठण्ड एवं पाले से बचाव रहना चाहिये। अतः मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक इसकी बुवाई अवश्य करें। अच्छे अंकुरण हेतु बुवाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिये। कतारों के बीच 30-40 सेन्टीमीटर और पौधो के बीच 10 सेन्टीमीटर की दूरी रखें।

**खाद व उर्वरक** - सड़ी हुई गोबर की खाद 7-8 टन प्रति हैक्टेयर की दर से बुवाई से 2-3 सप्ताह पूर्व भूमि में मिलावें। फसल में 100-120 किलो नत्रजन, 60 किलो फॉस्फोरस, 60 किलो

पोटाश एवं 5 किलो जिंक सल्फेट प्रति हैक्टेयर की दर से भूमि में मिलायें, इससे उपज में वृद्धि होती है। नत्रजन की आधी तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुवाई के समय उरकर बीज के नीचे कतारों में डाले। शेष आधी नत्रजन बुवाई के 25-35 दिन बाद पहली सिंचाई के उपरान्त खेत में प्रयोग करें। यूरिया का प्रयोग नीम की खली आवर्तित (कोटेड) यूरिया के रुप मे करें त¨ 90 किलो नत्रजन प्रति हैक्ेटेयर की दर से इसे बुवाई से पूर्व खेत में मिलायें।

**सिंचाई -** बुवाई के बाद फसल को सामान्यतया एक-एक महीने के अन्तर से 3 से 4 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पहली सिंचाई बुवाई के 25-30 दिन बाद शाखा बनते समय अवश्य करें। दूसरी फूल आते समय एवं तीसरी सिंचाई फलियों में दाने बनते समय करें। फसल में शाखा बनते समय गहरी सिंचाई कभी नही करें।

**खरपतवार नियंत्रण -** पहली सिंचाई के उपरान्त 30-35 दिन की फसल में निराई गुड़ाई करें। गुड़ाई के समय तने पर हल्की मिट्टी चढ़ावें जिससे पौधों को सहारा मिल सके। इसी समय छंटाई करके पौधों के बीच सिफारीश अनुसार निश्चित दूरी करें। आवश्यकतानुसार दूसरी निराई गुड़ाई करें। खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथेलिन शाकनाशी रसायन को एक किलो प्रति हैक्टेयर की दर से 600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद बीज के अंकुरण से पहले छिड़कने से भी खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है।

**पाले से बचाव -** माह दिसम्बर-जनवरी में पाले से बचाव हेतु फसल पर 0.1 प्रतिशत गन्धक के तेजाब का छिड़काव करें या रात में धुआं करके भी पाले से फसल को बचाया जा सकता है। पाला पडने की सम्भावित अवधि में सिंचाई करे।

**फसल सरंक्षण -**

सफेद मक्खी, मोयला एवं तेला - इन कीटों की रोकथाम हेतु डाइमिथोएट 30 ई सी 875 मिलीलीटर या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल एक लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़कें।

**फली छेदक -** इस कीट की रोकथाम हेतु मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल एक लीटर को 600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

**विषाणु रोग -** राजमा में विषाणु रोग का हानिकारक प्रभाव देखा गया है। रोग फैलाने वाली सफेद मक्खी पर नियंत्रण रखने से रोग स्वतः ही नियंत्रण में रहता है। अतः तीन सप्ताह की फसल में सफेद मक्खी की रोकथाम हेतु डाइमिथोएट 30 ई सी 875 मिलीलीटर या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल एक लीटर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़कें।

**जड़ गलन एवं कॉलर रॉट -** इस रोग के नियंत्रण हेतु कार्बेण्डिजम 1 ग्राम अथवा थाइरम 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें।

**सफेद तना गलन -** इसके नियंत्रण हेतु फूल आने के समय कार्बेण्डिजम 0.05 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़कें। रोगग्रस्त खेत में 2-3 वर्ष तक राजमा, सरसों, मटर, धनियां, चना तथा बरसीम की फसल न बोयें।

**कटाई एवं गहाई -** फसल पकने के बाद कटाई में देरी होने से इसकी फलियां चटककर दाने जमीन पर गिर जाते हैं। अतः जैसे ही फलियों का रंग पीला पड़ जावे तथा दाने सख्त हो जायें तभी

फसल की कटाई कर लेनी चाहिये। कटाई के बाद फसल को खलिहान में 15 से 20 दिन सुखाकर बैलों से गहाई कर साफ कर लेवें।

**उपज -** उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर राजमा की उपज 15-22 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

**भण्ड़ारण -** भण्ड़ारण करने से पूर्व राजमा के दानों को धूप में अचछी तरह सूखाकर उचित नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत रह जाये, पर भण्ड़ार गृह में ही भण्ड़ारण करना चाहिए।

## 16.11 सारांश

पोषण सुरक्षा की दृष्टि से दलहनी फसलों का मनुष्यों के स्वास्थय पर विशेष योगदान है। दलहनी फसलों का भारतीय कृषि प्रणाली में विशेष महत्व है क्योंकि यह मृदा स्वास्थय के साथ-साथ वातावरण को भी ठीक करती है। खरीफ एवं रबी मौसम में उगाई जाने वाली विभिन्न दलहनी फसलों की वैज्ञानिक विधियों के द्वारा दलहनी फसलों की उन्नत सस्य तकनीक अपनाकर प्रति इकाई उत्पादकता को बढाया जा रहा है जिससे देश दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है। दलहनी फसलों को दाल के अतिरिक्त चारे तथा हरी खाद के लिए भी उगाया जाता है।

## 16.12 बहु चयनात्मक प्रश्न

6. मूंग की उपयुक्त बीज दर (कि.ग्रा./है.) क्या है-
   (क) 15-20 (ख) 25-30 (ग) 20-25 (ड़) 35-40
7. मूंग का उत्पत्ति स्थान है-
   (क) इटली (ख) भारत (ग) जापान (ड़) अफ्रिका
8. उड़द की पन्त यू 31 किस्म की पकाव अवधि है-
   (क) 50 (ख) 60 (ग) 70 (ड़) 55
9. मोठ की सबसे कम अवधि वाली किस्म है-
   (क) जड़िया (ख) ज्वाला (ग) आर. एम. ओ. - 225ः (ड़) एफ. एम. एम. - 96
10. अरहर की शुद्ध फसल के लिए प्रति हैक्टेयर बीज की मात्रा (कि. ग्रा.) चाहिए-
    (क) 10 (ख) 15 (ग) 20 (ड़) 25
11. बहु चयनात्मक प्रश्नों के उत्तर
    1. (क) 2. (ख) 3. (ग) 4. (ड़) 5. (ख)

## 16.13 संदर्भ ग्रन्थ


18. Singh, Chhadda. 1999., Modern Techniques of Raising field Crops, Oxford & IBH Publishing company private limited, New Delhi. Pp.236.
19. Singh S.S., 1993, Crop Management under Irrigated and Rainfed Condition, kalyani Publishers, New Delhi, पीपी.136-172

20. श्राजपूत, ओ. पी. एवं सिंह, राजवीर 2012-13, सस्य विज्ञान के सिद्धान्त एवं वैज्ञानिक फसलोत्पादन, कुशाल पब्लिकेशन्स् एण्ड़ डिस्ट्रीब्यूटरस्, वाराणसी (यू. पी.), पेज 155-170.
21. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
22. सयुंक्त निदेशक 2013, खरीफ की प्रमुख फसलें: उन्नत कृषि विधियां, सयुंक्त निदेशक कार्यालय, कृषि विस्तार खण्ड़, कोटा. पेज 54-63.
23. सयुंक्त निदेशक 2012, रबी की प्रमुख फसलें: उन्नत कृषि विधियां, सयुंक्त निदेशक कार्यालय, कृषि विस्तार खण्ड़, कोटा. पेज 58-68.